भारतीय चित्रकला

(ऐतिहासिक दिग्दर्शन)

(कला एवं ललितकला वर्ग के लिए उपयोगी पुस्तक

लेखक :

लादूराम व्यास 'अज्ञात'
ए. (ड्राइंग सहित) बी.एड. (बेसिक)
ई.जी.डी.; आर.डी.एस. (लन्दन)
व्याख्याता, चित्रकला,
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
महिलाबाग, जोधपुर

विद्यासागर उपाध्याय
एम. ए. (चित्रकला एवं रेखांकन)
व्याख्याता
राजस्थान स्कूल ऑफ आर्टस, जयपुर

पंचम संशोधित संस्करण

दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी

सन : 1987
मूल्य : 15. 00
प्रकाशक :
दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी
चौडा रास्ता, जयपुर-302003
मुद्रक : जयपुर क्लासीकल प्रिन्टर्स, जयपुर-1
फोन : 72455
74087

भूमिका

कलाकृति स्वय मे कला के शाश्वत मूल्यों की संवाहक है किन्तु कलाकृति को शब्दो मे बाधना एक दूसरी विधा की ओर उन्मुख होना है जिसमे कलाकार एवं कलाकृति से अलग हट कर एक अन्य व्यक्ति जिसे कला इतिहासकार या कला समीक्षक कहा जाता है, द्वारा स्वय की सीमितताओं मे वर्णन किया जाता है। दोनो के माध्यमों की भिन्नता से कलाकृति के वर्णन मे वैयक्तिक अभिव्यक्ति अधिक महत्व-पूर्ण बन जाती है किन्तु प्रस्तुत पुस्तक मे लेखको का यह प्रयास रहा है कि कला की सर्वमान्य मान्यताओं एवं विद्यार्थियों को बहुआयामी आरंभिक ज्ञान प्रदान हो सके।) प्रागैतिहासिक काल कला का सबसे प्राचीन एव प्रथम दर्शन है जिसकी महत्ता को समझते हुए इस संस्करण में विशेष वर्णन किया गया है। इसी प्रकार राजस्थानी लघु चित्र शैलियों के विभिन्न केन्द्रों. बीसवी सदी के कुछ महत्वपूर्ण कलाकारों एवं कला आन्दोलनों विशेषकर राजस्थान के समसामयिक आन्दोलन पर भी एक संक्षिप्त आलेख प्रस्तुत है।

पुस्तक कला छात्रों एवं कला के अध्यापकों हेतु उपयोगी हो, यह प्रयास करते हुए इस संस्करण में चित्रण के आरम्भिक व महत्त्वपूर्ण निर्देशों का अन्तिम अध्याय में अंकन एव अनुअंकन मे वर्णन किया गया है। द्विविधात्मक एव त्रिविधात्मक डिजाइन (सयोजन) को फलक पर चित्रित करने के लिए आकार व कला के मूलतत्त्व एवं चित्र सयोजित करने हेतु संयोजन के सिद्धान्तों का संक्षेप मे वर्णन किया गया है। साथ ही इसके व्यावहारिक मार्ग दर्शन हेतु कुछ प्रसिद्ध कलाकारों के वस्तु चित्रण को भी प्रकाशित किया जा रहा है।

आशा है हमारा यह प्रयास कला की भावी पीढ़ी को रास आयेगा एवं कला अध्यापकों का मार्ग दर्शन व स्नेह पूर्व की तरह प्राप्त होता रहेगा। पुस्तक के नवीन स्वरूप एव सशोधित संस्करण मे दी स्टूडेन्ट्स बुक कम्पनी जयपुर का विशेषकर श्री ताराचन्द जी वर्मा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिन्होंने व्यक्तिगत रुचि दर्शाते हुए हमें इस नवीन संस्करण के लिए प्रेरित किया। राज्य के युवा चित्रकार श्री दिलीपसिंह चौहान ने अपना एक रेखांकन विशेषकर इस पुस्तक के लिए तैयार किया उनके भी एवं अन्य साथी कलाकारों के भी जो हमें इस कार्य में समय-समय पर सहयोग प्रदान करते रहे है उन सभी के हम आभारी है।

—लेखक गण

विषय-सूची

अध्ययन | पृष्ठ

1

भारतीय चित्रकला का इतिहास : संक्षिप्त रूप

कला

'कला' शब्द अत्यन्त ही व्यापक है जो परिभाषा की श्रृंखला में आबद्ध नहीं किया जा सकता। कला कलाकार की रस अवस्था एवं मनोभावों की अभिव्यंजना है, साधना है, गहन अनुभूति है और साकार रूप है। कला उसे आनन्द प्रदान करती है तथा औरों को भी सुख पहुँचाती है। कलाकार के हृदय की गहराइयों से निकली वह शक्ति जन-जन में विभिन्न भावों का संचार करती है और हृदय की रस-तरंगों को उद्वेलित करती है। कला विलासता का साधन नहीं, मनोरंजन की वस्तु नहीं, नीरस जीवन की सामग्री नहीं अपितु नवजीवन है, शक्ति संचारिका है और सुखों का गहन पुञ्ज है। कला का उद्गम हृदय में है जो पवित्र है, अतः कला पवित्र है, उसमें दैविक शक्ति है, अकाट्य सत्यता है और सौन्दर्य-सागर है। कला मानव के साथ पैदा हुई और प्रकृति के कण-कण से उसका पालन हुआ। ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता गया, कला उतनी ही परिष्कृत, सुन्दर एवं सौष्ठव रूप धारण करने लगी। मनुष्य अपने विचारों, मनोभावों एवं अनुभवों को केवल अपने तक ही सीमित नहीं रखता तथापि सभी प्रकार से प्रकट करने की चेष्टा करता है। इसी प्रकार अपने मनोभावों को सुन्दरतम ढंग से प्रकट करने की विधि को ही 'कला' की संज्ञा दी जाती है। कला का अर्थ प्रदान करने में कला-मर्मज्ञों ने विभिन्न शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है जैसे कला अवधारणा क्रीडा, भ्रम, अनुकृति, सौन्दर्य, संवेगात्मक अनुभूति, कल्पना, अन्तर्दर्शन, इच्छा-पूर्ति, कार्य समानुभूति, एकनिष्ठता, वस्तुनिरपेक्षता, सौन्दर्य अन्तराल व एकाकीपन, आकृति, अर्थ व रिक्ततल आदि न जाने क्या-क्या कहा है।

सृष्टि जितनी ही प्राचीन है उतनी ही प्राचीन चित्रकला भी है। चित्रकला वह विभूति है जो हमे ईश्वर से प्राप्त हुई है। ईश्वर एक उत्कृष्ट कलाकार है और उसकी अनोखी चित्रमय रचना है—सृष्टि। इस प्रकार यदि हम यह कहें कि चित्र-कला का आविर्भाव मनुष्य की उत्पत्ति के साथ-साथ हुआ तो कोई अनुचित होगी। यहाँ सभी विषयों के मूल स्रोत देवताओं से माने जाते हैं। चि... उत्पत्ति के सम्बन्ध मे भी एक किवदन्ती है—"एक राजा के पुत्र के .

के समय पिता के करुण विलाप मे द्रवित होकर प्रजापति ब्रह्मा ने मृत राजकुमार का चित्र बनाकर जीवनदान दिया।" यह घटना चित्रकला की दिव्य उत्पत्ति की ओर सकेत करती है और ब्रह्मा द्वारा चित्रित चित्र ही सृष्टि का आदिम चित्र माना जाता है।

शास्त्रकारो ने कला के दो भाग माने है—(1) उपयोगी कला (कारू) तथा (2) ललित कला (चारू)।

उपयोगी कलाएँ मानव की दैनिक उपयोग की कलाएँ है जैसे काष्ठ कला, लौह कला, मृतिकाकारी (कुम्हार का काम) आदि। लेकिन ललित कला मे उपयोगिता के साथ-साथ सुन्दरता का सामजस्य होता है। ललित कलाएँ पाँच प्रकार की मानी गई है—(1) भवन-निर्माण कला; (2) मूर्तिकला; (3) चित्रकला, (4) सगीत कला; (5) काव्य कला।

आरम्भ की तीन कलाएँ नेत्र से सम्बन्ध रखने वाली है। इन तीनो कलाओ मे चित्रकला सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। पारिभाषिक शब्दों मे किसी फलक पर इच्छानुसार रंगो के योग से रेखाओं द्वारा आकृति का निर्माण करना ही चित्रकला है। चित्र का आधार भित्ति, वस्त्र अथवा कागज आदि होता है जिस पर चित्रकार अपने मनोभावो को सुन्दरतम ढग से अकन करता है, यह उसकी कुशलता है, जिसे वह एक सीमित स्थान मे बड़ी से बडी वस्तु का सजीव एव प्रभावोत्पादक चित्रण करता है। चित्रकार प्रकृति से प्रेरणा लेता है, इसी से चित्रकला का प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। चित्रकला एव काव्य कला मे बहुत समानता है। चित्र को हम रेखाबद्ध कविता भी कह सकते है और कविता को हम शब्दबद्ध चित्र। उत्तम काव्य भी वही माना जाता है, जिसमे शब्दो के द्वारा भावो का सफलतापूर्ण चित्रण हो। चित्रकला को मनोहारिणी एव प्रभावोत्पादक कहा है।

कलाओ मे भी चित्रकला सर्वश्रेष्ठ मानी गई है जिसका प्रमाण विष्णु धर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्र का यह सूत्र है—

कलाना प्रवर चित्रम, धर्म कामार्थ मोक्षदम्।
मागल्य प्रथम ह्येतद् गृहे यत्र प्रतिष्ठितम्॥

चित्रसूत्र, 43138

अर्थात् कलाओं मे चित्रकला सबसे ऊँची है, जिससे धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष की प्राप्ति होती है। अत: जिस घर मे चित्रों की प्रतिष्ठा अधिक रहती है वहाँ सदा मगल की उपस्थिति मानी गई है।

कला का इतिहास मानव जीवन के इतिहास से सम्बन्धित है। ससार की विभिन्न सस्कृतियों का इतिहास स्वय कला के इतिहास की खुली हुई पुस्तक है। इसके अध्ययन से आदिकाल से आज तक जो कुछ अतीत है, समभी जा सकती है। इसीलिए बडे से बडे विद्वान, वैज्ञानिक, साहित्यकार, इतिहासकार, पुरातत्त्ववेत्ता आदि अपने अनुशीलन मे कला को एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण माध्यम मानकर चलते

हैं। पाश्चात्य विचारक महान कला मर्मज्ञ रस्किन ने बड़े अनुभवों के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि "कला संसार की सभ्यताओं की पुष्प रूप है।"

भारतीय चित्रकला के आरम्भ का कोई निश्चित काल या समय तो नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि सभ्यता का विकास पूर्वी देशों (जिसमें भारत अग्रगण्य है) में सर्वप्रथम हुआ। आदि मानव जब कन्दराओं में निवास करते थे, चित्रांकन करते थे और कला-प्रेमी थे। कन्दराओं की चट्टानों, भित्तिचित्र, लकड़ी के टुकड़ों पर की गई कला, शिलाओं के पट्ट पर तराशे गये जीव-जन्तुओं के चित्र आदि इसके साक्षी हैं। पुराणों में मिलता है कि ऋषि नर-नारायण ने उर्वशी का चित्र आम के रस से बनाया और यही चित्रविद्या विश्वकर्मा ने सीखी। रामायण एवं महाभारत-काल आदि में चित्रकला चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। सिन्धु सभ्यता व उसके समकालीन अन्य स्थानों की खुदाई में प्राप्त मृत्तिका पात्रों के अलंकरण कला के श्रेष्ठ नमूने हैं।

उपर्युक्त तथ्यों से यह तो स्पष्ट है, कि चित्रकला भावों का प्रकाश और रस सचारिका है। अत. सच्ची कला वही है, जिससे मस्तिष्क और नेत्रों के द्वारा हृदय आनन्द विभोर होता हो। कला तत्त्व के भाव पक्ष व कला पक्ष में घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों के समन्वय में वास्तविक विकास है। कलाकार चाहे कितना ही भावुक क्यों न हो यदि रचना लावण्य प्रधान नहीं या आकार आलकारितापूर्ण नहीं तो वह मूल्यहीन है और प्रभावोत्पादकता तथा आकर्षण से शून्य है। भारतीय चित्रकला इतिहास में कई ऐसे ग्रन्थ प्राप्त हुए है, जिनमें चित्रकला में आकर्षण तथा सौन्दर्य लाने के कई सिद्धान्त है और जिन तत्वों के द्वारा रचना उत्कृष्टता प्राप्त करती है उनका विवेचन है।

भारतीय चित्रकला सम्बन्धी कुछ तत्त्वों तथा उत्पत्ति आदि का पता आठ सौ ई. पू. से प्रमाणिक रूप में मिलता है। इस काल के महान लेखकों में आचार्य पाणीनी, वात्स्यायन एव भरत के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके ग्रन्थो मे पाणीनी की व्याकरण वात्स्यायन का कामसूत्र एवं भरतमुनि का नाट्यशास्त्र प्रमुख है। इन सभी ग्रन्थों मे कला सम्बन्धी अनेकों उद्धरण आते है जिनमे कला की विवेचना विस्तृत रूप मे की गई है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण, चित्र लक्षण आदि ग्रन्थों मे भी कला की विभिन्न विधाओं को महत्त्वपूर्ण स्थान आदि प्रदान किया गया है।

वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' मे चौसठ कलाओं के साथ चित्रकला की भी चर्चा की है तथा कला के मुख्य छ अंगो का भी वर्णन किया है। भारतीय चित्रकला इतिहास मे ये 'षडंग' अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। ये अग क्रमश. इस प्रकार हैं—

रूपभेदाः प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम्।
सादृश्य वर्णिकाभगं इति चित्र षड़गकम्॥

इन छः अंगों में से प्रथम रूपभेद है, जिसमें प्रकृति-निरीक्षण, आकृतिज्ञान, दृश्य एवं शिल्पकला का ज्ञान कराया है। दूसरा नियम प्रमाण है, जिसमें आकार और शरीर के पच्छेद पर प्रकाश डाला है। तीसरा नियम है–भाव, जिसमें आकृति पर अंतर्निहित भावों के प्रभाव का ज्ञान कराया है। चौथे नियम लावण्य योजना से आकृति में सुन्दरता और माधुर्य लाने की योजना है। पाँचवें नियम सादृश्य में चित्र में यथार्थता व समानता लाने के नियम हैं और अन्तिम नियम वर्णिकाभंग में चित्र में रंगों और तूलिकाओं का वास्तविक एवं क्रमबद्ध प्रयोग बताया गया है। भारतीय चित्रकला में पद्धति की दृष्टि से जिस चित्र में इन नियमों का पालन नहीं हुआ हो, वे चित्र दोषपूर्ण तथा अधूरे माने जाते हैं।

बौद्धधर्म के उदय के पश्चात् भारतीय चित्रकला का रूप भी निखरने लगा। गुफा चित्रों की प्रागैतिहासिक परम्परा को विकसित कर अजन्ता, बाघ, सित्तन वासल, बादामी जैसे गुफा मन्दिरों का निर्माण किया। चित्रकला में भित्ति चित्रण परम्परा को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। यह परम्परा नवीं सदी तक चली। इसके पश्चात भारतीय कला में एक लम्बा अन्तराल आया। पन्द्रहवी सदी के आरंभ तक भारतीय चित्रकला पोथी चित्रण तक सीमित हो गई। मुगलों के आगमन एवं राजपूत राजाओं के कला मोह से भारतीय चित्रकला में 'मुगल' व 'राजस्थानी' जैसी परिपक्व लघुचित्र शैलियों का विकास हुआ। अठारहवीं सदी तक कला के इन दोनों केन्द्रों से हटकर पहाड़ी, घाटियों के प्रदेश में कागड़ा, चम्बा आदि में विकसित होती है। अंग्रेजों द्वारा अपनी सम्पूर्ण संस्कृति का 'भारतवासियों में प्रत्यारोपण की प्रक्रिया से चित्रकला में भी 'कम्पनी शैली' का रूप आया।' भारतीय कला की पारम्परिक धारा से दूर जाते कलाकारों को पुनः पारम्परिक रूप प्रदान करने में अवनिन्द्र नाथ ठाकुर का पुनर्जागरण काल चित्रकला के इतिहास में महत्त्वपूर्ण कड़ी बनी। बीसवीं सदी में भारतीय चित्रकला केवल भारतीय न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय रूप में आ जाती है। अब भारतीय कला शैलीबद्ध न होकर कलाकार की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति हो जाती है। आज देश में हजारों चित्रकार निजी तकनीक, शैली एवं अभिव्यक्ति माध्यमों के मध्य कला प्रवाहित हो रही है।

2
प्रागैतिहासिक कला

मानव के विकास की कहानी पर यद्यपि विद्वानो एवं वैज्ञानिको ने अलग-अलग विचार व्यक्त किये है।

फिर भी यह कहा जा सकता है कि मानव को आज की स्थिति तक आने मे सैंकडो वर्षो की यात्रा करनी पड़ी है। आरम्भिक मानव सभ्यता की इस दौड़ से अछूता था व पशुओ की तरह नगा स्वच्छन्द विचरण करता था। झुण्ड मे रहता था, जंगली जानवरों को मारकर उदरपूर्ति करता था व कदराओ मे रहता था। प्राकृतिक प्रकोपो का उसके मानव-पटल पर खौफ छाया रहता था जिसे उसने कालान्तर मे देवी-देवता मानकर पूजा आरम्भ की। उस समय मनुष्य ने गुफाओ की दीवारों पर कुरेद कर अथवा खनिज रगो के टुकड़ो से रेखांकनो द्वारा चित्रण किया जो आज भी आदि मानव की मनोवृत्ति का परिचायक है।

आदि मानव के विकासक्रम को विद्वानों ने हीमयुग, प्रस्तर युग, धातु युग एव सभ्यता-काल के नाम से ईसा पूर्व 50000 वर्ष से 5000 वर्ष ईसा पूर्व तक के काल को विभाजित किया है। मानव द्वारा क्रमवार इतिहास की सप्रमाण उपस्थिति मे पूर्व के काल को प्रागैतिहासिक काल माना गया है एव जहाँ से इतिहास के प्रमाण प्राप्त होते है, उसे इतिहास व प्रागैतिहास के नाम से स्वीकारते हैं।

इतिहास मे जो निश्चित रूप से इतिहास काल की निर्धारित मान्यता जिसमे मानव अभिव्यक्ति हेतु लिपि का सहारा लेता है साक्षरता मे पूर्व के काल के साथ इस काल मे इतिहास जैसा क्रमवार, समय बद्धता का अभाव है। अत. इस काल को प्रागैतिहासिक माना जा सकता है। प्रागैतिहासिक मानव कलाप्रिय था। आज इसके उदाहरण देश-विदेश की सैंकड़ो प्रस्तर गुफाओ मे देखे जा सकते हैं। विदेशो मे भारत से पूर्व प्रागैतिहासिक चित्र प्राप्त कर लिये गये एवं इसे विश्व में खूब प्रसारित किया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय आदिकालीन चित्र जब प्राप्त होंने लगे तब पाश्चात्य विद्वानो ने आरम्भ मे विशेष रुचि नही दर्शायी व इन्हे कालक्रम मे यूरोपीय चित्रो से बाद मे स्थापित करने का प्रयास किया; जिसे आज विद्वानों ने स्पष्ट कर दिया है कि इन चित्रो का भी इतना ही महत्व है

जितना कि फ्रास अथवा स्पेन के गुफा चित्र मे । विदेशो मे स्पेन की अल्तामिरा, वासोन्दो, कुवादेलफास्तिल्यो, मीन्दाल फ्रास की, लास्को, देलो मेरोनी, फादगा,

रेखाकन–1 आखेट मे रत आदिमानव

मार्मलास, अफ्रीका के एटलस पर्वत शृ खलाओ व सहारा के रगीन स्थान के साथ ही आस्ट्रेलिया एव साइवेरिया आदि जगहो मे सैकडो प्रागैतिहासिक मानव द्वारा निर्मित कला कृतिया प्राप्त हुई है, जिससे आदिमानव के जीवन के रहन-सहन, खान-पान आदि की जानकारी प्राप्त होती है ।

आदिमानव कला प्रिय था इसमे कोई सन्देह नही किन्तु प्राचीनकाल मे कला की प्रेरणा उसे कहाँ से मिली एवं उसने गुफाओ मे कला कृतियो का निर्माण क्यों किया ? यह प्रश्न आज भी विद्वानो की बहस का मुद्दा बना हुआ है । कुछ विद्वान आज इस बात के मानव मे भय-भ्राति प्राकृतिक प्रकोपो से जादू-टोने, टोटके आदि का रूप आया एवं इसे मूर्त अमूर्त भावो को चित्रण के माध्यम से प्रकट किया । दूसरा मत है कि आदि मानव हिंसक पशुओ से आक्रान्त हो जाता था, कभी जगली भैंसो का भय तो कभी किसी अन्य जगली खू खार जानवर से अपना

जीवन संकटमय अनुभव करता था। इसकी रक्षा इस हिंसक पशु का आखेट कर भोग करने की होती थी किन्तु कमजोरी व असहायता उसकी इस रक्षा में बाधक होती थी।

"इच्छापूर्ति का सिद्धान्त" से आदिमानव कन्दराओं की दीवारों पर हिंसक पशु का विभिन्न तरीकों से शिकार कर स्वयं की इच्छा की पूर्ति का परिणाम प्रागैतिहासिक चित्र है। कुछ विद्वानों का मत है कि आधुनिक मानव में आन्तरिक सजावट, अलंकरण व निर्माण की मनोवृत्ति प्रागैतिहासिक मानव की देन है इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप आदिमानव ने अपने निवास स्थानों को अलंकृत किया होगा। इस प्रकार अनेकों मत सामने आये हैं किन्तु मेरी मान्यता है कि प्रागैतिहासिक मानव में कला प्रेम बाल सुलभ प्रकृति की तरह जन्म से ही विद्यमान था जिसने अपने सामने घटित होने वाले दृश्यों को प्राप्य संसाधनों से दीवारों पर अभिव्यक्त किया, जो आज हमारी अमूल्य धरोहर है।

प्रागैतिहासिक कला के विषय एवं विशेषताएं

प्रागैतिहासिक मानव बौद्धिक विकास में पीछे था, जिससे उसके समक्ष चर-अचर जीवन सम्बन्धित घटनाओं को ही वह अपने चित्रों में चित्रित करता था। जंगली जानवरों का शिकार करना आदिमानव का प्रमुख कार्य था। अतः प्रागैतिहासिक गुफाओं में सर्वाधिक आखेट के दृश्य देखे जा सकते हैं, जिसमें हिंसक गैंडा,

रेखांकन–2 मानव आकृतियाँ

हाथी, सूअर महिष, बैल, भैंसे, चीता, व्याघ्र, घोड़ा, हिरण, साभर, बारहसिंहा आदि को विभिन्न औजारों से मारते हुए अथवा घेरा डाले आक्रमण करते दिखाये गये हैं। गुफाओं में मानव आकृतियों का सरल चित्रण है जिसमें धनुर्धर, अश्वारोही आपसी युद्ध में लिप्त, मधु निकालते, गाड़ी हाँकने, बोझ उठाने, कावड़िया नृत्य...

मे रत, बासुरी वादक, चरवाहे आदि के चित्र भी मिलते हैं, इसी प्रकार अनेको पशुओं को झुण्ड अथवा स्वतन्त्र रूप मे चित्रित किया है, जिसमे वाहमन, अश्व, वृषभ, हिरण, बारहसिंहा, सूअर, हाथी, भालू, मगर, गेंडा, जिराफ, छिपकलियाँ आदि चित्रित किये गये हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आदिमानव सौन्दर्य का उपासक था एव किसी एक विषय मे बंधकर रहना पसन्द नहीं करता था। सारा का सारा चित्रण सूक्ष्म भावात्मक है। चित्रो को देखने मे ज्ञात होता है कि आदिमानव के पास रंग बहुत सीमित थे, जिनमे प्रमुख गेरू, सफेद मिट्टी, और हिरौंजी (हिरमिच) है। आज के बने पोस्टर रग और तेल रगो के समान वे रग नही थे। सभी रंग शिलाओ पर हाथ से पीसे जाते थे। कुछ गुफाओ के पास ऐसी-ऐसी शिलायें मिली है जो रग पीसने के लिये प्रयुक्त की जाती थी। ये शिलायें विन्ध्याचल की गुफाओ के निकट मिली है; जिनसे यह अनुमान लगाया जाता है कि रग पीसने का काम एक बडे पैमाने पर होता था। कई प्राप्त चित्रो मे लाल रंग अधिक प्रयुक्त हुआ है और कालिख (काले रग) का प्रयोग भी कही-कही पाया जाता है।

चित्रों को बनाते समय अनेक शैलियो का प्रयोग किया गया है तथा कई बार स्थानों के अभाव मे चित्र परस्पर एक दूसरे पर भी रगे गये हैं। प्रोफेसर लेवी ने प्रागैतिहासिक कला के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त नियत किये हैं, तथा कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। उनका सक्षेप मे कथन है कि प्रागैतिहासिक आकृतियो का प्रत्येक अग, चौड़ाई से व्यक्त किया गया है और उसके स्वरूप मे एक निश्चित प्रणाली है। रोगर फ्राय ने लिखा हैं कि यह विशेपता मिश्र और आसीरी शिल्प मे काफी मिलती हैं। इस काल की कला मे रेखांकन को प्राथमिकता दी गई है। प्रमाण (प्रोपोर्शन) का अभाव हैं। क्योकि प्रागैतिहासिक मानव इससे अनभिज्ञ था। प्राय सिर शरीर के हिसाब से छोटा बनाया गया है और कठिन अगो को छोड दिया गया है। अधिक प्राचीन आकृतियो मे पशु के दो ही पैर दीख पड़ते है। और आख के स्थान पर एक बिन्दी ही बना दी गई है जिस तरह बालक पेन्सिल लेकर और दाब कर मोटी रेखायें खीचता है उसी तरह आदिमानव ने अपने पैने औजारो को दाबकर गहरी रेखायें खोदी हैं।

बाद के चित्रो मे नाक, कान, खुर, चार पैर आदि सभी बनाये गये है। प्राचीन चित्र केवल रेखाओ से बने है और रगो का प्रयोग बाद मे हुआ मालूम पडता है। आदिमानव मे रगो के माध्यम से वस्तुओ को चटकीले तथा सुन्दर बनाने की भावना निहित थी। रगो का प्रयोग वे छापा लगाकर करते थे, सफाई के साथ नही।

प्रागैतिकयुगीन चित्रो की शैली यथार्थ पूर्ण एवं शुद्ध भावात्मक है, जिसकी झलक संसार के अन्य देशो की गुफाये अल्तामीरा व लास्कू आदि मे मिलती हैं। इन रचनाओ मे उनकी मूल भावना है—'प्रकृति पर मानव विजय के दृश्यो का

अंकन ताकि घटनाए विस्मृत न हो जाये। प्रागैतिहासिक कलाकार अविकसित एव साधनहीन था। परन्तु चित्रों की शैली से तत्कालीन जीवन के आन्तरिक उल्लास और भावों का सहज ज्ञान प्राप्त होता है। शिकारी जीवन व्यतीत करने वाले मानव में भी चित्रकला द्वारा भावाव्यक्ति प्रकट करने की प्रवृत्ति विद्यमान थी, यही एक प्रसन्नता एव आश्चर्य का विषय है। अधिकाँश चित्र आज के समय के थपेड़ो से मिट रहे है या उनमे धुधलापन आ रहा है, अथवा कई चित्रो को दुबारा चित्रित किये जाने का दुस्साहस भी जान पड़ता है। परन्तु जो भी हो इन चित्रो की खोज से आदिमानव के सामाजिक एवं जन-जीवन का पता चलता है तथा जिन भावनाओ से प्रेरित होकर, जैसा भी चित्राकन हुआ है, वह उत्कृष्ट है।

भारत की प्रागैतिहासिक कला:

भारत मे सम्पूर्ण महाभारत प्रागैतिहासिक गुफा चित्रो से भरा पड़ा है। आज प्रत्येक राज्य मे इस काल के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस काल की कला भारत के विस्तृत भू-भाग मे फैली हुई है। जिसके प्रमुख केन्द्र निम्नानुसार है —

मिर्जापुर—विन्ध्याचल पर्वत शृ खला मे उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर क्षेत्र मे अनेको गुफायें तथा शिलाश्रय प्राप्त हुए है। लिखनियान मे हाथी का आखेट, लिखनिया के पशु आखेट के दृश्यो के साथ-साथ नर्तक एव वादक समूह सुन्दर बनाये गये है। विजयगढ, खोडहवा, रौप आदि स्थान प्रागैतिहासिक मानव के आयाम थे जिसमे सैकडों आखेट आदि के दृश्य चित्रित हैं।

सिंहनपुर—मध्य प्रदेश मे रायगढ क्षेत्र मे सिंहनपुर मे अनेको चित्र गुफाओ मे प्राप्त हुए है। जिनमे जंगली साड का बरछो आदि से शिकार का दृश्य अकित है। यही जंगली भैसे का शिकार का भी दृश्य अकित है। इसी क्षेत्र मे कबरापर्वत करमागढ, नवागढ, सेरपुर आदि मे भी शिलाश्रय एव गुफायें मिली है जिसमें अन्य चित्रो के अतिरिक्त क्षेपाकन (स्टेन्सिल) पद्धति मे निर्मित चित्र भी मिले हैं।

पंच मढ़ी—मध्य प्रदेश के पंचमढी क्षेत्र मे भी अनेको गुफाओ व कला केन्द्रों का पता चला है, जिसमे आखेट के अतिरिक्त मानव का आपस मे सशस्त्र युद्ध सितार वादक गदर्भ मुख देवता चित्रित है। इस क्षेत्र मे भाड़ादवे गुफा मे शेर का आखेट तथा अन्य गुफाओ में स्वास्तिक पूजा, साभर का आखेट, चरवाहे शृंखलाबद्ध धनुर्धर, नर्तक आदि चित्रित किये हैं।

होशंगाबाद—(म. प्र.)—यहा जीवो के समूह आखेट के दृश्य जिराफ, साभर, धनुर्धारी आदि बनाये गये है। आदमगढ मे हाथी पर सवार आखेटो का जगली भैसे का शिकार प्रभावी चित्र है। इनके अतिरिक्त भोपाल, बाडा, ग्वालियर, बिहार एवं राजस्थान की अनेक पहाड़ियो एव जंगलो मे प्रागैतिहासिक मानव द्वारा निर्मित गुफा चित्र प्राप्त हुए हैं।

भारत मे उपर्युक्त केन्द्रों के प्रकाश मे आ जाने से भारतीय प्राचीन सभ्यता, सस्कृति और भारतीय भावनाओं का प्रामाणिक वृत्तान्त ससार के सामने आया है एव आदि मानव की कला प्रियता व सौन्दर्य उपासना के दर्शन होते है।

रेखाकन–3 भैंसे का शिकार

प्रागैतिहासिक कला को आधुनिक युग मे आदर्श स्वरूप माना गया है एव अनेको आधुनिक कलाकारो ने प्रागैतिहासिक निश्चलता, स्वच्छन्द अभिव्यक्ति व स्वाभाविक स्वरूप से आकृष्ट होकर अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग बनाया है। प्रसिद्ध विद्वान शेल्डन चीने ने अब गुहावासी मानव द्वारा बनाये गये चित्र सबसे रचनात्मक अर्थ मे आधुनिक निर्णित किये जा रहे हैं एव आदर्श स्वरूप कहकर इसकी महानता को
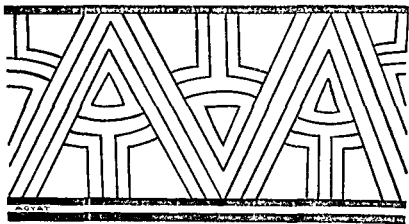
रेखाकन–4 सिन्धु घाटी की खुदाई से प्राप्त मिट्टी के बर्तनो पर बना आलेखन

स्वीकारा है। इसी क्रम मे प्रसिद्ध विद्वान ब्राड्रिक के विचार है कि यदि स्पेन के सन्दर्भ मे पार्पेलो से पिकासो तक की कला एक साथ आती है तो क्या आश्चर्य है ? यदि भारत मे भी होसगाबाद से हुसैन तक के कला विकास को साथ-साथ देखना सम्भव हो जाये।

सिन्धु घाटी की चित्रकला—ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व के लगभग भारत मे सिन्धु सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं सुमेरियन, असिरियन, मिश्र आदि की समकालीन पूर्ण विकसित सभ्यता थी। सिन्धु सभ्यता खुदाई मे दो प्रमुख केन्द्र प्राप्त हुए है जो कला की दृष्टि से पूर्ण विकसित थी। खुदाई मे कलात्मक बर्तन, मुद्राये (मुहरे) जेवरात, मिट्टी व धातु की मूर्तिया प्राप्त हुई है। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि इन बहुमंजिली अट्टालिकाओं, विकसित नगरो आदि मे चित्र-कला भी इतनी ही महत्वपूर्ण स्थान पर होगी। किन्तु दुर्भाग्य से चित्रकला से सम्बन्धित चन्द मृत्तिका पात्रो पर बने चित्रो (रेखांकन न. 4) के अतिरिक्त सब कुछ नष्ट हो गया है। मृत्तिका पात्रो पर मानवाकृतिया, पशु-पक्षियों के आलेखन व ज्यामितिक रूपों को गेरू, काले व सफेद रगो मे निर्मित किया गया है जो तत्कालीन कला को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करने मे सक्षम है। हाल ही मे हुई अन्य स्थानों की खुदाई से यह बात स्पष्ट हो गई है कि भारत मे सिन्धु घाटी की यह सभ्यता सिन्धु नदी तक ही सीमित नही थी किन्तु इसके केन्द्र (लोथर, रोपड, आहड, पीली बगा आदि) मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान व बिहार तक फैली हुई थी जिनकी खुदाई मे पुरातत्व विभाग सक्रिय है।

सिन्धु घाटी में चित्रकला के दर्शन हमे घरेलू बर्तनों पर की गई चित्रकारी मे प्राप्त होते है। घरेलू उपयोगी बर्तनो मे कटोरे व लोटेनुमा गोल पैदे के पात्र अधिक मिले हैं, साथ ही अनाज सग्रह हेतु निर्मित बडे-बडे मृत्तिकापात्र भी हडप्पा एवं मोहनजोदडो मे प्राप्त हुए है। इन पात्रों पर सीमित रगों में लाल रग चढ़ाकर सफेद रग मे सूक्ष्म रेखांकन से अलकरण कर की गई है। पात्र चित्रणों मे ज्यामितिक आकारो का सहारा लिया गया है जिसमे वृत्त, त्रिभुज आदि से आडी एवं खडी रेखाओं के जाल बुनकर अलकरण तैयार किये गये हैं। इसके साथ ही पात्रों पर पशु-पक्षियों, फूल-पत्तियों एव मानवाकृतियों का चित्रांकन सुन्दर ढंग से सरल आकारों मे किया गया है। मानवाकृतियो एव पशु-पक्षियो के चित्रांकन मे आकृतिया सरल व अलकारिक बनाई गई है। मानवाकृतियो का भी प्राचीन कलाकारों ने समावेश किया है। एक पात्र मे एक मछुआरा अपने जाल के साथ चित्रित है जिसमे मछलिया कछुआ व पानी चित्रित हुआ है। एक पात्र मे चौपड की आकृति व कई पात्रों में मानवाकृतिया बनी हुई प्राप्त हुई है, वृक्ष पर बैठे पक्षी, हिरणी अपने बच्चे को दूध पिलाती हुई। इसी प्रकार एक खड़ी आकृति व मुर्गा आदि भी बने हुए है। ऐसे सुन्दर पात्र मजबूत, पतले एव हल्के है जिनका रग भूरा, गुलाबी तथा हल्का पीला है, जिसमे तूलिका द्वारा काले सीपिया अथवा कत्थई रग मे चित्रांकन हुआ है। इन केन्द्रों से प्राप्त सभ्यता के चिन्ह एवं कलाकृतियों के प्राचीन उदाहरण देश के विविध राजकीय संग्राहालयो मे संग्रहित है।

3
प्राचीन काल

प्रागैतिहासिक युग के धुंधले शिला-पट्टिका चित्रों को छोड़ कर अब हम प्राचीन काल मे प्रवेश करते है। ईसा से 3000 हजार वर्ष पूर्व भी भारतीय जीवन में कला और शिल्प के प्रति गहरा अनुराग था। 1924 ईस्वी मे मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई हुई, जिससे यह पता चलता है कि भारत मे कला व शिल्प के प्रति कितनी रुचि थी। सर जॉन मार्शल नामक पुरातत्त्ववेत्ता ने लिखा है—"सिंध व पंजाब के क्षेत्र मे निवास करने वाले अत्यन्त सभ्य थे और कला-कौशल में निपुण थे। उनकी निर्माण कला अद्वितीय थी। उन्होंने विशाल नगरो, मूर्तियों, सिक्कों, बर्तनो आदि का निर्माण किया। उनके बनाये मिट्टी के बर्तनों तथा सिक्कों पर पशुओं के चित्र अंकित है जो उस समय मनुष्यों का चित्रकला प्रेम का प्रतीक मात्र है।" भारतीय संस्कृति का आदि रूप हमें वेदों मे ही दृष्टिगत होता है। आर्यों द्वारा रचित ये वेद अत्यन्त प्राचीन है तथा इन वेदों मे चित्रकला सम्बन्धी अलौकिक ज्ञान के दिग्दर्शन होते है। वेदो को कई लोग ढाई हजार और कई तीन हजार वर्ष पूर्व के मानते है। स्वर्गीय डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने तो कुछ वेद मन्त्रों के आधार पर यह निर्णय दिया है कि ऋग्वेद के कुछ मन्त्र तो दस हजार वर्ष पूर्व के है। यह तो प्रमाणित हो चुका है कि ऋग्वेद सबसे प्राचीन वेद है जिसमें चित्रकला सम्बन्धी वर्णन मिलता है।

प्राचीन कालीन चित्रकला के उदाहरण इतिहास मे बहुत कम मिलते है। यह काल ईसा से 300 वर्ष पूर्व का है। प्राचीन कालीन चित्रकला के सबसे अच्छे उदाहरण मध्य प्रदेश के अन्तर्गत सरगुजा रियासत मे रामगढ नामक पहाड़ियों की गुफाओं में मिलते हैं। ये गुफाएं मध्यप्रान्त के पेन्ड्रा रोड स्टेशन के लगभग 100 मील के अन्तर पर पहाड़ियों के बीच है। चित्रों के अवशेष जोगीमारा गुफा में पाये जाते हैं। डॉ ब्लौच ने इन गुफाओं का पता सन् 1904 मे लगाया था। तत्पश्चात् पुरातत्त्व विभाग के तत्त्वावधान में बाबू असित कुमार हल्दर तथा बाबू सुरेन्द्रनाथ गुप्त सन् 1914 से उन चित्रों की प्रतिलिपि करने हेतु रामगढ गये थे। उन कलाकारों ने खोज द्वारा पता लगाया है कि गुफा में चित्र छतों पर बने हैं, चित्रकारी अच्छी भी नहीं है। जान पड़ता है कि प्राचीन चित्रों के रंग धुंधले पड़ गये थे।

और तत्पश्चात् अनाड़ी हाथो ने उन पर पुनः रंगो की परत लगाने का दुस्साहस किया है। प्राचीन काल के चित्रो से उस काल की कला-पिपासा का पता तो चलता है परन्तु संयोजन परिपक्वता तथा कौशल की दृष्टि से चित्राकन निम्न श्रेणी का जान पड़ता है। प्राचीनकाल के चित्र यदि उसी अवस्था में मिलते तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता था कि ये चित्र कदाचित सुन्दर थे, परन्तु रगो के पुन आवरण लगने से वे सब निकृष्ट जान पड़ते है। प्राचीन काल के चित्र भी शिला-पट्टिकाओं पर बने मिलते है क्योकि उन चित्रकारों के लिये वही स्थान था। उस समय रेखाचित्र ही बनते थे और फिर उन पर रंगो का प्रयोग होता था। उस काल की चित्रकला का विषय दैनिक जीवन ही था। दैनिक जीवन की वस्तुओ और पशुओं आदि का चित्राकन करना ही उनके विषय थे।

प्राचीन चित्रो की कथावस्तु के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी कहा नही जा सकता। डॉ. ब्लोच ने इन चित्रो की शैली ग्रीक बताई है परन्तु चित्रित विषय से यह बात सही नही जान पड़ती। कला मर्मज्ञ रायकृष्ण दास ने इसकी शैली जैन बता कर संतोष लिया है तो हल्दर महोदय ने इसका सम्बन्ध रायगढ के प्राचीन मन्दिर की देवदासियों से बताया है। इतना अवश्य है कि बाईस सौ वर्ष प्राचीन कला मे वृक्ष, हाथी, रथ, मकर, सूर्य, वरुण, इन्द्र, वैश्याये तथा नग्न स्त्री-पुरुष आदि कुशलतापूर्वक चित्रित है। मूल चित्रो की सशक्त, सुन्दर एव स्पष्ट रेखाओं के दब जाने से चित्रों का कौशल भद्दा हो गया है। डिजाइन की दृष्टि से प्राचीन कला अजन्ता के काफी निकट है। साथ ही साथ इस शैली मे तथा तत्कालीन वस्तु और शिल्प में जो समानता दिखाई देती है वह कुछ अर्थ रखती है। प्राचीन कालीन चित्रों मे रगो का अभाव था। वह मिट्टी के रंग और वही मिल-बट्टे रंग पीसने के काम आते थे। लाल व सफेद तथा कालिख का प्रयोग बहुधा हुआ जान पड़ता है। पीले रंग को भी प्रयोग मे लाया गया है परन्तु वह लाल रग के नीचे लगाया गया है। यह लाल रग के उड़ जाने से ऐसा प्रतीत होता है।

जोगीमारा गुफा के चित्र

जोगीमारा गुफा अत्यन्त प्राचीन है। इसका पता गुफा के प्राचीर के पत्थरो पर शिलालेख मे मिलता है। शिलालेख की लिपि अशोक लिपि से प्राचीन है। यह एक प्राकृतिक गुफा है जो 10 फीट लम्बी, 6 फीट चौड़ी तथा करीब 7 फीट ऊंची है। गुफा की छत पर सात चित्र अंकित है जिन्हें "पैनल चित्र" कह सकते हैं। प्रत्येक चित्र लाल रग की रेखाओ से पृथक् किया गया है। एक पैनल चित्र मे मनुष्य, हाथी व मकर की आकृतियां है—मकर के नीचे नदी लहरें बताई गई हैं। दूसरे चित्र मे एक वृक्ष है जिसके तना और तीन शाखायें बताई गई हैं। वृक्ष के नीचे कुछ आकृतिया बनी है। वृक्ष की शाखाओं सहित तीन-चार पत्तियां को बताकर उसमें भी लाल रग भरा है। एक अन्य चित्र की पृष्ठभूमि सफेद रंग की है जिसमें

काली रेखाओं के योग से एक बाग बनाया गया है जो सूक्ष्म रूप से अंकित है। पुष्प का रंग भी लाल है तथा उस पर एक नृत्य में लीन युग्म है, चेहरे जिनके अस्पष्ट हैं। एक और चित्र का विषय अद्‌भुत है जिसमें न अनुपात है और न अभीष्ट भाव। पालती मारे बैठी एक स्त्री का चित्र भी उसी के समीप चित्रित है। स्त्री के पास कुछ आकृतियाँ नृत्य करती दिखाई पड़ती हैं। शेष पैनल चित्र समय के अभाव से मिट से गये हैं जिनसे किसी प्रकार का पता नहीं लगता। जोगीमारा गुफा के चित्र कला की उन्नत अवस्था का ज्ञान नहीं कराते केवल कलाप्रियता एवं तत्कालीन समाज की झाँकी देते हैं। अब यदि इन चित्रों को आज अजन्ता के चित्रों की भाँति सुरक्षित रखने का प्रयास किया जाय और उसमें सफलता मिले, सन्देह है। काल के थपेड़ों से अधिकतर चित्र नष्ट हो गये हैं किन्तु जोगीमारा की गुफायें अजन्ता के गुफा चित्रों की व भित्ति-चित्रण की महत्वपूर्ण कड़ी है। यह स्पष्ट है कि अजन्ता के चित्रों का निर्माण जोगीमारा की गुफाओं की प्रेरणा से हुआ।

प्राचीन साहित्य में चित्र विवेचना 500 ई० पू० से 200 ई० पू० के मध्य अनेक साहित्यिक रचनायें लिखी गई। चित्रकला के प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों में नग्नजीत तथा प्रह्लाद कृत चित्रलक्षण के नाम विशेष उल्लेखित हैं। तिब्बत में प्राप्त चित्रलक्षण ग्रंथ में कला की उत्पत्ति, चित्रभेद-चित्रण सामग्री आदि का विवेचन है। वाल्मीकि कृत रामायण में चित्र रचना एवं चित्र सम्बन्धी सन्दर्भ जगह-जगह चर्चित हुआ है। महाभारत की रचना में भी वेदव्यास ने चित्रों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार बौद्ध ग्रंथों, भास के नाटकों, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, पतंजली ऋग्वेद, नाट्य शास्त्र, अष्टध्यायी, कालीदास की रचनाओं, विजयपिटक आदि में चित्रकला के सभी पहलुओं पर विस्तृत विवेचना की गई है।

4

भारतीय चित्रकला के षडंग

कला का प्रमुख उद्देश्य है रस सृजन और इसी से सौंदर्य की सृष्टि होती है। सौंदर्य के साथ-साथ वाह्य रंग-रूपों के समस्त उपादानों की अत्यन्त आवश्यकता रहती है और यही से कला पक्ष का उदय होता है और कला में नियम निर्माण की नीव पडती है। कला के दो पक्ष है—कला पक्ष एवं भाव पक्ष, यथा इन्ही दोनों के समन्वय मे कला के सच्चे रूप का विकास है। चित्रकार कितना ही भावुक हो परन्तु जब तक रचना मे लावण्य नही होता अथवा आकारो मे आलंकारिता का समावेश नही होता उस चित्र से रस सौंदर्य की सृष्टि नही हो सकती अत भारतीय चित्रकला में सौंदर्य एवं आकर्षण तत्त्वों को प्रमुख स्थान दिया है।

भारतीय चित्रकला के सदर्भ मे वर्तमान लेखक एवं कलाविद् अधिकतर चित्रकला के छ अंगो का उल्लेख किया करते है, जिनका वास्तविक प्रयोग प्राचीन भारतीय चित्रकार किया करते थे। भारतीय चित्रकार के लिए इन छ. अगो का अध्ययन एवं सम्यक् ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इन अङ्गो पर कला-मर्मज्ञो ने विस्तृत व्याख्या यदा-कदा अवश्य की है, परन्तु इस अध्याय मे केवल ज्ञान और संक्षिप्त परिभाषा के रूप में थोड़ा वर्णन कर दिया गया है, जिससे कला के छात्र इनसे अवगत हो जायें। ये छ अङ्ग पंडित भारतीय चित्रविद्या के षडंग कहलाते है। इन षडंगों का विस्तृत उल्लेख यशोधर पंडित ने, जो वात्स्यायन के 'काम सूत्र' का टीकाकार है, किया है। यशोधर ने लिखा है कि चित्रकारों को इन छ अंगो का पूर्ण अध्ययन करके ही चित्रांकन करना चाहिए। यशोधर ने एक कारिका भी उदधृत की है—

रूपभेदा प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम्।
सादृश्यं वर्णिकाभंग इति चित्रं षडंगकम्॥

अर्थात् रूपभेद, प्रमाण, भाव लावण्य योजना, सादृश्य और वर्णिका-भंग, ये भारतीय चित्रकला के प्रधान अंग हैं। बौद्ध चित्रकारो ने इन छः अगों को पूर्ण

रूप से अपनी कला मे विशेष स्थान दिया था। अजन्ता और बाघ भित्ति चित्रों में इन अगो का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। यहा तक कि जापानी, चीनी तथा तिब्बत कला तक मे इन भारतीय नियमों का पालन हुआ है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि भारतीय चित्र कला के ये नियम अत्यन्त प्राचीन हैं, जो विदेशो ने भारत से लिये है।

इन छ नियमो में से प्रथम 'रूपभेद'–प्रकृति-निरीक्षण, आकृति का जानना दृश्य और शिल्पकला को बतलाता है। दूसरा नियम 'प्रमाण' आकार और शरीर के परिच्छेद का ज्ञान कराता है। तीसरा 'भाव' आकृतियो पर हृदय के भावों के प्रभाव को प्रकट करता है। चौथा 'लावण्य-योजना' आकृति में सुन्दरता और माधुर्य लाने को कहते हैं। पाचवा 'सादृश्य' चित्रो मे आकृति को यथार्थ वस्तु से समानता प्रकट करता है और अन्तिम 'वर्णिका भंग' चित्र मे रग और ब्रुश (तूलिका) का यथार्थ प्रयोग करना बतलाता है। भारतीय चित्रकला की दृष्टि से जिसमें षडंग विद्यमान न हो वह चित्र, चित्र कहलाने के योग्य नही होता केवल चित्रों का आभास मात्र है।

रूपभेद

साधारणतया रूपभेद आकृति के भेदो को ही कहते है किन्तु चित्र विज्ञान के अनुसार एक से अन्य रूप की विभिन्नता प्रदर्शित होने का नाम रूपभेद है तथा चित्र के गुणो मे यह चित्रकला के नाम से प्रसिद्ध है। वास्तव में अलकार रहित होकर भी जिस शक्ति के अभाव मे अग-प्रत्यग दूषित दीख पड़ें ठीक उसी शक्ति का नाम रूप है। रूप दो प्रकार से देखा जाता है–एक आख द्वारा और दूसरा मस्तिष्क द्वारा। आखों द्वारा देखा गया रूप वाह्य होता है जो किसी वस्तु अथवा मनुष्य विशेष का वाह्य रूप होता है। परन्तु मस्तिष्क द्वारा अन्त रूप देखते है। बाह्य रूप बनावट एव रग इत्यादि से सम्बन्धित है। परन्तु अन्त रूप गुण एव दोषो से। इन दोनों के सुन्दर मिलन से ही रूप ज्ञान सहज हो सकता है। रूप प्रदर्शन रेखाओं द्वारा होता है। रूपरेखा जितनी ही विशुद्ध एव स्वाभाविक होगी, चित्र उतना ही उत्कृष्ट एव सुन्दर होगा। चित्र मे विविध वस्तुएँ होती है और उन वस्तुओ मे भिन्नता के साथ रुचि भी होती है। इसलिए चित्र मे भिन्न-भिन्न रुचियुक्त मनुष्यो का मनोविनोद होता है। लिखा है—

रेखां प्रशंसन्त्याचार्या वर्तनां च विचक्षणः।
स्त्रियो भूषणमी छन्ति वर्णानामितरे: जनाः॥

चित्रसूत्र 41/11

अर्थात् आचार्यगण रेखा की प्रशंसा करते है, विलक्षणगण आलोक तथा छाया का गुण गाते हैं, प्रदर्शकगण वर्तनी की सराहना करते है, स्त्रिया आभूषणो की स्तुति करती है और साधारण मनुष्य रगों के तड़क-भड़क के पक्षपाती होते हैं। इसलिए चित्र मे रूपभेद का होना आवश्यक है। रूपभेद में शरीर के सम्पूर्ण अगो

के प्रदर्शन की आवश्यकता नही होती। रूप के आधार पर सभी अगो को पृथक-पृथक भावों मे दिखलाना चाहिये अन्यथा चित्र मे दोष उत्पन्न हो जाते है। यही कारण है कि पाश्चात्य देशों के कुछ विद्वानो ने भारतीय चित्रकला को रेखात्मक बतलाया है, परन्तु ऐसा नही है–भारतीय चित्रकला रेखात्मक नही, रूपात्मक है।

रूपभेद मे आकृतियो और उनकी विशेषताओं की पहचान को भी लिया गया है। शिल्प शास्त्र में एक साधारण मनुष्य आसान लगाये देवता तथा गन्धर्व उनके वाहन आदि सब अकित करने के अलग-अलग नियम है। इन्ही के आधार पर आगे चल कर बौद्ध और हिन्दू कलाओ ने अपना स्वाभाविक विकास किया है। प्राचीन ग्रन्थो मे सात्विक, राजसिक और तामसिक आकृतियो का उल्लेख हुआ है। आसन लगाये एव ध्यानावस्थित योगी की मूर्ति सात्विक होगी तथा वाहनारूढ आभूषणो से युक्त मुख पर उदारता एव दृढता के भावो को लिए देवताओ की आकृति राजसिक होगी और अत्यन्त भावपूर्ण युद्ध की चेष्टाओ मे पूर्ण मूर्ति तामसिक कहलायेगी। इसी तरह बाल, कुमार, नर, क्रूर एव असुर आकृतियो अकन मे यही वर्गीकरण किया जाता है।

प्रमाण

जिस प्रकार तालहीन सगीत रस का बोध नही कराता, उसी तरह प्रमाण-हीन चित्र से भी रस की उत्पत्ति नही होती। प्रमाण वह नियम है जिसके द्वारा हम प्रत्येक वस्तु की यथार्थता प्रमाणित कर सकते हैं। उदाहरणतया विशाल समुद्र प्रमाण के द्वारा ही कागज पर खीचा जा सकता है। प्रमाण द्वारा रगो मे भी भेद हो जाता है तथा कौनसा रग कितनी मात्रा में मिलाना चाहिये। प्रमाण वह शक्ति है जो बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी वस्तुओं को सरलता से नाप लेती है। प्रमाण चैतन्य की शक्ति मनुष्य, जानवर और पक्षियों सभी मे होती है और बढाने से बढती है। यदि किसी बालक द्वारा हाथी का चित्रण किया जाय और उसके पैर सूंड से छोटे बनते है तो प्रमाण की कमी है। मगर वही प्रमाण शक्ति बालक के बडे होने के साथ-साथ बढती है और वह उसे ठीक चित्रित करने लगता है। इसी प्रमाण शक्ति से पशु मनुष्य के पैरो की आहट को मालूम कर लेता है कि वह कितनी दूर है। प्रमाण शक्ति से बिल्ली चिडिया को पकडने के लिये छलाग मारती है और चिडिया अपनी प्रमाण शक्ति से फुदक कर उसकी शक्ति से बाहर हो जाती है। विश्वविख्यात ताज महल की सुन्दरता शिल्पकार की प्रमाण शक्ति के कारण ही है, यदि उस निर्माणकर्ता मे वह शक्ति न होती तो ताजमहल में जरा भी सुन्दरता न दिखाई देती। यह शक्ति हमारे मस्तिष्क में रहती है। अतएव प्रमाण का होना बहुत आवश्यक है। केवल हास्यरस के चित्रो मे प्रमाण का परित्याग करना पडता है, परन्तु साधारण प्रमाण की आवश्यकता वहा भी रहती है।

चित्रकला वैसे तो अपनी अभिव्यक्ति मे पूर्ण स्वतन्त्र है परन्तु फिर भी चित्र-

कार की प्रारम्भिक अवस्था में कुछ नियमों का आवश्यक ज्ञान हो जिससे एक पूर्ण व्यवस्थित विकास की अभिवृद्धि हो। भारतीय शास्त्रों में पांच प्रकार की प्रतिमाओं का उल्लेख है और उनके निश्चित अनुपात हैं —

1 नर—मनुष्य दसताल–जैसे नारायण, राम, नृसिंह, बालि, इन्द्र, अर्जुन आदि। सर की लम्बाई एक इकाई मानी जाती है और यह एक ताल कहलाता है।

2 क्रूर—भयानक (बारह ताल) जैसे-भैरव, हयग्रीव, वाराह, रावण, कुम्भकरण तथा शुम्भनिशुम्भ।

3. असुर—राक्षसी (सोलह ताल)।

4. बाल—(पांच ताल) गोपालकृष्ण आदि।

5. कुमार—उमा, वामन आदि।

भाव

भाव हृदय के छिपे हुए विचारों को कहते हैं। भिन्न-भिन्न भावों की गति से शरीर में भिन्न-भिन्न विकारों का जन्म होता है, अतएव मानव चित्तवृत्ति रस का अनुगमन करती है और उसी के अनुकूल भाव नियन्त्रित रहता है। जो भाव नेत्र, भृकुटि, हाथ आदि शरीर के अंगों द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं, उनको कायिक-कृत्रिम भाव कहते हैं। चित्र में हम भावों को विचारशक्ति से दिखाते हैं। विचार के अनुसार हमारे मस्तिष्क की वास्तविक अवस्था बदल जाती है और यही बदली हुई दशा भाव कहलाती है।

भारतीय चित्रकला में चेहरों का अंकन भी भावाभिव्यक्ति के लिये प्रयुक्त होते हैं। भारतीय आकृतियों में चेहरे प्राय दो प्रकार के पाये जाते हैं। प्रथम आकार एक अण्डे के समान होता है जिसका प्रयोग पूर्ण सात्त्विक भाव लाने के लिये किया जाता है। दूसरा पान की पत्ती के आकार जैसा होता है। इसका प्रयोग चंचलता लाने के लिये किया जाता है। इस प्रकार के चेहरे नेपाल और बंगाल में मिलते हैं। भाव द्वारा अंगों का परिवर्तन होता है। अर्थात् भाव विशेष में अंगों की निश्चित क्रियायें होती हैं। इसके अनुसार आकृतियाँ समभंग, अभंग, त्रिभंग और अतिभंग होती हैं :

1 समभंगी—इसे ऋजु स्थान भी कहा गया है इसमें कंधे एक ही सीध में बराबर एक ही दशा में होते हैं। विष्णु, सूर्य, लक्ष्मी, बुद्ध महावीर आदि इन्हीं मुद्राओं में प्रदर्शित किये गये हैं। (रेखांकन—5)

2. अभंगी मुद्रा—इस मुद्रा में एक कन्धा दूसरे से नीचा होता है। इसमें ब्रह्मसूत्र या तो दाहिनी ओर गिरता है या बाईं ओर। बोधिसत्वों, भोगशक्ति, गंगाधर आदि इस मुद्रा में प्रदर्शित हैं।

3 त्रिभंगी मुद्रा—इस प्रकार की मूर्ति मे तीन झुकाव होते है और प्रतिमा कमनदंड की तरह खडी हुई होती है। इनमे ब्रह्मसूत्र नेत्र विन्दु के मध्य मे होकर वक्षस्थल तक जाता है और नाभी के दाई या दाहिने ओर चला जाता है। इसमें साधारणतया सभी देवी प्रतिमाएँ आती है।

4. अतिभंग मुद्रा—इस मुद्रा मे त्रिभंग मुद्रा चरम सीमा तक पहुँच जाती है इसके श्रेष्ठतम उदाहरण नटराज की प्रतिमाएँ है।

उपरोक्त सभी मुद्राएँ गति या जीवन की प्रदर्शक है। भारतीय कलाकार इसमें पारंगत थे।
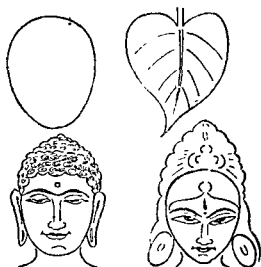
रेखांकन–5 बुद्ध एव देवी रूपो मे 'रूपभेद'

नेत्रों द्वारा भी भावो की अभिव्यक्ति स्पष्ट जानी जा सकती है क्योकि चित्र सूत्र मे नेत्र पाच प्रकार के बताये गये हैं-(रेखांकन न 6) चापाकार, मत्स्योदर, उत्पल-पत्र, पद्मपत्र और शशिकृति। भूमि के निरीक्षण में डूबी हुई आख धनुषाकार, विलासिनी रमणी एव पुरुषों के नेत्र मछली के उदर के समान, शांत और गम्भीर मनुष्यो के नेत्र नीले कमल-पत्र के समान, भयभीत अथवा घबराये हुए मनुष्य के नेत्र पद्मपत्र के समान तथा क्रुद्ध अथवा दुखित अवस्था वाले नेत्र मृग की आख के समान होते हैं। स्त्रियो के नेत्र खंजन पक्षी के समान कौतूहल पूर्ण विलासिता के भाव मे बनाये जाते है। अन्तिम रूप में कहा जाय कि आख की रचना विभिन्न भावो को दिखाने के लिए विभिन्न प्रकार से की जाती है। सफरी मछली की आखें चचलता और अस्थिरता के लिए, खंजन पक्षी की आखें प्रसन्नता के लिए, हरिण की

आंखे सरलता और निरपराधिता के लिए तथा कमल की आंखें सात्विक शान्ति व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होती है। भौंहे भी भाव के अनुसार विभिन्न प्रकार की होती हैं। धनुषाकार भौहो का प्रयोग स्त्रियो के लिए तथा नीम की पत्ती के आकार वाली भौंहो का प्रयोग मनुष्य के लिये किया जाता है।
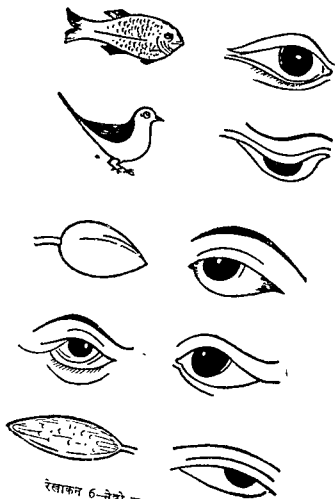
रेखांकन 6—नेत्रो द्वारा भावाभिव्यक्ति

इससे यह प्रकट होता है कि भावो के अनुसार नेत्र की आकृति भी बदल जाती है। प्राचीन भारतीय चित्रकार इस अंग का पूरा ध्यान रखते थे। उनके चित्रो

में छाया की मात्रा कम रहती थी। केवल शरीर के अग परिवर्तनों द्वारा हृदयस्थित भावों को ही प्रदर्शित करते थे। शरीर के अगों के परिवर्तन द्वारा तीन प्रकार से भाव उत्पन्न होता है। प्रथम—देखने, सुनने, सूघने और और स्वाद लेने से, दूसरे —बोलने या काम करने से, तीसरे— मस्तिष्क अथवा हृदय आदि पर किसी प्रकार का प्रभाव पड़ने से बाह्य भाव पहले हमारे मस्तिष्क को हिलाता है। शारीरिक अगो के परिवर्तन मात्र से बाह्य भाव मालूम हो जाते है तथा मस्तिष्क के परिवर्तन से भीतरी भाव। कुशल चित्रकार अपनी उत्कृष्ट कृति मे भीतरी भावो को भी जान लेता है। तात्पर्य यह है कि जितना कुशल चित्रकार होगा उतनी ही अच्छी रीति से वह भीतरी भावो को प्रदर्शित करेगा। चित्रकला में भाव से रूप का ढग प्रकट होता है और इनके हृदयस्थित भाव ज्ञात होते है। अतएव चित्त मे इस अग का त्याग कदापि नही हो सकता।

लावण्य-योजना

चित्र मे लावण्य योजना का अर्थ मधुरता लाने का होता है। जिस प्रकार मोती के चारों ओर आभा निकलती है, ठीक उसी प्रकार अग-प्रत्यग मे प्रस्फुटित द्युति का नाम लावण्य है अथवा चित्र मे जिस कला-कौशल से आभा प्रदर्शित की जाती है उसी को लावण्य कहते हैं। लावण्य में सरलता एक प्रधान गुण है जो छाया और कान्ति से पैदा होता है। इसी लावण्य की सहायता से चित्र निर्जीव होकर भी सजीव दिखाई देता है। चित्र मे लावण्य, भाव की लगाम को रोकता है, अर्थात् भाव की अधिकता से चित्र को दूषित नही होने देता। लावण्य भावों मे सुन्दरता लाता है। चित्रो मे यदि प्रभा और मोती मे आब नही तो वह किसी भी अर्थ का नहीं होता चाहे वह कितना ही सुन्दर, गोल और सुडौल हो। नाप तोल से बनाया हुआ तथा चमकीले रगो द्वारा सजाया हुआ चित्र लावण्य के बिना अधूरा है। लावण्य वही स्थान रखता है जो स्थान नमक का दाल मे होता है। लावण्य चित्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और बिना उसके चित्र अधूरा रहेगा। भद्दे रगो से ही चित्रित चित्र इस लावण्य मे सुन्दर होगा और मनुष्य काला होते हुए भी लावण्य से सुन्दर हो जायेगा।

वात्स्यायन ने चित्र मे लावण्य प्राप्ति हेतु अनेको सूत्रो का वर्णन किया है। चित्र के अग्रभाग, पृष्ठ भाग व मध्य भाग तीनो की निजी विशेषताओं की विस्तृत व्याख्या है, आकृति निर्माण मे मुद्राओं को निम्न स्थिति में बनाया जाना चाहिए।

1. ऋजु—पूरे सामने का रूप
2. अर्द्ध-ऋजु—आधा सामने का रूप
3. सचिक—किनारे से लेने वाला रूप
4. अर्द्धाक्षी—किनारे से विहंगम रूप
5. भित्तिक—किनारे से पूरा रूप

इन मुद्राओं अथवा मानवाकृतियों के रूपों को ही भारतीय कलाकार ने आधार मान कर विशाल प्रस्तर शिल्प गुफा, मन्दिर, स्तूप आदि का निर्माण किया।

सादृश्य

वस्तु अथवा दृश्य के साथ तुलना अथवा समानता का नाम सादृश्य है। बिना दृश्य के ज्ञान से सादृश्य का ज्ञान कठिन है। मनुष्य जिस वस्तु को देखता है, वह दृश्य है और दृश्य के साथ समानता का होना सादृश्य है अथवा समानता का ज्ञान सादृश्य है। सादृश्य से अर्थ आकृतियों की अनुरूपता से है। भारतीय चित्र विधान में सादृश्य का महत्वपूर्ण स्थान है—"सादृश्य प्रधान परिकीर्तितम्" पर भारतीय कला का यह सादृश्य कैमरा की यथार्थ प्रतिकृति नहीं होती। भारतीय कला का यह सादृश्य प्राकृतिक उपमानों से बहुत प्रभावित है। जिसमें सत्य को सुन्दरम् के साथ बताने का आग्रह लक्षित होता है। भारतीय कला में शरीर रचना के लिए निम्नलिखित उपमानों का व्यवहार होता है। उदाहरणार्थ—

कान—गिद्ध का पर।	नाक—तिल का फूल, तोते की चोंच।
नथुने—आम की गुठली।	गला—शंख।
कंधे—हाथी का सिर।	भुजा—हाथी की सूंड।
हाथों की अंगुलियाँ—सेम की फली चंपक कली।	धड़—डमरू, सिंह की कमर, गाय का चेहरा।
हाथ पैर—कमल दल या कमल के नवीन पर्ण।	जंघा केले के वृक्ष का तना, हाथी की सूंड।

चित्रकला में समानता का होना आवश्यक है। यदि किसी वस्तु का चित्र अंकित किया जाता है और उसमें उस वस्तु से तुलना नहीं है तो उस वस्तु का चित्र नहीं कहा जा सकता। कमल का चित्र अंकित करते समय पंखुड़ियाँ नोकदार के स्थान पर गोल बना दी गई और गुलाबी की जगह गहरा रंग भरा जाय तो उसमें सादृश्य का अभाव है। चित्रकार को प्रथम तथा सूक्ष्म निरीक्षण रूपरेखा का हृदय-पटल पर जमाव, रंगों का उचित निर्णय तथा अन्य विभिन्नता आदि ध्यान में रख-कर चित्रांकन करना चाहिये। राम व कृष्ण का चित्र खींचना एक-सा ही है मगर एक के हाथ में वंशी तो दूसरे के हाथ में धनुष-बाण है। एक के सिर पर जटाऊ मुकुट तो दूसरे के सिर पर मोर-मुकुट। इत्यादि बातों को प्रमुखता देकर ध्यान रखा जाय और देखने पर वास्तविक वही रूप निखर उठे। पीपल के पत्ते के चित्र में यदि समानता नहीं हुई तो वह पान का पत्ता हो जायेगा। अतएव हमको चित्र में दृश्य के साथ तुल्यता का पूर्ण ध्यान रखना ही उचित रहेगा।

वर्णिका-भंग

रंगों की मिलावट, उनका उचित प्रयोग तथा तूलिका के प्रयोग का नाम 'वर्णिका-भंग' है। किस वस्तु में कौनसा रंग भरना उचित है और किस रंग के साथ

कौनसा रग उपयुक्त रहेगा आदि बातें वर्णिका-भग द्वारा ही ज्ञात होती है। भारतीय रग मुख्य पाच माने गये है। किन्तु आपस मे एक दूसरे के सम्मिश्रण के अनेक रगों की उत्पत्ति हो सकती है जो चित्रों मे प्रयुक्त किये जा सकते हैं। यह सम्मिश्रण कैसे हो– इसका पर्याप्त एव पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। प्रकृति मे जो वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती है, उनके रग भी पृथक-पृथक् होते है अतएव उन वस्तुओं में उन्ही के अनुसार रगो का प्रयोग करना, वर्णिका भग से ही सम्बन्ध रखना है। भारतीय चित्र शास्त्र मे मनुष्य शरीर के वर्ण भी अलग-अलग बतलाये गये है अत. उनमे उन्ही के अनुसार रंगों का प्रयोग हो अर्थात् आकृति के देहानुसार वैसा ही रग प्रयुक्त किया जाय। यदि ऐसा नही होता तो चित्र दोष उत्पन्न हो जाते है। प्राचीनकाल मे बालो के ब्रुशो के स्थान पर घास की बुनी तूलिकाओं का ही प्रयोग होता था। राजस्थानी एव मुगलकाल की शैली मे जो बारीक रेखाकन हुआ है वह गिलहरी आदि के कोमल बालो के ब्रुशो द्वारा ही किया गया है। उसी तरह के रगो मे उसके व्यवहार मे भी पूर्णतया परिवर्तन हुआ था। प्रारम्भिक काल मे कोयला या कालिख, गेरू, खड़िया आदि का प्रयोग था तो बाद मे बौद्ध चित्राकन मे उन रगों का स्थान स्थायी रग पत्थरो ने ले लिया। उनको पीसकर तथा उनमे गोद और कई तरह के लेप आदि मिलाकर प्रयुक्त किये। अत यह स्पष्ट है कि तूलिकाओं एवं रगो के प्रयोग उनका ढग और समयानुसार उनकी आवश्यकताओं का उल्लेख ही वर्णिका-भग है। आधुनिक काल में तो रगो एव तूलिकाओ के अनेक प्रकार है और उनके प्रयोग की विभिन्न पद्धतिया एव शैलिया प्रयुक्त की जा रही है।

— —

5

बौद्धकालीन चित्रकला

भारत का क्रमबद्ध इतिहास ईसा के लगभग 600 वर्ष पूर्व आरम्भ होता है परन्तु चित्रकला का इतिहास इससे भी पूर्व का माना जाता है। कई विद्वानो के मतानुसार बौद्धकालीन चित्रकला का समय 50 ईसवी से लेकर 700 ईसवी तक माना जाता है। प्रथम शताब्दी मे बौद्ध धर्म पूर्णरूपेण विकसित हो चुका था और भारत समस्त देशो का नेता माना जाता था। ससार के लोगो के लिये यह देश तीर्थ स्थान था। भारत शिक्षा का महान् केन्द्र और सभ्यता का ज्योतिपुंज था। बौद्ध धर्म सम्पूर्ण भारत पर पूर्णतया छाया हुआ था और समस्त राजा महाराजा इसके अनुयायी थे। बौद्ध धर्म इस देश तक ही नहीं वरन् सुदूर लंका, ब्रह्मा, स्याम, जावा, जापान, चीन, तिब्बत और खोतान तक प्रचलित हो गया था। बौद्ध धर्म मुख्यत एक चित्रित धर्म है। बौद्ध भिक्षु अपने धर्म का प्रचार चित्रकला द्वारा ही किया करते थे। पन्द्रहवी शताब्दी के प्रसिद्ध इतिहासकार तारानाथ का मत है कि बौद्ध धर्म प्रचारक जहाँ-जहाँ गये उनके साथ ही साथ प्रतिभावान धार्मिक चित्रकार भी गये। अत बौद्ध धर्म को पराकाष्ठा पर पहुँचाने वाली चित्रकला ही थी। प्रचारको के साथ धार्मिक चित्रो का सग्रह भी जाता था। धर्म को चित्रो की सहायता से समझाया जाता जो सरल और सहज होता था। भाषा भी इसमे सहज नही होती तथा मन पर भी गहरा प्रभाव पडता है। उन चित्रो के संग्रह मे भगवान बुद्ध के जन्म-जन्मान्तरो की कथाये एव उपदेश होते थे। पर्सी ब्राउन (Percy Brown) महोदय ने लिखा है कि 67 ईसवी मे चीनी-सम्राट 'मिग टी' ने भारत के बौद्ध विद्वान काश्यपमादग को बुलाया था, जो अपने साथ अनेको कला-वस्तुएं, जिनमे चित्र भी थे, ले गया था।

भारतीय बौद्ध भिक्षु, जो चीन-प्रवासी बन गये थे, भित्तिचित्र रचना करते थे जो केवल भारत की ही देन है। जापान मे भी भित्ति-चित्रांकन के अवशेष मिले है। बिनियन महोदय का कहना है कि होरियुजी मन्दिर के भित्तिचित्र जिनका रचनाकाल आठवी शताब्दी माना है, रग-ढग से पूर्णतया भारतीय है। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ये चित्र अजन्ता के चित्र-विधान पर आधारित है। बौद्ध धर्म की जन्म-भूमि और कला का जन्मदाता भारत है। चित्रकला की जितनी उन्नति बौद्धकला मे हुई उतनी अन्य किसी काल मे नहीं हुई। उस काल के शिक्षा केन्द्र नालन्दा, तक्षशिला आदि थे जहाँ धार्मिक शिक्षा के साथ ही साथ

चित्रकला की भी शिक्षा दी जाती थी। कलाकार केन्द्रीय धार्मिक सस्थाओ से विभिन्न जगहो पर चित्राकन एव शिल्पाकन (तक्षरा) के लिये जाते तथा कार्य समाप्त होने पर पुन स्थानों को लौट जाते थे।

बौद्धकालीन चित्रकला मे भगवान बुद्ध की छाप है—भावो की अधिक प्रधानता है एव स्त्रियो का स्थान उच्च दिखाया गया है। शारीरिक सौन्दर्य अपूर्व बन पडा है। मर्यादा के भाव सयत एव पूर्णतया पुष्ट है, चाहे रानी या सेविका। अग-प्रत्यगो का अकन, अगुलियों की लीलाएँ आदि देखते ही बनती है। स्पष्ट है कि स्त्रियो मे पूर्ण स्वतन्त्रता थी। बन्धन नाममात्र को नही थे। अतः यह सफलतापूर्वक कहा जा सकता है कि हस्तमुद्राएँ और उनसे हृदय स्थित भावो को प्रदर्शित करना बौद्ध काल की प्रमुख विशेषता है।

भारत मे बौद्ध धर्म से सम्बन्धित प्रमुख केन्द्रो का वर्णन नीचे किया जा रहा है—

अजन्ता के भित्तिचित्र

"अजन्ता की कला एशिया और एशिया की कला के इतिहास में उतना ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है, जितना कि यूरोप और यूरोप की कला के इतिहास में असिसी, सिएना और फ्लोरेन्स की कला का है।"

लारेंस बिनियान

अजन्ता के कला-मण्डपो मे कला के अवतरित होने से पहले किसने उसका कार्यारम्भ किया था, कितने दिनो से वे व्यवहृत हो रहे थे और किस प्रकार उनका उत्तरोत्तर विकास हुआ था? इन सब बातो को जानने के साधन प्राय दुर्लभ हो गये हैं। कहते है ब्रह्मा जब सृष्टि-रचना करने बैठते थे तब उनके लिए कोई भी वस्तु असाध्य न रह जाती थी। ऐसा मालूम होता है कि ठीक वैसी ही शक्ति लेकर अजन्ता के कला वीरो ने शिल्प और चित्रों का निर्माण किया है। कितने वर्षो तक छैनी हथोड़े चलते रहे और भगवान बुद्ध की लीलाएँ पार्थिव देह लिये हमारे सम्मुख उतरती गई। अजन्ता की कलाएँ ईसा की प्रथम तीन शताब्दियों से लेकर लगभग छठी या आठवी शताब्दी तक विकसित होती रही है।

अजन्ता भारतवर्ष का कला तीर्थ है। स्थापत्य तक्षरा (निर्माण) तथा चित्र-कला का जैसा भव्य सम्मिश्रण इस एकान्त स्थान मे दिखलाई पडता है, वैसा अन्यत्र कही नही। वाघोरा की कल-कल निनादिनी धारा के ऊपर झूलते हुए से पर्वत की कटि मे लगभग आधा मील चट्टान मे काटी हुई इन उन्तीस गुफाओ मे भारतीय कला की आत्मा का वास है। अजन्ता, हीनयान और महायान दोनो मतो के अवलम्बी बौद्ध कलाकारो की कृति है, जिसमे गुफाओ का निर्माण और अलकरण भिन्न-भिन्न समय पर हुआ है।

अजन्ता गुफाओ तक पहुँचने के लिए बम्बई से जलगाव मार्ग मे रे चलकर पाचोरा पर ही उतरना पडता है और वहा से पहूर ग्राम जाना

पहूर ग्राम से एक कच्चा मार्ग फरदापुर जाता है जो किसी समय निजाम राज्य की सीमा के अन्तर्गत था। फरदापुर मे "गैस्टहाउस" (डाक बगला) और बेगम सराय नामक औरगजेब का बनवाया हुआ एक मुसाफिरखाना भी है। गुफा रक्षक अधि-कारी (क्यूरेटर) आदि यहीं रहते है। उमी गाम के निकट ऊपर पहाड़ियो मे अजन्ता के कला मण्डप छिपे पड़े हैं फरदापुर से चार मील की दूरी पर पहाडियो म वाघोरा नदी कल-कल करती अनवरत बहती है। गुफाओ तक पहुँचने के लिये इसे पार कर किनारे-किनारे घुमाव समाप्त करके प्राय तीन सौ फिट ऊचा वर्तुलाकार दीवार-सा निधा एक टीला पहाड से निकलता है। इस टीने के ठीक मध्य मे बारह दरियो की बनारे बनी है। आधुनिक ढग की सीढिया प्रवेशद्वार तक गई है, परन्तु प्राचीन प्रवेश मार्ग और सीढियो के अवशेष गुफा नम्बर .6 के पास अभी भी भग्नावस्था मे विद्यमान है।
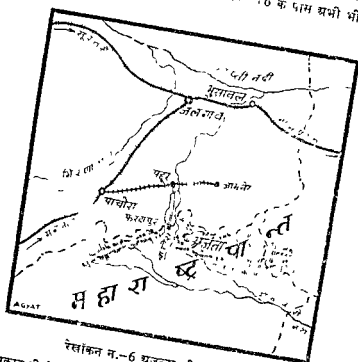
रेखांकन न.–6 अजन्ता की स्थिति

चन्द्राकार टीलो के गर्भ मे कटी ये गुफाएँ—प्रवेशद्वार से लेकर अन्त तक मानव की उपासना और प्रेम, भक्ति और साधना, धैर्य और लगन तथा हस्तकला और चातुर्य्य का जैसा उदाहरण मिलता है, सचमुच वह ससार मे आश्चर्यजनक है। गुफाओ के खुदाई कार्य, शिल्प और स्थापत्य आदि मे एक ही भावना सुसम्बद्ध शृंखला के रूप मे दिखाई देती है जिसकी तुलना ससार के किसी दूसरे स्थान मे नही की जा सकती। गुफाओ के आस-पास घुमावदार बलखाती नदियो, पारिजात पुष्पो

से सुरभित वातावरण, विभिन्न प्रकार के पक्षियों का कलरव और चहचहाता समार अजन्ता को अधिक आकर्षक एवं गौरवशाली बनाते है।

अजन्ता मे दो प्रकार की गुफाएं पाई जाती है—प्रथम चैत्य और दूसरी विहार। चैत्य गुफाओं का उपयोग प्रार्थना या उपासना के लिये होता था, इसी मे वे लम्बी निर्मित की जाती थी। सामने के सिरे पर स्तूप (भगवान बुद्ध के अवशेष के रूप मे गोलाकार समाधि) रहता है। चैत्य ऊंचा होता है और प्रवेश द्वार सुचारु कारीगरी से सुसज्जित रहता है। नम्बर 19 की गुफा अजन्ता का सबसे बडा चैत्य है। चैत्य के द्वार के मेहराबों का आकार पीपल के पत्ते का सा रहता है, इसी से चैत्यों को पहचानने मे कठिनाई प्रतीत नही होती। अजन्ता के पांच चैत्य व शेष विहार है। विहारों का निर्माण साधुओं के रहने तथा अध्ययन करने के लिये किया जाता था। 16 नम्बर की गुफा सबसे बड़ा विहार-मण्डप है।

चित्रकारों का कथन है कि अजन्ता का स्थान आज संसार मे सर्वोच्च है। गुफा नम्बर 1, 2, 9, 10, 16, 17, 20 और 26 के चित्र दर्शनीय एव उत्कृष्ट कला के नमूने है। इनकी चित्रकारी, शिल्पकला, मूर्तिकला का समार मे अद्वितीय स्थान है। कई गुफाओं के चित्र मिट गये हैं, परन्तु उपर्युक्त गुफाओं के चित्रों को काल की एक लम्बी अवधि भी नष्ट न कर सकी। इन चित्रों की कोई निश्चित तिथि नही दी जा सकती। अधिकांश चित्र महात्मा बुद्ध के जन्म-जन्मान्तरों से ही सम्बन्धित है। इतिहासज्ञों का मत है कि इनका समय 50 ईसवी से 70 ईसवी तक है। कुछ विद्वानों का कथन है कि इन चित्रों का समय 200 वर्ष ईसा के पूर्व से लेकर छठी शताब्दी तक है। कई विद्वान यह भी स्वीकार करते है कि गुफा नम्बर 9 और 10 सबसे प्राचीन है क्योंकि इन गुफाओं मे अंकित चित्र अमरावती और सांची की मूर्तिकला से मिलते-जुलते है। पर्सी ब्राउन महोदय ने भी अपना मत प्रकट किया है कि गुफा नम्बर 9 और 10 प्राय पहली शताब्दी, नम्बर 10 के स्तम्भ करीब 350 वर्ष बाद के; 16 व 17 नम्बर की गुफाएं इसके बाद 500 वर्ष तक की तथा नम्बर 1 व 2 का काल 626 से 628 ईसवी तक। अत यह पूर्णतया निर्धारित किया जा सका है कि अजन्ता की यह महान् चित्रकारी सात या आठ सौ वर्षों में पूर्ण हुई। यदि काल और कुटिल अत्याचारियों की दृष्टि इस चित्रकला पर न पड़ी होती तो शायद चित्रों का एक विस्तृत समार अधिक तेजोमय होकर दृष्टि गोचर होता। समय एवं धुएं के प्रभाव से वे विकृत हुए है तथापि आज उन्हें सुरक्षित रखने का प्रयास भारत सरकार द्वारा किया जा रहा है जिसके लिए समस्त समार के चित्रकला-प्रेमी चिर कृतज्ञ रहेंगे।

अजन्ता गुफाओं की खोज

उपर्युक्त तिथियों से यह स्पष्ट है कि अजन्ता के भित्तिचित्र अत्यन्त प्राचीन है, परन्तु इनका पता वर्तमान समय मे ही लगा। इन चित्रों की खोज करने

वालों में सर्वप्रथम श्रेय जनरल जेम्स को है, जिन्होंने 1819 में इन कलामण्डपों को देखा और पूर्ण विवरण तैयार करके रायल एशियाटिक सोसाइटी (Royal Asiatic Society) को दिया । 1843 में मि फर्ग्यूसन द्वारा इसका हूबहू विस्तृत वर्णन

रेखांकन–7 "बोधिसत्व पद्मपाणि"—गुफा सख्या 1

लिखा गया। तत्पश्चात् 1844 ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने चित्रो की नकल कराने का दृढ सकल्प किया और मेजर आर गिल इसके लिए नियुक्त किये गये। उन्होंने 1857 तक काम कराया। वह सम्पूर्ण किया गया कार्य इगलैंड की 'क्रिस्टल पैलस' प्रदर्शनी मे रखा गया परन्तु प्रदर्शनी मे लगी आग ने सभी कुछ जलाकर खाक कर दिया। इसके पश्चात् बम्बई आर्ट स्कूल के प्रिंसीपल मि ग्रिफिथ महोदय ने विद्यार्थियो की सहायता मे 1877 से 1881 तक कार्य किया। चित्रो और खम्भो आदि की प्रतिलिपिया उतारी गयी। इन दस वर्षों मे करीब 50 हजार रु० खर्च पडा और 1899 मे इसके दो ग्रन्थ तैयार हुए और इगलैंड मे भारत मन्त्री के सरक्षण मे रखी गयी। वहा भी आग लग जाने से सभी स्वाहा हो गयी। केवल भारत मे उन चित्रो की फोटो प्रतिलिपिया रह गयी।

इसके पश्चात् लेडी हैरिंघम ने 1911 ईस्वी मे भारतीय चित्रकारो की सहायता से कई घटनामूलक चित्रो की नकलें करवायी और 'अजन्ता फ्रैस्कोज' नामक पुस्तक प्रकाशित करवाई। इसके बाद तो इन गुफाओ के भाग्य ही जाग उठे और निजाम ने राज्य के इन गुफाओं की मरम्मत, सफाई एवं रक्षा का भार वहन करने का दृढ निश्चय कर लिया। गुफा के लिए क्यूरेटर और कई अन्य अधिकारियो की नियुक्ति की गई। आज भारत सरकार की इस पर पूर्ण देख रेख है और पुन. चित्रो की मरम्मत एव दृष्टिकोणों से सुचारु रूप से की जा रही है। आज अजन्ता पर अनेक महत्वपूर्ण खोजें हो चुकी हैं व अनेको ग्रन्थ भारत विदेशी कला मर्मज्ञो द्वारा प्रकाशित हुए है।

अजन्ता के भित्ति चित्रों के विषय

अजन्ता बौद्ध धर्म के प्रचार एव प्रसार का महत्वपूर्ण केन्द्र था। भगवान बुद्ध के उपदेशो को जन-साधारण तक पहुँचाने हेतु इसका निर्माण किया गया क्योंकि उपदेशो के गूढ रहस्य को उजागर करने मे चित्रण सर्वश्रेष्ठ माध्यम स्वीकारा गया है। अजन्ता के भित्तिचित्रो के अवशेषो मे यह ज्ञात होता है कि ये चित्र भगवान बुद्ध को ही आधार मानकर निर्मित किये गये है। भगवान बुद्ध ने बुद्ध जीवन से पूर्व भी पृथ्वी पर समय-समय पर अनेको योनियो मे जन्म लेकर इस ससार मे व्याप्त अन्याय दुराचार आदि व्याधियो से छुटकारा दिलाने का मार्ग दिखाया है जिसे बौद्ध धर्मावलम्बी जन्म-जन्मान्तर की 'जातक कथाएँ' कहते है इन जातक कथाओ से अजन्ता की दीवारें भरी हुई है जिसमे मुख्यत छदन्तजातक, शिविजातक, मातृपोषक जातक, वेसान्तर जातक, मृग जातक, हस्ति जातक, रुरु जातक, मुखपम जातक आदि प्रभावोत्पादक ढग से चित्रित की गई है। इसके साथ ही अजन्ता मे भगवान बुद्ध के जीवन की सभी महत्वपूर्ण घटनाएँ जो बुद्ध-जन्म से निर्वाण तक घटित हुईं, को चित्रित किया है। इन महत्वपूर्ण घटनाओं मे माया-देवी का स्वप्न, राजकुमार सिद्धार्थ, सासारिक सुखो से वैराग्य उत्पन्न होने मे

सहायक चारों घटनाएँ, गृहत्याग, बोधिसत्व की प्राप्ति, उपदेश देते बुद्ध आदि हैं। बुद्ध के साथ-साथ स्थान-स्थान पर राजा-महाराजाओं की राजसी ठाठ के दृश्य, अन्तःपुर, सवारियां, ग्रामीण बैलगाड़ियां पर बैठकर बुद्ध के प्रवचन सुनने व दर्शन हेतु आते हुए बनाये गये हैं जिसमें तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन की झाँकी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इसके अतिरिक्त रिक्त स्थानों एवं दृश्यान्तर गत हाथी, हिरण, बैल आदि पशु, मोर, बाज, कबूतर, मछलियां, मच्छ, सांप आदि को फूल-पत्तियों एवं ज्यामितिक अलंकरणों के मध्य चित्रित किया गया है। अजन्ता में विषय की विविधता के लिए किन्नर, यक्ष, यक्षणियां, गन्धर्व, अप्सरायें, द्वारपाल, बौने प्रेम-युगल आदि भी अंकित हैं।

विभिन्न गुफाओं के चित्र एवं उनकी चित्रकारी
(गुफा नं० 1 के चित्र)

अजन्ता कला-संसार की गुफाओं तक पहुँचने के लिए बहुत सारी सीढ़ियां चढ़नी पड़ती है। सीढ़ियों के बाद जो भी सबसे पहली गुफा पड़ी सरकार ने उस पर नम्बर एक नामकरण किया और उसके पश्चात् आगे क्रम चलता रहा। गुफाओं के निर्माण काल से सम्बन्धित ये नम्बर नहीं केवल सुविधा का क्रम ही है। यह गुफा सीढ़ियों के चढ़ जाने के बाद यही सबसे पहले आती है। इसका निर्माण ईस्वी 475 और 500 के बीच हुआ था। यह 64 फुट लम्बी और 64 फुट चौड़ी है। इसके अन्दर 6' खम्भे हैं और 14 कोठरियां हैं। यह गुफा एक विहार है। गुफा के खम्भों पर खुदाई का कार्य उत्तम ढंग का है। इस कारीगरी में बुद्ध के जीवन की घटनाएँ, स्तूप की पूजा एवं पशुओं के कई दृश्य हैं। अन्दर की एक दीवार पर 20 फुट के एक चौकोर पैनल में भगवान बुद्ध की भारी मूर्ति खुदी है। मुद्रा धर्म चक्र प्रवर्तन की है। उपदेश देते हुए बुद्ध के पास दो चंवर डुलाने वाले हैं उनके नीचे चक्र के बायें-दायें हरिण हैं और बायें हरिण के पास पांच भिक्षु हैं। ये पांच ब्राह्मण सबसे पहले बुद्ध के शिष्य बने थे। एक खम्भे पर एक सिर वाले चार हरिण इस प्रकार बैठायें हैं कि उन सभी का सिर एक ही है परन्तु धड़ चार विभिन्न अवस्थाओं के हैं।

तक्षण कार्य के अतिरिक्त चित्रकारी भी इस गुफा में अद्वितीय है। अजन्ता कला मण्डपों में गुफा नं 1 व 2 के भित्ति काफी सुरक्षित अवस्था में हैं। एक नम्बर की गुफा की चित्रकारी अजन्ता की कला-समृद्धि की पराकाष्ठा का भान सहज में ही करा देती है। ऐसा प्रतीत होता है कि तूलिकाओं पर इतना अधिकार था कि रेखायें भाव में डूबी हुई बनी होंगी तभी ये चित्र इतने अनुरंजक और शानदार बने हैं। इसी गुफा के दालान में 626 से 628 ईस्वी समय की ऐतिहासिक घटना का चित्रण है। राजा पुलकेशी द्वितीय की राजसभा में, ईरान के राजा खुसरो परवेज के राजदूत भेंट अर्पण करते, भारत और ईरान का सम्बन्ध

बनाया है। इसी गुफा में एक सुन्दर चित्र 'काशीराज और नागराज मिलन' का
है। यह एक चम्पेय जातक कथा है। बोधिसत्व पूर्व के एक जन्म में नागराज थे
और कैदी के रूप में बिकते थे। काशीराज ने उन्हें मुक्त कराया और तत्पश्चात

रेखांकन-- 8 यक्ष दम्पती–अजन्ता शैली

उनसे मिलने गये। इस चित्र की आकृतियों में राजा के द्वारपाल और राजकुमारियों व दासियों के चित्र हैं परन्तु संयोजन अत्यन्त पुष्ट हुआ है और आकृतियों और केश कलापों की चित्रकारी इतनी अद्वितीय हुई है कि आश्चर्य में कला की प्रशंसा करनी ही पड़ती है। केवल रेखाओं में ही मानव शरीर को इतनी विविधता से अंकित करने वाले चित्रकार संसार में शायद ही अन्यत्र पाये जायेंगे। बोधिसत्व' पद्मयोगी नामक सुविख्यात चित्र इसी गुफा की एक दाहिनी दीवार पर चित्रित है। यह चित्र उस समय का है जब वे 'बुद्ध-पद' ग्रहण करने के लिए गृह-त्याग करते हैं। मनुष्य के वास्तविक आकार से बड़ा यह चित्र जिसमें त्रिभंगी भाग मुद्रा, मांसल गोल कन्धे, रत्नजटित मुकुट, गलमुक्ताहार दाहिने हाथ में नील-कमल, कोमल कटि, क्षीण भौंहें आदि देखकर ऐसा अनुमान करना ही पड़ता है कि शायद ही संसार में इससे बढ़कर कोई अन्य चित्र हो।

कला समीक्षकों का विचार है कि इस चित्र की तुलना केवल माइकेल एन्जेलो की ही आकृतियों से की जा सकती है जो सिसतीन (Sistine Chapel) में मिलती है। इस चित्र में देह का रंग इतना अधिक यथार्थ है कि देखने वालों को भ्रम में डाल देता है। बोधिसत्व की दाहिनी ओर जो नारी-आकृति है, उसमें भी लगभग वह सभी गुण विद्यमान है। रंगों में प्रमुखता लाल और पीले रंग की है जिनका सम्मिश्रण बड़ी चतुराई से किया गया है। इन्हीं गुणों का एक अन्य रूप बोधिसत्व के पार्श्व में चित्रित एक नारी मूर्ति में भी प्राप्त होता है जिसे "कृष्णवर्णी" राजकुमारी कहा जाता है। इसके पास ही शंखपाल जातक कथा चित्रित है। बाईं ओर महाजनक जातक की कथा है जिसमें महाजनक के राजसी ठाठ, नृत्यांगनाएँ, सेविकाएँ व रानियों को विविध दृश्यों के माध्यम से प्रकट किया है, जो अन्त में महाजनक विश्व के मायामोह का त्याग कर बुद्ध के आश्रय में बौद्ध धर्म स्वीकारते हुए चित्रित किया है।

इसी गुफा की बाईं दीवार पर 'शिवि-जातक' कथा चित्रित है। राजा शिवि पूर्वजन्म में बोधिसत्व थे। चित्र में राजा कबूतर की रक्षार्थ अपने अंग का मांस काट-काट कर बाज की क्षुधा पूरी करने के लिए तराजू के पलड़े पर रख रहे है। सारा दृश्य करुणा और त्याग की भावना उपस्थित करता है। इन चित्रों के अलावा पास ही के द्वार पर प्रेममग्न 'यक्ष-दम्पति' का एक निर्दोष स्नेह-युगल अंकित है।

गुफा के एक अन्य चित्रों में एक जगह बोधिसत्व एक चक्र लिए हैं जो 'चक्रपाणि' कहलाते हैं। बाईं दीवार में "बुद्ध और मार" का चित्र है जिसमें 'मार' तपस्यालीन बुद्ध को प्रलोभन और अपनी युवा लड़कियों द्वारा उनका तप भंग कराना चाहता है, अन्त में बुद्ध विजयी होते हैं। दाईं दीवार पर श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित को चमत्कार दिखाने का चित्र है। बुद्ध भगवान जादू-टोने पर

विश्वास नहीं करते थे परन्तु एक बार उन्होने राजा को ऐसा चमत्कार दिखाया कि उन्हें भगवान अनेक रूपो मे दिखाई देने लगे । गुफा मे पिछली दीवार पर बाईं ओर छतरी के नीचे दीक्षा लेने का दृश्य चित्रित है । दान लेने के लिए चार भिखमगे हैं । एक नवयुवक भिक्षु भिक्षापात्र लिए खडा है, उसके सामने चार स्त्रियां अपनी श्रद्धाजलियाँ चढा रही है । इसके दाईं ओर एक राजा सिंहासन पर बैठा है । इस चित्रावली के नीचे 'महा उम्मग' जातक कथा को चित्रो मे उभारा है । इस कथा मे चार मनुष्य अपने को बुद्धिमान कहते हैं, परन्तु उनकी दृष्टि दुष्टवृत्ति की थी । एक बार प्राज्ञ महोदय की पत्नी ने उन्हें हरा दिया और उन्हें लज्जित किया । एक स्थान पर लडते हुए दो बैल दिखाये गये हैं । गुफा के मुख्य भाग की छत पर की गयी परिकल्पना का चित्राकन अभूतपूर्व है । वहाँ फल-फूल, बेल-बूटे, पुष्प लतायें एव गुच्छ, पशु-पक्षी इत्यादि विभिन्न आलेखनों मे चित्रित हैं । इनके रंग इतने चमकीले और सुन्दर हैं, मानो आज ही रंग में संजोये गये हो ।

(गुफा नं. 2 के चित्र)

यह गुफा 500 से 550 ईस्वी मे बनाई गई थी । इस गुफा के आगे एक बरामदा है जिसके दोनो ओर खम्भों वाली कोठरियां हैं । गुफा में 12 खम्भे और 12 कोठरियां हैं—एक चैत्य है । बरामदे मे कही दास-दासियों सहित नाग राजा को चित्रित किया गया है तो कहीं-कही बड़े-बड़े पेट वाले यक्षो को । एक स्थान पर बच्चा लिए हुए एक स्त्री है । दरवाजे के चारो ओर खूब नक्काशी हो रही है । इसके खम्भों पर भी खूब बारीक काम हो रहा है । कहते हैं कि इस गुफा के चित्र अन्तिम काल के माने जाते हैं परन्तु इनमे भी दो-चार चित्र ऐसे है जो अजन्ता के उत्तम कोटि के चित्रो में प्रतिष्ठित किए जा सकते है । एक चित्र यद्यपि खण्डित हो गया है परन्तु क्षीणकाय रेखायें स्पष्ट ही भावो और घटना को समझा देती हैं । राजमण्डप में एक राजा—दासियों और राजयुवतियो मे घिरे, हाथ मे नंगी तलवार लिए है । एक अभागिनी रमणी जो उसके चरणो पर झुकी, करुणा भीने स्वरो से जीवन की याचना कर रही है और तलवार रमणी की ग्रीवा पर तन रही है मानों अभी-अभी उसे खत्म कर देगी । ऐसा भावपूर्ण और करुणायुक्त चित्र ससार के उत्कृष्ट चित्रों की कोटि मे ही रखा जा सकता है । दर्शक देखकर उस रमणी के प्रति सहानुभूति और बचाने के लिए राजा से मौन याचना करने लगते हैं अर्थात् चित्र को देखकर सहानुभूति की भावना बरस पड़ती है । इसी गुफा मे भगवान बुद्ध के जीवन की अन्य घटनायें चित्रित की गयी हैं जिनमे 'लुम्बिनी यात्रा' माया देवी का स्वप्न और 'श्रा तो का रहस्य' मुख्य हैं । गुफा न. 2 मे आलेखनो की भरमार है । इसके अलावा हाथी, हंस, वृषभ, मानवाकृतियों और युगलो सपेरों की शोभा कलाकार ने मुक्तहस्त से बतलाई है । इसी गुफा-मण्डप में जो चित्र बाद में अंकित हुए हैं वे अजन्ता की सर्वोत्कृष्ट कला-कोटि में नही रखे जा सकते । गुफा के प्रारम्भ में किन्नर आदि बुद्ध

की पूजा मे लगे हुए है। दीवारो पर अनेको जातक कथाये, महाहंस जातक, पानेय-जातक, पुण्यावदान जातक आदि बनी हैं।

(गुफा नं. 9 के चित्र)

गुफा न. 9 एक चैत्य है जो भिक्षुओं के उपासनार्थ निर्मित की गई है। इस गुफा का निर्माणकाल ईसा से 100 वर्ष पूर्व का माना जाता है। गुफा की शक्ल घोड़े की नाल के समान है आगे से पीछे तक सारी छत खड़े नाल की तरह गोल है। चैत्य मे 23 स्तम्भ हैं। गुफा का पार्श्व भाग गोलाईदार है और उसके मध्य गोलाकार खड़ा मंच है जिस पर स्तूप है और स्तूप पर तीन छतरियां निर्मित है। इन छतरियों को भिक्षुगण 'हरमिक' कहते थे। इस गुफा के चित्र हीनयान से अनुप्रेरित है। समय के गहरे प्रभाव से इसके चित्र धुंधले और रेखाये अस्पष्ट हो गई हैं। इस गुफा में चित्रकारी की दो तहे है। प्राचीन कलाकार प्राय पुराने चित्र को बिना मिटाये उसी पर दूसरा चित्र बना देते थे। जब ऊपरी चित्रों की तह झड़ गई तो भीतर के चित्रो की पुरानी तह निकल आई।

इस गुफा मे एक आसीन नारी का चित्र बहुत आकर्षक है और उसकी शैली से साची और बोधगया की तक्षण शैली का स्मरण हो आता है। एक चित्र मे दीवारो से घिरा हुआ एक स्तूप है। कुछ भिक्षु और बुद्ध के उपासक जुलूस बनाकर स्तूप को पूजने जा रहे है। वहाँ बुद्ध के बहुत से चिन्ह है। अन्य गुफा-चित्रो की तरह इसके चित्र अधिक महत्वपूर्ण नही है।

(गुफा नं. 10 के चित्र)

यह गुफा प्राचीनतम मानी जाती है। यह गुफा भी एक चैत्य है और गुफा न 9 की तरह ऊपर से और पीछे से घोडे की नाल की तरह गोल है। यह चैत्य सबसे पहले बना था और शायद इसका तक्षण सबसे पहले ही हुआ है। गुफा न० 9 से यह बहुत बड़ी है, इसकी गहराई 95 फुट, चौड़ाई 4 फुट और ऊँचाई 36 फुट है। इस गुफा के बाहर लिखा है कि यह गुफा वासिठिपुत कटहादी ने बनवा कर दान दी थी। इसका अर्थ है कि गुफा ईसा से 200 वर्ष पहले की है। इस गुफा की चित्रकला और इतिहास की दृष्टि से बड़े महत्व के है जिनमे भील एव अन्य जगली जातियो के सामाजिक जीवन का सुन्दर चित्रण हुआ है। इसमे बाईं ओर 11वें से 15वें खम्भो के पीछे साम जातक कथा चित्रित है। कथा इस प्रकार है कि बोधिसत्व का नाम साम रखा गया है, वे अपने अन्धे माता-पिता के सहारा थे। एक बार नदी मे घडा भरते समय शिकार मे आये बनारस के राजा के तीर से वे मर गये। राजा अन्धे लोगो की सहायता के लिए तैयार हुए। अन्धे माता-पिता के विलाप से द्रवित होकर एक देवी ने मन्त्र पढ़कर उन्हें जीवित कर दिया और उनकी आखें भी ठीक कर दी। यह कथा श्रवण कुमार की जान पडती है। गुफा मे अत्यन्त दर्शनीय एक 'छद्दन्त' जातक कथा है। यह कथा दूसरे से 12वे खम्भे के पीछे तक चित्रित है

रेखांकन–9 राजकुमारी (नागराजकन्या) अजन्ता शैली

कथा सक्षेप मे यह है कि—बोधिसत्व एक जन्म में छ दातों वाले हाथी के रूप मे प्रकट हुए। दो रानियों के माथ हिमालय के निकट झील के किनारे रहते थे। उनकी एक रानी ईर्ष्यावश मर कर बनारस के राजा की रानी बनी और राजा से उस हाथी के दात उखडवाकर मंगवाये। हाथी स्वय उपस्थित हुआ और दांत रानी को देकर लीला समाप्त की। रानी को दात देखकर पूर्व जन्म याद आ गया और मूर्छित हो गयी अन्त मे प्राण त्याग दिए। इस कथा मे हस्तिसमूह का चित्रण इतना सुन्दर हुआ है कि ससार में शायद ही हाथियों की लीलाओं का ऐसा चित्रण हुआ हो।

एक अन्य चित्र में राजा, रानी, राजकुमारी और कई दासिया एक जुलूस के रूप में चैत्य की ओर जा रहे हैं—दो परिचारिकायें वृद्ध की अस्थि-मंजूषा उठाये हुए है। चित्र के सभी पात्र मोतियो के जड़ाऊ कगन एव गहने, हार पहने हैं—स्त्रियो के वक्ष-स्थल खुले, पुष्ट एवं उभरे हुए हैं।

जो कुछ भी आज गुफा न 9 व 10 मे बचा है उससे यह निष्कर्ष निर्धारित किया जा सकता है कि बौद्ध कलाकारो का रगो और रेखाओ दोनो पर समान अधिकार था। सभी चित्रो का सयोजन अपूर्व है। आकृतिया इतनी विशिष्ट कोटि की हैं कि जिनकी समता अजन्ता मे प्राप्त होने वाली किन्ही भी मानवाकृतियो से स्थापित नही की जा सकती है। यह गुफा यद्यपि हीनयान की है तथापि उसके स्तम्भों पर भगवान बुद्ध का प्रभामंडलयुक्त चित्र स्पष्टत बाद का है जो महायान से अनुप्रेरित है।

(गुफा नं 16 के चित्र)

इस गुफा की बाई दीवार के एक ओर लेख खुदा है उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इसका निर्माण वाकाटक वंश के राजा हरिषेण के मन्त्री वाराह देव ने करवा कर तपोधन तापसों के निवास हेतु दान दी। राजा हरिषेण का शासन-काल 475-500 ईसवी था। इसमे बीस स्तम्भ निर्मित है। छत का तक्षण कार्य ऐसे आश्चर्यजनक ढग से किया गया है कि उसमे काष्ठ कडियो का भ्रम होता है। इन नकली कड़ियो और शहतीरो के सिरे गणों, संगीतज्ञो और उडते हुए विद्याधरो द्वारा सम्भाले हुए हैं।

कला की दृष्टि से इस गुफा के चित्र अत्यन्त उच्च कोटि के माने गये है। कहते है कि इस गुफा का सम्पूर्ण अन्तराल कभी चित्रो से पूर्ण था परन्तु अब सख्या कम हो गई है। इस गुफा के दो चित्र दर्शकों को भाव-विभोर कर देते हैं। एक चित्र 'मरणासन्न राजकुमारी' का है। राजकुमारी की भाव भगिमा, मुद्राएँ और अलसता मे डूबी देह, यम के निमन्त्रण की राह देख रही है। परिचारिकाएँ सेवारत हैं, चारो ओर जीवन के प्रति निराशा के बादल आच्छादित हैं। मृत्यु, कपकपाते होठ, झुकती हुई ग्रीवा, गिरती हुई पलकें, झरते हुए नेत्र और लटकते हुए बाहु चारो ओर व्याकुलता का वातावरण सजोये हैं। ऐसा दृश्य एव भाव-भंगिमाओ के

राजकुमारी (काशीराज कन्या) अजन्ता शैली का रेखांकन–10

ऐसे पूर्ण संयोजन की कल्पना मात्र भी आधुनिक कलाकार नहीं कर सकते। फ्लोरेन्टाइन कलाकार इससे बढकर भावों का वृहत् गिरिशृंग न खड़ा कर सकते हैं, अथवा वेनेशियन चित्रकार रंगों का अनोखा अधिकार इसमें बढ़कर जता सकते हैं, परन्तु ऐसी भावाभिव्यक्ति उतारना टेढ़ी खीर है। प्रिंसिपल ग्रिफिथ्स महोदय ने कहा है—"भावना, कारुण्य तथा कथा चातुर्य की दृष्टि से इससे बढकर कला के इतिहास में कुछ भी नहीं है।" अन्य चित्रों मे इस गुफा के मध्य में उपदेश मुद्रा में बुद्ध की मूर्ति है जिनके पांव सामने लटके हैं। इस गुफा से बायी ओर नन्दकुमार के वैराग्य की कथा चित्रित है जिसमें उसकी स्त्री के गहरे शोक को कलाकार ने बहुत उभारा है। इसके साथ ही हस्तीजातक, महा उमग जातक, सौंदानन्द की कथायें चित्रित हैं। छतों के खम्भों पर सुन्दर वृत्ताकार आलेखन बने हैं।

(गुफा नं. 17 के चित्र)

यह गुफा वाकाटक वंश के राजा हरिसेन के एक श्रद्धालु मंडलाधीश ने बनवाई थी। इस गुफा के बीच के दो खम्भों पर बहुत उच्च कोटि का कार्य किया हुआ है। चैत्य के दरवाजे पर फूल-पत्ते, बुद्ध की आकृतियाँ, स्त्रियां, द्वारपाल और कमल के फूल खूब बने हैं। इस गुफा में कुछ चित्र बहुत ही सुन्दर है। दरवाजे पर सबसे ऊपर 7 मानुषी बुद्ध और भावी बुद्ध मैत्रेय की आकृतियाँ दिखाई हैं। ये सब वृक्षों के नीचे बैठे हैं। वे सात बुद्ध हैं—

(1) विपश्यिन्, (2) शिखिन, (3) विश्वभू, (4) ककुच्छन्द, (5) कनकमुनि, (6) काश्यप और (7) शाक्यमुनि।

इस गुफा में सबसे अधिक चित्र उपलब्ध है। सभी चित्र एक से एक भाव सौन्दर्य और रंग-वैचित्र्य के कारण अद्वितीय हैं। इन चित्रों को देखने से यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि गुप्तकाल के प्रसिद्ध तथा प्रवीण कलाकारों ने अपनी तूलिका एवं कला कौशल को प्रमाण रूप में रखने के लिए इन चित्रों का अंकन किया है। इसी गुफा के बरामदे की बायी ओर के दरवाजे पर आया हुआ 'प्रणयोत्सव' का चित्र प्रशस्त माना जाता है। प्रणयोत्सव मनाते हुए राज-दम्पत्ति का इसमें आलेखन है। राजा मसनद के सहारे आसीन, एक हाथ में प्याला थामे है और दूसरा हाथ रानी की कटि पर है। रानी राजा के वक्षस्थल के सहारे झुकी है। परिचारिकाएँ सेवा-भाव मुद्रा लिए पास खड़ी है। इसी गुफा के बरामदे की दीवार पर एक चित्र अप्सरा का है। आभूषण आदि उसकी आकाश की ओर उड़ती हुई गति को बतलाते हैं। हाथ में मंजुल रव करती हुई मंजीरे है, आंखों और अंगुलियों का आलेखन आकर्षक है। यह चित्र आज में डेढ़ हजार वर्षों से हवा, वर्षा और धूप के प्रबल झोंके झेल रहा है तथापि रंग ज्यों का त्यों गर्व से अपने स्थान पर खड़ा है।

रेखांकन—11 'सर्वनाश' गुफा सख्या 17 (अजन्ता)
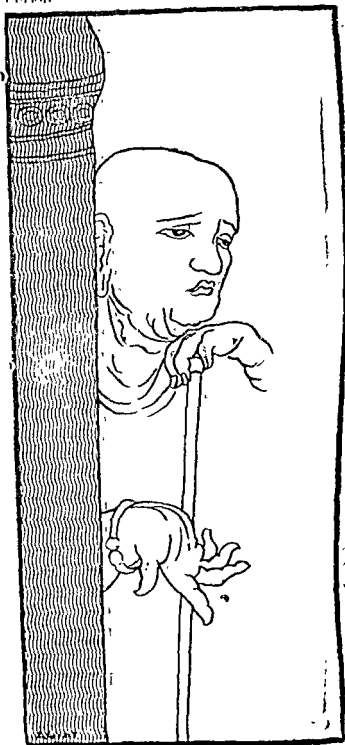
इसी गुफा के गर्भ-मन्दिर मे अग्रभाग के बरामदे मे दाहिनी ओर सबसे अधिक दर्शनीय 'माता-पिता' का चित्र है। माता यशोधरा और पुत्र राहुल की आकृतिया पूरे मानव मात्र की है और भगवान बुद्ध, जो हाथ मे भिक्षा-पात्र लिये है, की आकृति तो उससे भी विशाल है अर्थात् समस्त चित्र की गणना अजन्ता की सर्वश्रेष्ठ कृतियो मे होती है। भगवान् बुद्ध कमण्डल बढाये खडे हैं और यशोधरा भिक्षा में अपने प्रिय पुत्र को देने से बढकर कोई अन्य वस्तु नही समझती। बुद्ध की ओर देखते हुए माता और पुत्र की मुद्रा में असाधारण यथार्थता है। श्री लारेंस बिनियन और प्रसिद्ध कला-विद्वान हैवेल ने इस चित्र की गणना कौशलता, प्रभावोत्पादकता और विशालता की दृष्टि से संसार के प्रसिद्ध चित्रो मे की है।

इसी गुफा-मण्डप की दीवार के एक टुकडे पर चित्रित, अशुभ समाचार लाये हुए दुःखान्त नेत्रो वाले एक वृद्ध राजपूत का चित्र है। हाथ में दण्ड है और दाहिना हाथ अपूर्व मुद्रा द्वारा सर्वनाश का चित्रण प्रस्तुत करता है। यह सर्वनाश दृश्य, दुखित नेत्र, उतरा हुआ चेहरा, भौहें और होठ मुद्रायें सभी विषय (सर्वनाश) को पुष्ट करते है। इसी गुफा मे एक अन्य चित्र गजजातक का है। कथा इस तरह है कि बुद्ध एक जन्म मे हिमालय मे श्वेत हाथी थे और माता व अन्धे पिता की सेवा मे रत रहते थे। प्रयाग नरेश ने हाथी के सुन्दर गुण-रूप से उसे बन्दी बना लिया परन्तु हाथी ने अन्न जल तक ग्रहण नहीं किया। कारण यह था कि हाथी मुक्ति चाहता था और अन्त में उसे बन्धन-मुक्त किया गया और राजा ने भी अश्वारूढ होकर हाथी का पीछा किया। अन्त मे घने जगलो मे अन्धे माता और पिता के पास पहुँचा। कमल पुष्पो से माता-पिता का अभिषेक किया और माता-पिता पुत्रागमन और मिलन-प्रेम के उपलक्ष मे अपनी सूडों को पुत्र के पैरो से लपेट कर प्रेमविह्वल हुए।

एक स्थान पर मृग जातक की कथा चित्रित है। इस कथा मे बोधिसत्व ने एक हरिण के रूप मे जन्म लिया। एक बार बनारस का राजा शिकार के लिए निकला। हरिण का पीछा किया लेकिन उसी समय एक गहरे गड्ढे मे गिर पडा। बोधिसत्व बड़े प्रयत्न से राजा को पीठ पर बैठा कर बाहर छोड आये।

अन्य चित्र महाकवि जातक, मत्स्य जातक, शिविजातक, रूरुजातक तथा महाहंस जातक कथा-चित्र अत्यन्त उल्लेखनीय है। रग योजना एव सयोजन की दृष्टि से ये सारे ही चित्र अजन्ता कला विधान का पूर्णत' प्रतिनिधित्व करते हैं और कलाकारों की यथार्थता का परिचय देते है।

इन गुफाओ के चित्रो के अतिरिक्त अन्य गुफाओं मे या तो चित्र प्रायः नष्ट है, गुफाएं भग्नावस्था मे है अथवा अधूरी है, किन्तु शेष रहे प्रमाणों से यह सर्वमान्य है कि अजन्ता बौद्धकला का स्वर्णपृष्ठ है, जिस पर भारत के नागरिको को आज गर्व है।

अजन्ता शैली की विशेषतायें

अजन्ता कला की गणना विश्व के उत्कृष्टतम कलाकेन्द्रों मे की जाती है। विश्व के कलाविदों ने इस कला की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। भारतीय चित्रकार इतना आगे बढे हुए प्रतीत होते है कि उनकी गणना उच्चकोटि में ही की जा सकती है। अजन्ता के चित्रो मे भारतीय कला की परिपक्वता स्पष्ट दिखाई देती है। समस्त शैली आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत है। धार्मिकता का पुट यद्यपि प्रत्येक चित्र मे है परन्तु कला को धार्मिक नही वरन् लौकिक कहना अधिक उपयुक्त होगा। अजन्ता के अमर चित्रकारो में मौलिक हार्दिक भाव थे और तभी सभी चित्रो की शैली से किसी न किसी आधार को अपनाये हुए ज्ञान, चातुर्य और आध्यात्मिक उन्नयन का परिचय स्पष्ट झलकता है। अजन्ता शैली की प्रमुख विशेषतायें ही उसे विश्व मे इतनी लोकप्रिय बना सकी। ये विशेषताएं निम्न है :

विषय संयोजन

अजन्ता चित्रो की प्रमुख विशेषता उसके विषयो का संयोजन है। संयोजन के साथ-साथ उसकी सुसंगठित योजना है जो महान् वैभव के आधार पर टिकी है। प्रायः सभी चित्र पूर्णरूपेण कथाओ पर आधारित हैं जिसमे पात्रो की एक भारी भीड है परन्तु संयोजन में केन्द्रत्व स्पष्ट दिखाई पड़ता है। प्रमुख चित्र की प्रधानता लिए हैं। संयोजन इतना पुष्ट है कि लक्ष्यगत दृष्टि उसी पात्र पर ठहरती है। यत्र-तत्र-पात्र बिखरे नहीं दिखते, अत सभी मे एक शृंखला है। प्रमुख पात्र कुछ विशाल, सम्यक् और पूर्ण है। 'काशीराज-नागराज मिलन', 'इन्द्र और उसका परिवार', 'तपस्यालीन भगवान् बुद्ध' आदि चित्रो मे संयोजन पुष्ट हुआ है कि अधिक पात्र होते हुए भी उसके केन्द्रत्व और यथार्थता पर कोई आघात नही करते परन्तु रसानुभूति होकर ही रहती है (देखिये रेखाकन–12)। चित्रो के पार्श्व मे स्थापत्य अथवा प्रकृति का सहारा लिया है।

आलेखन चित्रण

अजन्ता के कथाचित्रो के अवलोकन के पश्चात् जो बड़ी विशेषता दर्शकों को मन्त्रमुग्ध करती है वह है आलेखन-कला और उसका सफल चित्रण। चित्रकारों ने कमलपुष्प से बहुत प्रेरणा ली है और कमलपुष्प इस अलंकारिता मे प्रधान स्थान सम्भाले हुये है। क्या छतें—क्या मण्डप—सभी मे आलेखन प्रमुख रूप से हुआ है। कमल दल, कमल पुष्प, कमल पत्र, लतिकायें एवं गुच्छ आदि का ऐसा नियन्त्रित समन्वय हुआ है कि कहीं भी अखरने वाली वस्तु दिखाई नहीं देती। संसार मे शायद ही कोई कला-पारखी या कलाकार होगा जो कमल पुष्प को इतने विविध रूपों मे रख सके। इसी कमल पुष्प मे जो कोमलता व लोच है—वही लालित्य अजन्ता के पात्रों मे पायी जाती है। कमल पुष्प के अतिरिक्त हस्ती, वृषभ, हंस, पत्र जैसे, आम, शरीफा तथा युगल रूप मे मानवाकृतियाँ आदि ऐसे सुगठित रूप मे संयो-

रेखांकन—12 अजन्ता का नारी चित्रण—एक परिचारिका

जित हुए हैं जिनसे आलेखन में प्राण आ गये है। आलेखनो से ज्यामितिक आकारो, त्रिभुज, आयत आदि सुन्दर बने है। अजन्ता कला मण्डप की सभी छतें, कोने, फर्श और दीवारें प्राय. सभी अलकृत हो गये है। इन आलेखनो का रग विधान भी अत्यन्त उच्चकोटि का है जो सयोजन में चार चाँद लगा देता है।

इन आलेखनो के अतिरिक्त आभूषणो, मुकुटो और अस्त्र-शस्त्रो का भी चित्रण अत्यन्त सूक्ष्म हुआ है। बारीकी और विभिन्न आलेखनों मे उन्हें ऐसा मजाया गया है कि दर्शक आश्चर्यमग्न हो जाते है। कई बर्तनो और पात्रो पर भी प्रभावशाली एवं मनोहारी आलेखन चित्रण हुआ है। कई पात्रो के मुकुट इतने सुन्दर बने हैं कि मुकुट बनाने वाला कारीगर अजन्ता जाकर उनके विभिन्न डिजाइन सीख सकता है।

अजन्ता में परम्परा प्रमुखता या रूढिवादिता (Conventonalism) का यदि कही आभासमात्र होता है तो केवल अलंकारिक चित्रावली में—परन्तु चित्रकारो ने कुशलता बरती है और शिथिलता नही आने दी। आलेखन विधि एव मानवाकृतियाँ एक ढाँचे मे ढली दिखाई देती हैं परन्तु मौलिकता एव नवीनता लेकर उनका रूप निखर पडा है।

नारी चित्रण

अजन्ता चित्रावली मे नारी चित्रण अत्यन्त प्रभावशाली एव महत्त्वपूर्ण है। यह अर्थ नही लगाया जा सकता कि नारी को चित्रकार किसी विशेष दृष्टि मे देखते थे अपितु यह कि अजन्ता मे नारी विशिष्ट व्यक्ति रूप मे नहीं अपितु एक सिद्धान्त के रूप मे है जो सार्वभौम सौन्दर्य की प्रतीक है। अजन्ता की मानव सृष्टि मे स्त्रियो का स्थान उच्चतम बताया है। वस्त्रों का व्यवहार परिमित था परन्तु कला मे विनय है, सयम है और मर्यादा का सच्चा रूप। रानी, राजकुमारियाँ, परिचारिकाएँ या नर्तकियाँ सभी चित्रित की गई हैं, परन्तु अधमता कही नहीं आई, न कहीं अश्लीलता की झलक है। सभी मर्यादा के सूत्र में बँधे है। चित्रकारो ने बारीकी से सभी अंग-प्रत्यंगो की शोभा निखारी है। युगल प्रेमी प्रेमालिगन करते दिखाये गये है परन्तु मन मे पाशविक विकार नही आते। मातृत्व और माधुर्य की एकता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। स्त्रियों की शरीर-स्थिति, हाथ-पैरों के अभिनय, करागुलियों की लीला, केशकलापो की जटा....सभी एक से एक बढ़कर है। स्त्रियो मे पर्याप्त सम्मान और स्वतन्त्रता का भाव दर्शाया है। नारी चित्रण में चित्रकार ने अपना कौशल खूब दिखाया है। सभी चित्र मूक अवश्य है परन्तु नारी के सभी भावो को, मुद्राओं को तथा कार्यों को स्पष्टतया व्यक्त करते है। अजन्ता के नारी-चित्रण मे इन्द्रियपरता की अपेक्षा आध्यात्मिकता का अधिक स्थान है।

रेखांकन

अजन्ता के चित्र-जगत को देखकर दर्शकों की बुद्धि चकरा जाती है। उन चित्रों की जान वे रेखाएं हैं जिनके आधार पर चित्रों की सुन्दर योजना बनी है। चित्रकला में कुछ विद्वानों का मत है कि अजन्ता के चित्रों में सबसे बड़ी विशेषता वे रेखाएं हैं जो चित्रों को अधिक सुन्दर बनाती हैं। बौद्ध चित्रकारों ने मानव के अंग-प्रत्यंगों का जैसा अंकन रेखाओं के आधार पर किया वह प्रशंसा करने योग्य है। इसी रेखांकन के सहारे मूक चित्र बोल उठते हैं, जड़ आकृतियां जानदार बन गई हैं और कथा-कल्पनाएँ साकार बन कर उतरी है। बौद्ध चित्रकारों का तूलिकाओं पर इतना अधिकार था कि गतिशील रेखाओं से गोलाई, प्रकाश-छाया प्रभाव, उभार, स्थितिजन्य लघुता आदि दर्शाया जा सका है। हस्त-मुद्राएँ, नेत्रों की बांकी चितवन, अंगों की भाव-भंगिमाएँ, सम्पूर्ण अंगों की लचक–सभी रेखाओं द्वारा सशक्त बन गये है। यह स्पष्ट है कि प्राचीन चित्रकला का आधार रेखाएं थी परन्तु अजन्ता कला-मण्डप के चित्रों को रेखाचित्र नहीं कह सकते। छाया-प्रकाश के नियमों का प्रयोग यद्यपि अजन्ता में नहीं पाया जाता फिर भी उन चित्रों में परिवर्तनशील रेखाओं, आभूषणों के झुकाव और हल्के रंगों के योग से आकृतियों की गोलाई और उभार भली प्रकार प्रदर्शित कर दिये है, भौहों, केशों और परिधानों आदि के चित्रण में रेखाओं का ऐसा कमाल है कि दर्शक आश्चर्यमग्न हो जाते है।

मुद्राएं एवं भाव-भंगिमाएं

अजन्ता की कला की एक प्रमुख विशेषता मुद्राओं द्वारा भाव-प्रदर्शन है। हाथों और अंगुलियों के सौष्ठव से जिस सुकुमारता के साथ अजन्ता में गति और आन्तरिक विलास की अभिव्यक्ति की गई है उसकी उपमा विश्व-कला के इतिहास में मिलना कठिन है। (देखिये रेखांकन 13–14) चँवर डुलाते, पुष्प थामे, पात्र लिये, प्रणाम करते, आभूषण प्रस्तुत करते तथा दुःख, करुणा एवं शान्ति व्यक्त करते सभी भाव हस्त-मुद्राओं से सहज में ही प्रकट हो जाते हैं। प्रत्येक हस्त-मुद्रा और करांगुलियों की बनावट विशिष्ट भावों का प्रदर्शन करती है जिसे देखकर मानसिक उल्लास और सात्विक शान्ति की उद्भावना होती है। कहा जाता है कि अजन्ता में आंखों की बनावट अनुपम है परन्तु कुछ समीक्षकों के मत में अजन्ता में आंखों से भी बढ़कर हस्त-मुद्राओं का स्थान है।

चित्रों में व्यापक दृष्टिकोण

अजन्ता के चित्र जीवन के एक ज्वलन्त प्रतिरूप है। उन अमर चित्रकारों ने हर दृष्टि से हर पहलू को तूलिकाओं से उतारा है। उनकी सामग्री मानव के विकसित क्षेत्र से एकत्रित हुई थी। नगरों के विलासरत नागरिक, ग्रामों में शान्त जीवनयापन करते कृषक, याचनारत याचक, मछुए, व्याध, युद्ध-प्रेमी सैनिक, प्रवासी राज-दम्पत्ति सभी अजन्ता में दिखाई देते हैं। जीवन की इस विविधता ने

अजन्ता का हस्त-मुद्रा-वैचित्र्य

रेखांकन–13

अजन्ता की पद मुद्राएँ
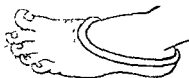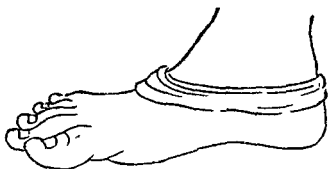
रेखांकन–14 पद मुद्राओं में विशिष्ट प्रकार की गति का ज्ञान होता है— सशक्त एवं प्राणवान रेखाओं द्वारा मुद्राओं में प्रवाह संचार हुआ है।
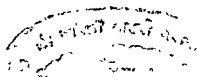
अजन्ता मे एक विलक्षण आकर्षण उत्पन्न कर दिया है जिसके कारण उसके प्रति घोर अरुचि अरसिको मे ही हो सकती है। परन्तु, चित्रकार ने जीवन के अग-प्रत्यग को देखने की अपेक्षा सम्पूर्ण रूप मे ही देखा है, नागरिक और ग्रामीण, राजा और रक सभी जीवन के एक ही अग हैं। हर प्रकार व्यस्त कार्य के पीछे एक विशाल जीवनधारा है जिसको कलाकार ने अपनी सूक्ष्म बुद्धि से देखकर पहचान लिया है। उसका प्रवाह आध्यात्मिक उन्नयन की ओर है और अजन्ता का सम्पूर्ण चित्र-भण्डार उन्ही दिशाओ की ओर सकेत करता है। अन्त मे इन चित्रो की सबसे बडी विशेषता यह है कि उनमें चित्रकला और मूर्तिकला का उभयविध वैभव समन्वित हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि अजन्ता के इन चित्रकारो ने अपनी और सम्मोहित कर देने वाली तूलिकाओ द्वारा अपने चित्रो मे समस्त संसार का सम्पूर्ण सौन्दर्य समेट कर उसको प्राणवत कर दिया है।

रंग-विधान

श्री एनसेम जार्ज का कथन है, "अजन्ता के रग इसी विस्तार के अन्य देशो के प्राचीन चित्रो की अपेक्षा अधिक गहरे परन्तु शुद्ध है।" अजन्ता चित्रो का रंग विधान सादा है। रग अत्यन्त चमकीले और प्रभावपूर्ण है। समय का प्रभाव उन पर अवश्य पड़ा है परन्तु फिर भी इतने आघातो को सहकर भी रगावली सुन्दर है। इस पर भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हजारो वर्षो पहले उसकी चमक कैसी होगी ? अजन्ता रंग-विधान एक विशेष कोटि का है। चित्रो की पृष्ठभूमि गहरी है और हल्के रगो की रेखाओ के योग मे वस्तुओ को उभारा गया है। रगो में भारीपन बिल्कुल ही नही है और उनका चुनाव अत्यन्त ही उपयुक्त ढग मे किया गया है। रग साधारण कोटि के अवश्य है साथ ही अमिश्रित हैं परन्तु उनकी संगति अत्यन्त ही महत्त्वशाली है। रगो की हल्काई और गहराई समान रूप मे आकर्षक है। बौद्ध चित्रकारो के प्रिय रंग—श्याम, श्वेत, हरा, लाल, गुलाबी, पीला, गेरुआ और नीला है। उनका ही प्रयोग बहुधा चित्रो मे हुआ है।

भित्तिचित्रों की अंकनविधि

अजन्ता के कला-मण्डप एक विशिष्ट परम्परा पर आधारित हैं जिनका इतिहास इतना व्यवस्थित है कि विश्व भर के चित्रकार यशोगान करते नही थकते। अजन्ता के भित्तिचित्र भारतीय चित्रकला के अमर चिन्ह है। इन भित्तिचित्रो की प्रमुख विशेषता इनकी आलेखन शैली है जिसमे प्राणो को स्पंदित कर देने की अपूर्व क्षमता है। अगो की चेष्टाओ द्वारा भावो की व्यजना और अत्यन्त अनुपम कमनीय स्वरूप का जैसा चित्रण इन भित्तिचित्रों मे है शायद ही विश्व के किसी कोने मे विद्यमान हो।

अधिकाश कलाविदो ने इन भित्तिचित्रो को 'फ्रैस्को' (Fresco) नाम से अभिहित किया है परन्तु वास्तव मे इसमे टेम्प्रा (Tempera) पद्धति भी

है। इन दोनो के समन्वय से ही भित्तिचित्रों का अंकन हुआ है। फिर भी भारतीयों ने अपनी एक विशिष्ट विधि का प्रयोग किया है जिसके फलस्वरूप आज भी ये भित्तिचित्र अपनी पूर्ण वैभवावस्था मे विद्यमान है। इन भित्तिचित्रों का प्रथम आधार मिट्टी, गोबर, प्रस्तर चूर्ण, सभी मिश्रित रूप मे समतल लेप के लिए प्रयुक्त किये जाते तथा अधिक स्थायित्व के लिए अनाज की भूसी, वनस्पति रेशे आदि मिलाये जाते सीपी, घोंघे और गोंद का पुट भी दिया जाता और लकड़ी की थापी दी जाती जिससे एक समान समतल रहे। चिकनाहट लाने के लिये शीशे और शंखो को घोटा जाता जिससे खुदरापन न रहे। इसके पश्चात् कलाकार रेखाकन आरम्भ करते थे।

इन सभी वस्तुओं के प्रयोगमात्र से ही यह स्पष्ट है कि इन चित्रों पर ताप, हवा और वर्षा तथा प्रकाश की किरणों का असर अधिक न हो सका और चित्र सुरक्षित रहे। रेखाकन शायद दो प्रकार मे किया गया होगा ऐसे मत प्रायः प्रचलित हैं। प्रथम तो यह कि पहले जानवरो की पतली खाल पर रेखाकन करते फिर लोह-लेखनी से चित्र पर छेद करके उतारा जाता और गेरुआ रंग से उभारा जाता। दूसरा मत यह है कि वे उस आधार पर सीधे ही चित्राकन करते। ऐसे पटु और कुशल हाथो के लिए पूर्वाकृति की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती थी। अधिक प्रामाणिकता किस मत को दी जाय, विश्वासपूर्वक कहा नहीं जा सकता।

रेखांकन के पश्चात् रगो की भराई होती थी। ये रंग भारतीय प्रस्तर चूर्ण के अधिकाश होते जिनमे गेरू मिट्टी, मुल्तानी मिट्टी, रामरज, काजल, हरा तथा नीला रंग होता था। प्रस्तर चूर्ण होने से ही ये रंग इतने टिक सके है। रंग भरने से पूर्व आधार को कुछ गीला कर लिया जाता और फिर रगावली आरम्भ होती। उन चतुर चितेरो द्वारा अनवरत रगों की घुटाई और अहर्निश कार्यक्षमता सचमुच प्रशसनीय है।

अजन्ता की इस अभूतपूर्व चित्रकारी और अंकन विधि के प्रणेता कौन थे ? यह प्रश्न दर्शकों के मानस मे घूमता रहता है। इस चित्रकारी को करने वाले कुछ पेशेवर चित्रकार थे जो बौद्ध राजा-महाराजाओं द्वारा नियुक्त किये गये थे। कुछ चितेरे ऐसे भी थे जो बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रवाह से कुशल एव निपुण चित्रकारो ने दीक्षा ली, भिक्षु बने और धर्म-प्रचार कार्य मे कला को अधिक प्राणवत किया। उन भिक्षु कलाकारो ने भगवान बुद्ध की जीवन-लीलाओ, जातक कथाओं और प्राकृतिक दृश्यो मे प्राण फूंक दिये। उनकी अन्तर्कला जागृत हुई और कुशल हाथो ने ऐसी कला का सृजन किया है कि वह ससार मे अमर हो गई।

अजन्ता का तक्षण कार्य इतना सरल नहीं था। गहरे तथा तक्षण कार्य के लिए अधेरा किस भाति दूर किया होगा ? ऐसा अनुमान है कि उन्होंने उजाले

लिए गुफा के द्वार पर आई प्राकृतिक धूप और किरण को एक टेढ़े दर्पण की सहायता से उजाला किया जान पड़ता है। किरण दर्पण पर गिरती, एक नया अवम पैदा करती और गुफा में उजाला ही उजाला। इसी प्रकार यह कार्य बड़े पैमाने पर हुआ होगा तभी इतनी बारीकी का तक्षण कार्य, मूर्तियों का निर्माण और रंग-रूप का सफल वैचित्र्य सफल हुआ है जो अपने में पूर्ण ही नही अपितु एक महान् आश्चर्य है।

भावात्मक चित्रण

अजन्ता के भित्तिचित्र भौतिक यथार्थ से हटकर हैं यद्यपि विषयवस्तु, भौतिक जगत पर आश्रित है तथापि विविध मुद्रायें, अलंकरण, स्थापत्य, पशु-पक्षी चित्रण कहीं भी यथार्थ रूपों को नहीं लिया गया है। ना ही छाया-प्रकाश, पर्यप्रेक्ष्य अथवा आकार रचना से हूबहू बनाने का प्रयास किया है जो कि भारतीय कला की प्रमुख विशेषता है। कला भौतिक रूपों से आरम्भ होकर पूर्ण आध्यात्मिक हो गई है। कला ईश्वर से तादात्म्य का एक मार्ग बनी है।

अजन्ता के चित्रकार

अजन्ता की गुफाओं का निर्माण करीब आठ शताब्दियों तक होता रहा। सातवाहन, वाकाटक आदि अनेकों राजवंशों के संरक्षण में अजन्ता की कला का सुन्दर अंकन होता रहा। राजवंशों ने चित्रकारों को अपने संरक्षण में रखा व कलाकृतियों का निर्माण कराया। कलाकार कलाधारा को वंश परम्परानुसार आगे प्रवाहित करते रहते थे। अजन्ता कालीन कलाकार समूह में चित्रण किया करते थे। विभिन्न कलाकार चित्रण के विभिन्न चरणों में पारंगत होते थे जिनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता था। अजन्ता शैली में किसी भी कलाकार की निजी विशेषता अलग नहीं दिखाई देती है। यही कारण है कि अजन्ता की किसी भी गुफा में कलाकार ने अपना नाम नहीं लिखा है।

अजन्ता भारतीय चित्रकला का आदर्श रही है जिसे आधुनिक एवं पारम्परिक दोनों तरह के कार्यरत कलाकारों ने अपना मार्ग दर्शक माना है। अजन्ता परम्परा की भारतीय चित्रकला पर अमिट छाप है चाहे वह मुगलकालीन हो अथवा राजपूत या कांगड़ा। आज अजन्ता के चित्रों को देखने के लिए विश्व के कोने-कोने से कलाकार, कला मर्मज्ञ, इतिहासकार एवं कलाप्रेमी आते हैं एवं कला के इस खजाने को देखकर हतप्रभ रह जाते हैं।

6
बौद्धकालीन कला के अन्य केन्द्र

बाघ गुफा के चित्र

बौद्ध चित्रकार भारतीय चित्रकला के प्रणेता है। तूलिकाओं को पकड़ने वाले कोमल हाथो ने वनो की गहराइयाँ काटी, पहाड़ो की कठोर चट्टानो को चीरकर लम्बे-लम्बे विशाल चैत्य बनाये, रग-विरगी छतो का सृजन किया तथा नक्काशी रगीन दीवारो आदि का निर्माण किया। सैकडो वर्षों तक रगो की अविरल धारा वहती रही। उसी का परिणाम है—बाघ की गुफाओ का अद्भुत सौंदर्य, जिसमें कल्पना साकार रूप धारण कर बैठी। बाघ का समृद्धशाली शिल्प, शुद्ध एव भव्य कल्पनालोक तथा कोमल करागुलियो द्वारा चित्रित वोलती हुई आकृतियाँ सभी मिलकर एक कला ससग्र का निर्माण करते हैं।

बाघ गुफा का छविलोक विघ्य श्रेणियो मे नर्मदा की सहायक नदी बाघ के किनारे पर स्थित है। इसी के समीप का गाँव बाघ कहलाता है और इसी के आधार पर इन गुफाओ का नाम भी पडा है। बाघ ग्वालियर रियासत के धार जिले में स्थित है जो इन्दौर से 90 मील दूर है। यहा बाघेश्वरी देवी का एक प्राचीन मन्दिर है। गुफाओ के आस-पास का घना जगल भील जाति का क्रीडा-स्थल है। इन गुफाओ की चित्र शैली अजन्ता शैली का आधार रूप है जो भगवान बुद्ध के पवित्र जीवन से पूर्णतया सम्बन्धित है। महायान सम्प्रदाय के बौद्ध भिक्षुओ ने धर्म-केतु लेकर गुफाओ मे अपना जीवन फूक दिया। इनके निर्माण के सम्बन्ध मे अनेको विवाद प्रचलित हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कोई काल निर्धारित नही किया जा सकता परन्तु भिन्न-भिन्न कला विद्वानो ने अपने विचार निर्माण काल के सम्बन्ध मे अवश्य प्रकट किये हैं। कला मर्मज्ञ फरग्यूसन और वर्गेस ने इनका निर्माण काल 500 ईस्वी बताया है तो कई लोगो ने सातवी शताब्दी के प्रमाण भी प्रस्तुत किये है। जो भी हो गुफा की चित्रावली अजन्ता के समान है तथा विषयावली बौद्ध धर्म से पूर्णतया सम्बन्धित है।

बाघ गुफा के कला संसार मे कुल नौ गुफायें हैं जिनका सामान साढे सात सौ गज लम्बा है। चौथी और पाचवीं गुफाओ से मिला हुआ एक 200 फीट ओसारा (बरामदा या दालान) है जिसकी छत बीम स्तम्भों पर आधारित थी मगर गिर जाने से काफी क्षति पहुँची है। इन गुफाओ का जीर्णोद्धार एव भावी सुरक्षा

भारत सरकार के पुरातत्व विभागाधीन है। क्यो न हो—यह देश की कला संस्कृति की अनुपम धरोहर है। इन गुफाओ मे अब पाच ही बच सकी है क्योंकि प्रकृति और क्रूर मानव के निर्दयी हाथो ने काफी चित्रो को नष्ट किया है। एक नम्बर की गुफा का भाग कुछ कटा हुआ है। दो नम्बर का चैत्य, तीन नम्बर का हाथी-खाना तथा चार नम्बर का रंगमहल आदि सुरक्षित हैं। इनके विषय बौद्ध विषयक हैं परन्तु ठीक-ठीक निरूपण करना कठिन है। सम्भवतः कुछ जातक कथाओ से तथा कुछ अश्वघोष कृत 'बुद्ध-चरित्र' मे है। बाघ गुफाओ की शिल्प कला पच्चीकारी तथा चित्रो की शैली देखने पर यह प्रतीत होता है कि अजन्ता की तरह इसमे कई हाथो का स्पर्श और सौदर्य के प्रभाव नही पडे। उसी आसपास की धरती मे ही रंगीन नरम पत्थरो को लेकर पीसा गया होगा और मूल रगो को ही चित्रो मे भरा गया होगा।

विशेष उल्लेखनीय चित्र

1. दु:खपूर्ण मुद्रा मे एक उच्चवर्गीय नारी का चित्र है जिसे कुछ लेखको ने भगवान् बद्ध के विरह में यशोधरा को माना है। पास ही करुणा मे सनी उसकी सखी

रेखांकन–15 शृंगारिका—बाघगुफा सातवी सदी

है। नारी का एक हाथ मुख पर और दूसरा विशेष दर्शनीय मुद्रा में है। इस चित्र के पास ही झरोखे के बाहर पेड की डाली पर कपोत युग्म बैठा है। इससे जान पडता है कि कलाकार ने प्रणय प्रसग लिया होगा। यह चित्र गुफा न 4 का है।

2 नृत्य करती हुई साथ नारियो का चित्र अत्यन्त ही सुन्दर और भावपूर्ण है। हाथो मे मजीरे और छोटे-छोटे डण्डे है। ताल पर थिरकती और मंजीरे बजाती सुन्दर मुख-मुद्राओ वाली नारियाँ अत्यन्त मनोहर और भली लगती हैं।। इन आकृतियो मे अजन्ता की सी सजीवता है जो गुफा न 1 चित्र मे मिलती-जुलती है। सयोजन की दृष्टि से यह चित्र मोहक एव महत्त्वपूर्ण है जिसमे एक अपूर्व प्रवाह और गति है। इतिहासकारो ने इस दृश्य नृत्य को "हल्लीसक" का नाम दिया है।

3 लगभग डेढ दर्जन अश्वरोही एक समुदाय के रूप में जा रहे है। अश्वो की उन्नत ग्रीवाओ तथा अश्वरोहियो की मुखमुद्राओं मे ऐसा प्रतीत होता है कि ये किसी विजयोल्लास मे तल्लीन अपने गन्तव्य स्थान की ओर प्रयाण कर रहे है।

4 हाथियो के एक विशाल जुलूस का भी एक चित्र मिलता है जिसमे महावत, राजा तथा छत्र लिये सेवक, चँवर डुलाती नारियाँ सभी शान्त मुद्रा मे है। सारा का सारा समुदाय मथर गति से आगे बढ रहा है।

5 गुफा न 3 मे एक बालिका झुकने की मुद्रा मे है जो अस्पष्ट है।

6 इसके अतिरिक्त गुफा न. 2 व 4 मे प्राकृतिक आलेखो की भरमार है। कमल पुष्पों की प्रधानता अजन्ता की तरह यहा भी अधिक है। सभी आलेखनो मे पशु-पक्षी बडे ही सुन्दर चित्रित किये गये है। बेलों मे पक्षी, वृषभ एवं हाथी गतिशील अवस्था मे चित्रित किये गये है।

बाघ गुफाओं की विशेषताएं

इन गुफाओ की प्रमुख विशेषताओ मे प्रकृति का अकन अद्भुत एव उल्लेखनीय है। आलेखनो मे फूल-पत्ते और पशु-पक्षी इस तरह सजाये गये है कि आश्चर्य किये बिना नही रहा जाता। शुक-सारिका, कोकिल-कपोल तथा मोर और चकोर सदा ही भारतीय कला और साहित्य मे सहयोगी, प्रेरणा-प्रेरक एव संदेशवाहक रहे हैं। उनका चित्रण भी बाघ गुफा के आलेखनों और चित्रो मे उचित स्थान पर किया गया है। रेखाकन की दृष्टि से पुष्पगुच्छो, वल्लरियो, कमल, कमल नालो, लताबन्धों एवं गुल्मो का सुन्दर रेखाकन हुआ है। लताओ आदि का झुकाव इतने सुन्दर ढग से बनाया गया है कि आश्चर्य होता है और बीच-बीच मे तो पक्षियो का विविधरूपा प्रदर्शन यथा चोंच लडाते हुए, फल खाते हुए, तथा आलिंगन करते हुए अत्यन्त रोचक एव स्वाभाविक लगते हैं। भारतीय साहित्य एव कला मे हाथी

को मांगल्य पशु माना है जिसे बाघ गुफा के आलेखनों में उचित स्थान मिला है। हाथियों और बैलों की रेखाएँ बड़ी सबल, पुष्ट एवं गतिशील बन पड़ी है। अनेक पक्षियों का पत्र-पुष्पों के बीच में स्वाभाविक अंकन को देखकर कलाकार की कुशलता की सराहना करनी ही पड़ती है। बाघगुफा की कलाकृति अपने में पूर्ण एवं विशिष्ट है जिसकी अनुकृति भी सम्भव नहीं लगती। गुफाओं की कला देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि समूची प्रकृति पशु-पक्षियों को गोद में लिये कला के माध्यम से मुखरित हो उठी है। अन्तत निष्कर्ष के रूप में यह सफलतापूर्वक कहा जा सकता है कि बाघ का कलाकार जितना बौद्ध धर्मावलम्बी है उतना ही प्रकृति, मानव और पशु-पक्षियों का पारखी। यही कारण है कि उसने उन्मुक्त होकर गुफाओं की ऐसी मनोरम सृष्टि की।

शैली

बाघ गुफा भित्ति-चित्रों की शैली प्राय. वैसी ही है जैसी अजन्ता की गुफा न. 1 व 2 की है। विविधता, आलकारिक विन्यास, आकृति चित्रण और रेखांकन की दृष्टि से ये चित्र अजन्ता के समान ही है। इसमें अजन्ता की सी आध्यमिकता इतनी अधिक नहीं परन्तु लौकिकता सर्वत्र पाई जाती है। यहाँ के बौधिसत्व चित्रों में उतनी भाव-प्रवणता एवं अतीन्द्रियता नहीं है जितनी अजन्ता में। 'हल्लीसक' दृश्य चित्र में अनियन्त्रित आनन्द दृष्टिगोचर होता है जिससे कुछ लोगों को वह आश्चर्यकर प्रतीत होता है। बौद्ध-भिक्षुओं के निवास स्थान में इस प्रकार के चित्र कैसे निर्मित हुए, प्रश्न उठता है परन्तु विसेंट स्मिथ महोदय का कथन है कि ऐसा ही विषय मथुरा और बादामी इत्यादि की बौद्ध तक्षण-कला में भी दिखलाई पड़ता है, जिससे ज्ञात होता है कि समय के साथ-साथ बौद्ध धर्म की सन्यासपरता भी कम होती गई और लौकिक जीवन में बौद्ध-भिक्षु पहले की अपेक्षा अधिक आनन्द लेने लग गये। बाघ के कलाकार मानसिक अवस्थाओं के चित्रण में दक्ष थे। उदाहरणार्थ 'यशोधरा' की व्यथा, हाथी पर बैठी हुई स्त्रियों का सयत उल्लास, ऋषि का उपदेश सुनते हुए राजा की दत्तचितता इत्यादि में इस क्षेत्र में निपुणता का आभास मिलता है। आकृति चित्रण में भी ये कलाकार बड़े कुशल थे। गुफा सख्या 3 में एक चँवरवाहिका का चित्र है जो एक उत्कृष्ट उदाहरण है। अपने ही भार से झुकी हुई तरुणी चँवरवाहिका को तन्द्रालस मुद्रा में मौलिकता के साथ-साथ उन्नत आध्यात्मिकता का विलक्षण सामजस्य मिलता है। अजन्ता की भाँति रेखाओं और रगों की स्वच्छन्दता बाघ में भी दृष्टिगोचर होती है। कथा के केन्द्रीय पात्र का प्रमाण यहाँ भी अन्य पात्रों और वस्तुओं की अपेक्षा अधिक है, जिस कारण सहज ही उनको

ओर ध्यान आकृष्ट हो जाता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार इस दृष्टि से बाघ की कला अजन्ता से भी बढ़कर है। बाघ गुफाओं की बारीक पच्चीकारी और चित्रों की अभिनव शैली ने प्राचीन कला के इतिहास में कई परम्परायें स्थापित की है। रगों के अध्ययन से पता चलता है कि इसकी शैली में एक अपनापन है, स्वाभाविकता है तथा मौलिकता है। अलकारियो के चित्रण में भी अजन्ता की सी पुख्ता है। पुष्प, पत्तियां, पक्षी, मछली, फल, जानवर इत्यादि सभी अजन्ता की ही भाँति निरूपित किये गये है परन्तु उनमे कोमलता एव कौशल अधिक प्रतीत होता है। बाघ कला का भाव पक्ष अजन्ता से दुर्बल अवश्य प्रतीत होता है, परन्तु तात्विक दृष्टि से बाघ की कला अजन्ता के समान ही है।

बादामी गुफाएं

अजन्ता की तरह इन गुफाओ मे भी भित्ति-चित्र मिले है जिनमें अजन्ता की सी शैली का आभास मिलता है। गुफाए बम्बई प्रान्त के श्राइहोल नामक स्थान से आई है। धारवाड चालुक्यों के बनवाये हुए अनेक वास्तु आसपास बिखरे है जो महत्वपूर्ण माने गये है। बादामी गुफाओ का समावेश इन्ही में है। इन गुफाओं का बाह्य रूप सादगी लिये हुए है परन्तु भीतर पाषाण को जीवित कर दिया गया है और चारुता, कौशल तथा बारीकी का कार्य मन को अनायास ही मोह लेता है। पर्सी ब्राउन महोदय ने एक जगह कहा है, "बादामी गुफाओं के भीतर आकर उनके वैभव को देखकर सचमुच चकित होना पड़ता है।"

चालुक्यो द्वारा इन गुफाओ मे चार गुफा मन्दिर बनवाये गये है जिनमे लगे एक शिलालेख से पता चलता है कि इन गुफाओ की तिथि 578 ई थी। इन गुफा मन्दिरो मे तीन ब्राह्मण धर्म और एक जैन धर्म से सम्बन्धित है। इस प्रकार ब्राह्मण चित्रणों के अब तक ज्ञात उदाहरणों में ये सबसे प्राचीन है। इनकी शैली अजन्ता की शैली से भिन्न नही। इतना स्पष्ट है कि ब्राह्मण शैली बौद्ध शैली जैसी कोई चीज इस देश मे नहीं रही। बादामी के चित्र काफी पुराने है परन्तु काल की इतनी लम्बी अवधि ने चित्रो को धुधला अवश्य किया है फिर भी उनका कलात्मक महत्व कम नहीं है। इन गुफाओ मे निम्न चित्र विशेष उल्लेखनीय है—

(1) विरहिणी—विरहिणी का चित्र इन गुफा चित्रों मे विशेष महत्वपूर्ण है। नारी खम्भे का सहारा लिये शून्य की ओर टकटकी लगाये खड़ी है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे आखो मे वेदना का गहरा ज्वार भरा हुआ हो।

(2) राज-सभा नृत्य—इसमे भगवान शकर नृत्य में तल्लीन है। उनके हाथो की मुद्राएं अत्यन्त रमणीय है। नृत्यानन्द मुख मण्डल के भावों से उद्भासित होता है।

(3) शिव-पार्वती विवाह एव परिणय के चित्र।

(4) उड्डयन विद्याधर मिथुन—इस चित्र की पृष्ठभूमि एक भ्रमणशील बादलों द्वारा चित्रित की गई है तथा विद्याधर के हाथों का अकन मुद्रा पूर्ण हुआ है।

(5) सिंहासनारूढ़ राजा–रानी—इसमें कई परिचारिकाएँ चित्रित की गई तथा कुछ झरोखे से झांकती हुई दिखाई गई हैं।

रेखांकन 16 विरहिणी—बादामी गुफा

शैली—सामान्य रूप से यदि इन गुफाओं का मूल्यांकन किया जाय तो इनकी ली अजन्ता और बाघ शैलियों की श्रेणी में आती है परन्तु उत्कृष्टता और मृदुता की दृष्टि से उस स्तर की नहीं हुई है। इन गुफा चित्रों की भावोत्पन्नता अपनी विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध है। इन गुफा चित्रों में परवर्ती चित्रों के विपरीत प्रतिमंग और पौने दो चश्म चेहरों का कम प्रयोग हुआ है। दुहरी भौंहों का आलेखन इन चित्रों में विशेष रूप से पाया जाता है। एक विद्वान ने तो कहा है कि "बादमी के चित्रों से स्पष्ट होता है कि भारतीय चित्र विधि अब परम्परा और रूढ़ियों से अनुबद्ध होने लगी और स्वातन्त्र्य शिथिल हो गया है।" इन भित्ति-चित्रों में परिमाण कम है और रङ्गावली काफी सीमित है। इतना अवश्य कहा जायेगा कि अजन्ता की ही भाँति लौकिकता के पीछे आध्यात्मिकता और बौद्धिक तटस्थता के दर्शन

बादामी में भी होते हैं और आकृतियों के चित्रण की प्रखरता की दृष्टि से बादामी अजन्ता से पीछे नहीं है।

सित्तनवासल गुफाएं
(पल्लवकालीन भित्ति चित्र)

भारत के सुदूर दक्षिण में भी अजन्ता-चित्रकला के दर्शन होते हैं। इससे स्पष्टतया अनुमान लगाया जा सकता है कि अजन्ता शैली का प्रसार अत्यधिक हुआ था। मद्रास राज्य में तंजौर के पास पट्टूकोटाई रियासत में सित्तनवासल स्थान में ये गुफाएं स्थित हैं जिनमें भी कुछ चित्र मिले हैं। इन भित्ति-चित्रों को पल्लवकालीन माना है जिनका रचनाकाल अजन्ता और बाघ की तरह अनिश्चित नहीं। सित्तनवासल गुफा मन्दिर महेन्द्र वर्मा प्रथम (600–628 ई) तथा उनके पुत्र नरसिंह वर्मा (628–60 ई) द्वारा सातवीं शताब्दी में निर्मित हुए। उसकी भीतों, छतों और खंभों को आलंकारिता पूर्ण चित्रित किया गया परन्तु आज ये भग्नावस्था में हैं। छतों और खम्बों के चित्र कुछ अवशेषमात्र हैं परन्तु काफी धुधले हो चुके हैं जिनसे शैली का आभास मात्र मिल पाता है।

उल्लेखनीय चित्र

सित्तनवासल में एक स्थान पर एक सरोवर का बड़ा ही श्लिष्ट चित्रण हुआ है। कमल पुष्पों से भरा यह सरोवर एक फूलों की सेज के समान शोभायुक्त हो रहा है। गोपुच्छाकृति इन फूलों का आलेखन बड़ा ही नयनाभिराम है और इनमें तनिक लचाव दिखाने में चित्रकार ने अद्भुत सफलता पाई है। सारा सरोवर ऐसे ही फूलों से भरा पड़ा है। जो स्थान रिक्त है उनमें जलप्रेमी जीव-जन्तु जैसे मीन, मकर और कच्छप क्रीडा करते दर्शाये गये हैं। पास ही कुछ हाथी, भैंसें और पक्षी समुदाय दृष्टिगोचर होते हैं। पुष्प-चयन करते पुरुष भक्त दिखाये गए हैं जो सम्भवत जैन धर्म से सम्बन्धित दिखाई पडते हैं। सित्तनवासल गुफाओं के चित्र अधिकतया जैन धर्म से ही सम्बन्धित हैं जिनमें जैन तीर्थंकरों के कई चित्र हैं। इन चित्रों में उनके शरीर के रंगों में छाया प्रकार का प्रयोग हुआ है परन्तु मुखमण्डल के भाव अत्यन्त सजीव जान पड़ते हैं। खम्बों के ऊपरी भाग में दो अप्सराओं के चित्र हैं जिनके सौंदर्य को देखकर कलाकारों की प्रशंसा करनी ही पडती है। यही नृत्य करती एक अप्सरा का लोक-विश्रुत चित्र है जिसके नीचे का भाग कुछ नष्ट हो चुका है फिर भी उसमें गति का अपूर्व चित्रण है। अंगों में जिसके थिरकन है–बायाँ हाथ दाहिनी ओर चूडान्त तक गया है। मुखमुद्रा में पर्याप्त ओज है। ऐसी नृत्य-मुद्रा का गतिपूर्ण आलेखन भारतीय चित्रकला में कम ही मिलते हैं। अजन्ता में भी दो-तीन नृत्य चित्रण अवश्य आते हैं परन्तु इतना ओज किसी में भी नहीं है।

एक चित्र में भगवान शिव अर्द्ध-नारीश्वर के रूप में करुणा और शांत-रस में डूबे दृष्टिगोचर होते हैं। एक स्थान पर एक राजा का चित्र है जिसके चेहरे पर आभिजात्य विशिष्टता के भाव हैं। बायें कंधे के पीछे तीन-नारी चित्र हैं, सम्भवत

उनकी महीषियाँ हों · पृष्ठ भाग मे राजप्रसाद चित्रित हैं। ऐसा उल्लेख आता है कि यह चित्र पल्लव राजा महेन्द्र वर्मा और उसकी रानी का है। एक स्थान पर एक गन्धर्व कमल-कलिकाएँ और कमल-नाल लिये हुए है।

शैली—इन चित्रो की शैली बौद्धकालीन ही है जिसमे अजन्ता जैसी परिपक्वता एव सौष्ठव दिखाई पड़ता है। सित्तनवासल के चित्रो मे पर्याप्त पुष्टता है। रेखाएँ प्रवाहमान होते हुए भी प्रौढ है फिर भी मृदुलता का अभाव दिखाई नही देता। ये तीनो गुण पूर्ण परिपक्वावस्था के प्रमाण हैं जो कदाचित ही मिलते हैं। इन गुफा चित्रो का वर्ण-विधान उत्तम श्रेणी का है, उनमे हल्के मकरित रगो का प्रयोग हुआ है जो महज मे नेत्रो को आकृष्ट कर लेते है। बदरग पीले और बदरग हरे का चारु योग सरोवर के आलेखन मे मिलता है। यत्रतत्र आकृतियो मे गौर-वर्ण दर्शाने के लिए चेहरों के चित्रण मे चित्रकार ने पीले रग का बडा ही आकर्षक प्रयोग किया है। पौने दो चश्म के चेहरो की अधिकता पल्लवकालीन युग की ही देन है और वही बाद मे एलोरा मे दिखाई देती है। इन चित्रो मे सिंदूर की चेहरई एव हिरौंजी की खुलाई मिलती है जो अजन्ता की स्मृति देते हैं। इन गुफा चित्रो मे नर्तकियों का अकन, भाव-सौंदर्य तथा हस्तमुद्राएँ सभी अजन्ता की याद दिलाते हैं। विषयावली को देखते यहाँ के चित्र जैन धर्म के हैं—विषय जिनका पूर्णत· लौकिक है। इतना निश्चित है कि दक्षिण मे भी कला का प्रसार हो चुका था और राजा चित्रकारो का अधिक मान करते थे। स्वय महेन्द्र वर्मा और उसके पुत्र नरसिह वर्मा एक उच्च कोटी के साहित्यकार तथा कलाप्रेमी थे। इतिहास मे वर्णन आता है कि सातवी शती के प्रारम्भ मे महेन्द्र वर्मा बड़ा ही कला-प्रेमी था, उसके समकालीन कवि दंडी ने अपनी 'अवन्ति सुन्दरी कथा' मे राजा की विरुदावली मे उसे चित्र-प्रेमी भी बताया है। इसमे आश्चर्य नही कि महेन्द्र वर्मा चित्रकला का प्रतिपालक भी रहा हो। राजा महेन्द्र के पुत्र नरसिह वर्मा को भी चित्रकला, साहित्य और वास्तु की पूर्ण रुचि रही. इसी से कला का इतना प्रसार हो सका और सित्तनवासल की कला अजन्ता और बाघ-कला के अत्यन्त निकट आ सकी।

चोल चित्र

पल्लव वश के पतन के पश्चात द्रविड मण्डल मे चोल वंश का राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित हुआ। चोल नरेशों ने चित्रकला को प्रोत्साहन दिया और जिसके फलस्वरूप चोलकालीन चित्रकला के खण्डित और धुंधले उदाहरण अनेक स्थानो पर मिलते हैं। साँची के कैलाशनाथ मन्दिर मे चोलकालीन चित्र थे परन्तु अब उनमे से महत्वपूर्ण केवल एक गानधर्मिर का ही चित्र है, जिनमे सित्तनवासल का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसी प्रकार नार्तमिलाई मे विजयालय चोलेश्वरम् के मन्दिर मे काली माँ का चित्र है जिसमे देवी नृत्य-मुद्रा मे चित्रित है। मन्दिर का काल नवी शताब्दी है। चोलकालीन चित्रकला के श्रेष्ठ उत्कृष्ट उदाहरण तंजौर के

वृद्धेश्वर मन्दिर में मिलते हैं। इस मन्दिर का निर्माण राजराज प्रथम नामक नरेश के समय हुआ था। इस मन्दिर के चित्र शैव धर्म के हैं परन्तु विषय अनेक हैं। एक स्थान पर शिव चित्रित हैं वे बाघम्बर पर आसीन हैं, पास ही कई गुणी एवं ऋषिजन खड़े हैं। कहीं शिव के दर्शन नटराज एवं त्रिपुरान्तक के रूप में दिखाई देते हैं। एक जगह एक युवा अश्वारोही एक हाथी के पीछे नदी पार कर रहा है। एक अन्य स्थान पर एक युवा एवं वृद्धों का एक सम्मिलित समुदाय है जिसके मध्य में एक वृद्ध व्यक्ति एक पत्रछत्र थामे है जिसके सम्मुख एक युवक हाथ जोड़े हुए है। दर्शकों के मुख-मण्डल पर भिन्न-भिन्न प्रकार के भाव लक्षित होते हैं।

चित्रों की शैली एवं विशेषता :

चोल चित्रों की शैली अजन्ता एवं सित्तनवासल से कुछ मेल अवश्य खाती है परन्तु उनमें तनिक हीनता आ जाने से वे उस स्तर की नहीं आँकी जाती। चित्रों के रंग भारी एवं सीमित है तथा कदाचित खण्डों से विभक्त कर दिये गये हैं जिससे उनमें अजन्ता-सी सम्बद्धता की कमी अखरती है। चोलचित्रण कला की प्रमुख विशेषता उसका आकृति-अंकन है। शिव-चित्रों को पुष्टता एवं पौरुष से चित्रित किया गया है तो राक्षस आकृतियों के चित्रण में भी दक्षता बरती गई है। मुद्राओं में विशेष विविधता नहीं है तो उनमें थोड़ा सौष्ठव अवश्य पाया जाता है। गन्धर्वों और अप्सराओं के चित्रों में लय एवं गति है और ग्रामीण आकृतियों में कुछ लचीलापन है। खड़ी स्त्रियों में कुछ जड़ता दिखाई देती है। उन्हें अधिक गहने पहिने चित्रित किये है परन्तु वस्त्रों की कमी है। पुरुष दाढ़ी-मूछों युक्त हैं तो कहीं तोंदिल भी हैं। चेहरे गोलाकार हैं और मनुष्यों के नेत्र सीधे आकार के हैं। देवताओं की भौहें धनुषाकार हैं, नेत्र मीनाकार लम्बे हैं परन्तु वे स्वप्निल नहीं हैं फिर भी भावना की अच्छी अभिव्यक्ति उनसे होती है। चित्रों में यदाकदा रूढ़िवादिता इतनी अधिक है कि सारा प्रभावहीन दिखाई देता है। नटराज और त्रिपुरान्तक विपुल विस्तार के चित्र हैं और उनमें प्रधान पात्रों की आकृतियां स्पष्टतः प्रभावोत्पादक दृष्टि से अंकित की गई हैं।

सिगीरिया गुफाएं

भारतीय चित्रकला का दिव्य-रूप भारत में ही नहीं अपितु देश के बाहर चारों ओर फैला दृष्टिगोचर होता है। चित्रकला का व्यापक प्रभाव भारत के कन्याकुमारी के दक्षिण में हिन्द महासागर में स्थित सिंहलद्वीप में भी पाया गया है। सिंहलद्वीप, जिसे श्रीलंका कहा जाता है, भारत के अत्यन्त निकट है। इस द्वीप की सन्निकटता के कारण यहां भी बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ था। अतः श्रीलंका की कला भी भारतीय कला से पूर्ण प्रभावित हुई जो अजन्ता से बड़ा साम्य रखती है। श्रीलंका में सिगीरिया नामक स्थान एक गढ़ी है जहां उथली खोहों का दृश्य उपस्थित होता है। गुफाओं के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि दो चट्टानों को काटा

गया है और चित्राकन के योग्य बना लिया गया है। सिंहल की चित्रकला के इतिहास में कई प्रमाण मिले है जिससे सिंहली कला का ज्ञान होता है। एक प्रमाण ऐसा मिला है कि ये चित्र सम्भवत राजा कश्यप द्वारा बनवाये गये थे जिसका राज्यकाल 479 ई से 497 ई। माना गया है। एक अन्य प्रमाण से ऐसा ज्ञात होता है कि सिंहल की चित्रकला का इतिहास ईसा पूर्व दूसरी सदी से प्रारम्भ हुआ था जिसका प्रमाणिक कथन पाचवी सदी मे बौद्ध ग्रन्थ 'त्रिपिटक' के टीकाकार आचार्य बुद्धघोष के ग्रन्थ 'विशुद्धिमग्ग' मे मिलता है। कई विवेचको का यह भी कहना है कि अजन्ता की न. 9 और 10 गुफाओ के चित्र ईसा पूर्व दूसरी सदी के अनन्तर ही आते है अतः तत्कालीन श्रीलंका की चित्रकला से इसकी समानता दृष्टिगोचर होती हैं।

सिगीरिया की चित्रकला पर बौद्ध शैली की छाप अवश्य है परन्तु ऐसा भी प्रतीत होता है कि सिंहली कलाकारो मे देश की मौलिकता थी। वे गुप्तकालीन चित्र-कला मे प्रभावित अवश्य हुए। आचार्य बुद्धघोष के ग्रन्थ के अनुसार 'कन्दगल' नामक गुफा मे उत्कृष्ट कला के कुछ नमूने भित्ति-चित्रो के रूप में आज भी देखने को मिलते है। जब सिंहलद्वीप की राजधानी नागम थी, तब तत्कालीन चित्रकारो की तूलिका से सम्बन्धित चित्रो मे महाभिनिष्क्रमण का चित्र बडा स्वाभाविक और प्रभावशाली रूप मे इन भित्ति-पटो पर चित्रित हुआ है। इन चित्रकलाओं के जो कुछ शेष अंश प्राप्त हुए है, उनमे आज केवल भगवान् बुद्ध की मूर्ति का शीर्ष भाग तथा एक हाथ और अप्सरा का मुख एव हाथ तथा बादलो की कुछ छाया ही देख सक्ते हैं। यह चित्र भित्ति पर आलेपित एक प्रकार का प्लास्टर पर लाल रग की रेखाओ से अंकित किया गया है। खेद है कि इस उत्कृष्ट कला-द्रव्य के क्षतिपूर्ण होने के कारण केवल आश्चर्य की ही वृद्धि करना है।

भारत की भांति श्रीलका मे प्राचीन समय मे भगवान् बुद्ध के जीवनवृत्त के सभी चित्रों का चित्रण नही किया गया था। प्राचीन समय मे बोधिसत्व का चित्र ही

रेखाङ्कन–17. सिगीरिया भित्ति-चित्र "एक अप्सरा"

चित्रित करने की प्रथा प्रचलित थी। जब बोद्धिसत्व अभिनिष्क्रमण करते थे तब दिव्य अप्सराएँ आकाश मे बादलों के बीच खड़ी हो बोधिसत्व पर फूलों की बर्षा करती थी। यही दृश्य 'करबगल' नामक गुफा के भित्ति-चित्रों पर देखा जा सकता है। 'कबबगल' नामक स्थान पर निर्मित चित्र को श्रीलका की सबसे प्राचीन चित्र-कला कह सकते है।

धीरे-धीरे सिहल की चित्रकला चरम सीमा पर पहुँचने लगी। भारतीय कला का प्रभाव उस पर असर करने लगा जिसके सम्बन्ध मे कई मत प्रचलित है। यह तो अवश्य ही कहना पड़ेगा कि सिगीरिया के भित्ति-चित्र अजन्ता के समकालीन है। महाशय वेल का कथन है कि सिगीरिया चित्रकला समकालीन तो है ही, साथ ही ऐसा जान पडता है कि यह चित्रकला भारतीय चित्रकारो द्वारा ही की गई है। अन्य विवेचको ने भी इस बात की पुष्टि की है। परन्तु समर्थन हेतु कोई प्रमाण उपलब्ध नही हुए है। तुलनात्मक दृष्टि से अजन्ता व सिगीरिया की कला कसौटी पर रखने से अजन्ता के चित्र अधिक प्रभावोत्पादक है, उनकी अभिव्यक्ति प्रशसनीय है। उनमें स्वाभाविकता, लालित्य एव चेतना है। ऐसा मालूम पड़ता है कि अजन्ता की चित्रकला अत्यन्त परिश्रम से की गई है। रूपभेद तथा हाव-भाव एव मानव शरीर के सूक्ष्म चित्रण को देखकर आश्चर्यचकित ही होना पडता है। सिगीरिया की कला इस तुलना मे हल्की उतरती है। ऐसा मालूम पड़ता है कि चित्रकारो ने समय कम व्यय किया है परन्तु फिर भी कला मुखरित हो उठी है। अजन्ता की कला का चित्राकन सूखी एव पक्की भित्तियो पर किया गया जान पडता है जैसाकि अकन विधि से ज्ञात होता है परन्तु सिगीरिया की कला गीली दीवारो पर की गई प्रतीत होती है। अप्सरा के चित्र को देखने पर ज्ञात होता है कि उसके एक हाथ को सुधारने का प्रयत्न किया गया था। आँगन गीला होने से रग का फैलना स्वाभाविक है और इसी से हाथ को सुधारने का प्रयत्न किया गया होगा मगर सुधार पूर्णतया न हो सका। मानव शरीर के रूप स्वभाव मे भी रगो के प्रयोग को देखते हुए दोनो मे काफी अन्तर दिखाई देता है। अजन्ता के चित्रो मे रंग गीला लगाया गया है परन्तु सिगीरिया मे ऐसा नही है। सिगीरिया के नारी चित्रो मे पुतलियाँ रही काले रग से चित्रित की है तो कही हल्के रग से। कही-कहीं हल्का हरा रग भी भर दिया गया है। इससे ऐसा लगता है कि कला अजन्ता के समकालीन होते हुए भी भिन्न थी।

सिगीरिया मे कुल मिलाकर बीस नारी चित्र प्राप्त हुए है जो अजन्ता की गुफा नं. 16 व 17 के चित्रो के समान ही है। इन नारी चित्रो का कोई धार्मिक महत्व नही है फिर भी कला के दृष्टिकोण से ये चित्र उत्कृष्ट माने जाते है। एक

चित्र मे नायिका बायें हाथ मे पुष्प-गुच्छ थामे है और दायें हाथ से पुष्प की गंध लेते निहार रही है। क्षीण कटि एवं उन्नत उरोज उसकी विशेषता है। गले मे हार व मस्तक पर मुकुट धरा है। एक अन्य चित्र मे दो नारियाँ बादलो मे विचरण कर रही है। उनके शरीर का भाग तीन चौथाई दर्शाया गया है। एक नारी के दोनो हाथो मे पुष्प है तथा दूसरी, जो वेशभूषा से सेविका जान पडती है, के हाथ मे किसी वाद्य-यंत्र को थामे है। दोनो के शरीर के नीचे बादलो की पंक्ति है जिससे जाघो के नीचे का भाग छिप गया है। कई समीक्षको ने इन्हे अप्सराओ की संज्ञा दी है, तो कई कलाविदो ने 'राजा कश्यप की रानी और उसकी सेविका' का चित्र माना है। सिगीरिया के सभी नारी चित्र अकेले अथवा युग्म रूप मे चित्रित किये गये है। अजन्ता की तरह आकृतियो की भीड नही है।

शैली की दृष्टि से सिगीरिया की अंकन प्रणाली अजन्ता की सी है परन्तु उसमे वैसा धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण दिखाई नही देता और न उसमे उतनी कार्य-पटुता ही है। रेखाओ मे यथेष्ट बल है और निश्चयपूर्वक खीची गई प्रतीत होती है परन्तु प्रवाह और गति मे कही-कही अवरोध आया जान पडता है। सिंहली कलाकार कुशल अवश्य थे, उनकी कला मे अजन्ता की छाप है परन्तु उनकी रेखाओ और आकृतियो का विन्यास पुष्ट नही है। हस्त-मुद्राओ एवं भाव-भगिमाओ मे सरलता और सौंदर्य की कमी अखरती है। सिगीरिया के चित्रों में व्यक्तित्व की छाप अवश्य है, भावो का बाहुल्य है परन्तु समायोजन की अपरिपक्वता और विन्यास की शिथिलता उत्कृष्ट कोटि मे बाधक बन जाती है। सिगीरिया की रगावली सीमित है और नीले रग का सर्वथा अभाव है। अजन्ता शैली मे संजोये ये चित्र सुन्दर है परन्तु सिंहली कलाकार मौलिकता का दामन पूर्णतया पकड़े हुए हैं। इसी मौलिकता के आधार पर प्रसिद्ध कलाविद् हैवेल महोदय ने सिगीरिया चित्रकारो के सौंदर्य बोध और दक्षता की यथेष्ट प्रशसा की है।

श्रीलका मे अनुराधपुर मे कुछ प्राचीन भित्ति-चित्र उपलब्ध हुए हैं जिनका उल्लेख श्री विंसेंट स्मिथ ने अपनी पुस्तक "A history of fine arts in India and cylone" मे किया है। सिगीरिया की ही भांति ये चित्र भी अजन्ता की कला मे पूर्णतया प्रभावित है। इसके अतिरिक्त तमरकडुआ नामक स्थान मे भी एक चित्र है जिसमे उपासना की मुद्रा मे पांच प्रभामंडित व्यक्ति अंकित है। इस चित्र की तिथि बहुत सदिग्ध है। श्री विंसेंट स्मिथ ने इसे काफी पुराना बताया है—कोई निश्चयपूर्वक बात कहना कठिन है।

चित्रकला के साथ-साथ श्रीलका के कलाकारो ने मूर्तिकला मे भी काफी कौशल प्राप्त किया था। भगवान् बुद्ध की विशाल प्रतिमाएँ, जो खडी और पद्मा-

सन मुद्राओं में है, अत्यन्त सुन्दर हैं। विहारो एवं मन्दिरो के स्तम्भो पर तराशी गई मूर्तियां सचमुच आश्चर्य में डाल देती है। इस प्रकार के कुशल चित्रकारो एवं मूर्तिकारो ने अपने कला-कौशल का प्रदर्शन करके अमरता प्राप्त की। वर्तमान काल मे भी देश-देशान्तरो मे इसकी चर्चा दर्शको के मुख मे होती रहती। 16 वी सदी मे पुर्तगाली लोगों ने श्रीलका के वक्ष पर कदम रखे और अमूल्य कला-ससार को उन कदमो ने वैसे ही रौद डाला जैसे निर्दयी मुगलो ने भारत की कला-आत्मा को। जो कुछ भी शेष हैं उसमे श्रीलका के कला-कौशल को परखा जा सकता है।

एलोरा की गुफाएं

इन गुफाओ का प्राचीन नाम वेरूल था। परन्तु आजकल इन्हें 'एलोरा' ही कहा जाता है। औरंगाबाद से 16 मील की दूरी पर एक सडक के किनारे पहाड काट कर गुफा-मन्दिर बनाये गये हैं, ये मन्दिर ससार मे बडे अद्वितीय हैं। अजन्ता और एलोरा की दूरी आपस मे कोई 50 मील ही है।

एलोरा राष्ट्रकूटो की देन हैं। इस समय तक उनके समकालवर्ती चालुक्यो और पल्लवो ने बडे-बडे वास्तुओं का निर्माण कर लिया था। राष्ट्रकूट अत्यन्त समृद्धशाली थे और इसी से उन्होने पत्थरो को कटवा कर इतनी अद्‌भुत एव आश्चर्य-जनक वास्तु का सृजन किया था। ये गुफाएं अनेक अलकरणो से अलकृत है। एलोरा मे बौद्ध, जैन और ब्राह्मण तीनों ही धर्मों मे सम्बन्धित गुफा मन्दिर हैं जिनमे 12-गुफाएं बौद्ध सम्प्रदाय की, 17 गुफाएं ब्राह्मण धर्म (शैव मतो) की तथा अन्त मे 5 गुफाएं जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। बौद्ध मन्दिर के चित्रो मे कुछ चिह्न अवश्य हैं परन्तु वे अब नही के बराबर हैं। ब्राह्मण गुफाए सातवी शताब्दी मे लेकर ग्यारहवी शताब्दी तक बनी थी। इनमे से कैलाश मन्दिर बहुत प्रसिद्ध हैं। वैसे तो ये गुफा मन्दिर भीतर और बाहर मे भी चित्रित थे पर अब उनके चिह्न मात्र रह गये हैं। कुछ चित्र गणेशालय मे भी उपलब्ध हैं। जैन मन्दिरो मे इन्द्र-सभा चित्रालंकृत है। कैलाश मन्दिर में करीब तीन तहे लगी है और अनुमान किया जाता है कि वे अलग-अलग समय पर लगी थी। कैलाशनाथ के जिस अग मे चित्र है उसे स भवत चित्रो के कारण रगमहल भी कहते हैं। इन गुफाओ मे सभी वास्तुओ पर यत्र-तत्र चित्रकारी हुई है। चित्राकन उसी पलस्तर पर हुआ है जो निर्माण के समय का था। यो तो सभी मन्दिरो मे भीतर-बाहर चित्र रहे होंगे परन्तु दशावतार, नीलकठ कैलाशनाथ, लकेश्वर, गणेशलेण व धुमरलेण आदि वस्तुओं मे चित्र भरे पडे हैं। गुफा न 5 मे बौद्ध विषय पर चित्र मिले है। जैन गुफाओ की भीतो का रोम-रोम चित्रो से ढका हुआ है। समय की लम्बी अवधि ने चित्रों को नष्ट अवश्य किया है परन्तु धुए की मोटी तह ने भी उन पर एक आवरण-सा डाल दिया है जिससे चित्र अत्यन्त धुंधले

जान पड़ते है । यदि रासायनिक प्रक्रियाओं से इन्हें सजोया जाय तो शायद उनका सही रूप निखर उठेगा । एलोरा में अजन्ता की सी प्रकाश-व्यवस्था भी नहीं है।

उल्लेखनीय चित्र

एलोरा मे कई उल्लेखनीय चित्र है जिनका क्रम इस प्रकार है—

(1) उड्डीयमान देव समूह जो अपनी देवागनाओं के साथ भगवान् शकर को प्रणामांजली अर्पित कर रहा है । (2) एक कुण्ड का दृश्य जिसमें कमल पुष्पो की भरमार है हाथी क्रीड़ा कर रहे है जिसमे एक हाथी सूंड से मछली पकड कर ऊपर उठा ली है—सूड का चित्रण बड़ा ही सुन्दर हुआ है । (3) एक अन्य चित्र वैष्णवी का मिलता है जो एलोरा शैली के क्रमिक ह्रास का सबसे अच्छा उदाहरण है । यहा बादलो मे वैष्णवी गरुड पर सवार है । दोनो की नासिकाएं आवश्यकता से अधिक निकली हुई है जिसे देख कर आलोचको एव हास्य ही उत्पन्न होता है। (4) एक चित्र मे गणेशजी मूषक पर सवारी किये हुए है । (5) कैलाशनाथ मे सगीत समाज का एक दृश्य भी इसी कोटि का है, इसमें नर्तकियाँ भी है जिनकी भिन्न-भिन्न प्रकार की मुद्राए बडी उत्कृष्ट बन पडी है। (6) कैलाश नाथ मन्दिर के मुख्य मडप के उत्तरीय भाग की पश्चिमी चौखट पर एक आकृति दिखाई देती है जिसका यदि धुएँ का आवरण हटा दिया जाय तो हाथी की आकृति दिखाई पड़ती हैं, सभवत: हाथी युद्ध-रत है । (7) इन्द्र-सभा में पार्श्वनाथ देव एव महावीर स्वामी के भी चित्र है । वस्तुत यहाँ जैन विषयक चित्रों की प्रचुरता है । (8) इन्द्र-सभा गुफा के पश्चिमी मडप पर दो परिधियों के मध्य महिषारूढ यम का चित्र अकित है जो एलोरा के प्रसिद्ध चित्र है । यम की मुद्रा में कोमल देवत्व भावना लक्षित है जो भयानकता नही । महिष की गति के माध्यम से कलाकार ने भयंकरता को सफलतापूर्वक दिखाया है महिष के आगे उल्लसित मुद्रा मे कुछ गए चल रहे हैं । इन मे गति है और यह कहा भी जा सकता है कि एलोरा का यह चित्र कई दृष्टियों से बहुत ही महत्वपूर्ण है ।

इसके अतिरिक्त एलोरा मे आलेखन चित्रण भी यथासभव हुआ है । कमल वन, हाथियों, पक्षियों, मछलियों और अप्सराओं के चित्र आलेखनों मे यत्र-तत्र दिखाई देते हैं । एलोरा के चित्रों की विषयावली देव-ससार है जिसमे गगन एव स्वर्ग का ज्ञान देने के लिए सभी चित्रों के पृष्ठ में बादलों का अद्भुत परन्तु निरर्थक चित्रण है । बादलों की इस भरमार से मन ऊबने लगता है । यद्यपि सिगीरिया मे बादलों का अकन है परन्तु एलोरा के बादल स्वाभाविक नहीं जान पडते, रुई के ढेर या समुद्र के किनारे फेन से लगते हैं । बादलों का रग कहीं हल्का व कहीं गहरा दिखाया गया है जिससे अकित आकृतियों में तनिक उभार आ गया है, इसे चित्रकार का कौशल एव चातुर्य ही कहना चाहिए ।

शैली—एलोरा के भित्ति-चित्र अजन्ता की परम्परा मे ही आते है। इन चित्रो में अजन्ता जैसी पुष्टता एवं लालित्य दिखाई नही देता वरन् पतन के कुछ चिन्ह अवश्य परिलक्षित होते है। एलोरा शैली के चित्रो मे न तो परिपक्वता है और न रंगो का अद्भुत मेल। अलकरणो मे सौन्दर्य की पूर्णता नही है और अग-प्रत्यगों मे एक प्रकार की जकडन है जिसमें लालित्य का यथेष्ट अभाव पाया जाता है। रेखाएँ मोटी हुई हैं जिससे आकृतियो की चारुता मर गई है परन्तु मोटी होने के साथ ही साथ प्रवाहपूर्ण अवश्य है जो चित्रों को सजीवता प्रदान करती है। इन सभी के मेल मे एलोरा के चित्र लोक-शैली के घेरे मे आ जाते है। बादलो की खुलाई कही-कही महीन की गई है जिसके लिए गहरी हिरौंजी अथवा गेरु का प्रयोग किया गया है। मुख्यतः खुलाई के लिए स्याही को ही प्रयोग में लिया गया है। यहाँ की शैली के वर्ण-विधान मे रंगों का मिश्रण अवश्य है और उनमे प्रधानता काले व श्वेत-रंग की दी है। कलाकारों के प्रिय रग हिरौंजी, पीला, गेरु और नील रहे हैं। एलोरा शैली के चित्रो मे विभिन्न विशेषताएँ मिलती है यथा विष्णु एव शिव के चित्रण मे भाव-भंगिमा, नृत्य के दृश्यों मे पूर्ण गति और लय तथा घुडसवार की आकृति में ओज। इस शैली के चेहरे प्राय सवा चश्म हैं जिनमे परली आँख मे उभार दिया है। ऐसा जान पड़ता है कि चित्रों का यह ह्रास समुचित राजाश्रय की कमी के कारण हुआ है। एलोरा-अजन्ता से 50 मील की दूरी पर है परन्तु रेखाओं, रंगो, आकृति चित्रण आदि मे अजन्ता की सी सजीवता दिखाई नही पडती। इस शैली की लिखाई मे काफी अकड-जकड़ है अतः यह निश्चित है कि एलोरा शैली हमे अपभ्रंश शैली के दर्शन की एक क्षीण झांकी प्रदान करती है जो अजन्ता और राजपूत शैली की मध्य की शैली है।

7
मध्यकालीन चित्रकला

17वी शताब्दी के प्रसिद्ध इतिहासकार तारानाथ ने बौद्ध शैलियो के विषय मे कुछ उल्लेखनीय वर्णन किया हैं जिसे प्रामाणिक ही कहा जा सकता है। उन्होंने लिखा है कि, "प्राचीन बौद्ध काल की तीन शैलियाँ प्रचलित थी—देव, यक्ष तथा नाग।

'देव शैली'

यह मगध के आस-पास के भागो मे प्रचलित थी जो महात्मा बुद्ध के देहान्त के बाद भी कई शताब्दियो तक प्रचलित रही। (600 ई. पू. मे 300 ई. पू. तक)।

शैली—चित्र बौद्ध शैली के समान है और अधिकतर बौद्ध शैली मे मिलते-जुलते हैं। फल-फूल, हाथ और आँखो का भावपूर्ण अंकन आदि सभी सुन्दर ढग से चित्रित किया गया है। इस शैली के चित्र सजीव है।

चित्रो का विषय—इस शैली के चित्रो का विषय पूर्णतया धार्मिक नही कहा जा सकता क्योंकि कुछ चित्रों की रचना सामाजिक विषयो को ध्यान मे रखकर की गई है। इसके अलावा जानवरो, चिड़ियाँ तथा फल-फूलो के चित्र भी सुन्दर ढंग से बनाये गये हैं, जो देखते ही बनते है। यह कहा जा सकता है कि इस शैली के चित्र धार्मिक कम और सामाजिक अधिक हैं।

रंग विधान—इस शैली के रग भी बौद्ध शैली के समान हैं। इस शैली के रग चमकीले हैं क्योंकि वे अभिमिश्रित है। अधिकाश चित्र नष्ट हो गये है फिर भी जो शेष है उनको देखने मे ज्ञात होता है कि इस शैली के चित्रकारो को रगो का अच्छा ज्ञान था। चित्रो मे छाया तथा प्रकाश का व्यवहार बहुत कम किया गया है।

"यक्ष शैली"

यह शैली भी बौद्ध शैली की शाखा कही जा सकती है। इस शैली का सम्बन्ध अशोक से बताया जाता है। इतिहासकार की दृष्टि मे इस शैली के चित्रकार अति-मानव थे जिनकी कला अत्यन्त आश्चर्यजनक मानी गई है।

शैली—इस शैली तथा बौद्ध शैली मे कोई विशेष अन्तर नही है। सयोजन का क्रम, भावपूर्ण सजीव रेखायें, भावो का चित्रण आदि सभी अजन्ता शैली के समान है।

चित्रों का विषय—शैली का विषय धार्मिक एवं सामाजिक है। इस शैली के चित्रकारों ने चित्रों को गुफाओं की दीवारों पर बनाया है जो समय परिवर्तन के कारण मिट गये है, फिर भी यह चित्र-शैली भारतीय भावनाओं को पूर्ण रूप से प्रकट करती है।

रंग विधान—इस शैली का रग विधान अजन्ता शैली के समान है। इसमें देशी रंगो का प्रयोग हुआ है।

मुद्रायें—इस शैली की मुद्रायें बौद्ध शैली की मुद्राओं के समान हैं जिनमे जीवन, गति और उल्लास है। याचना, विनय, आशा, निराशा, दान, भय, शांति आदि भावों का इस शैली में बहुत ही सुन्दर ढग से चित्रण हुआ है। रेखायें बारीक तथा मोटी दोनों प्रकार की है जिनमें गति, प्रवाह तथा भावपूर्ण रूप से प्रगट होता है। इस शैली के चित्रो को चित्रित करने मे चित्रकारो ने पर्सपेक्टिव के सिद्धान्तो का भी पूर्ण रूप से पालन किया था।

"नाग शैली"

यह शैली भी बौद्ध शैली की एक शाखा कही जा सकती है। यह शैली नागार्जुन के समय में प्रचलित थी। इस शैली के चित्रकारों ने काल्पनिक दृश्य के सिद्धान्तो का पालन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया था। इस शैली का प्रचार तीसरी शताब्दी के प्रारम्भ मे हुआ था।

रेखायें—इस शैली के चित्रों की रेखायें सुन्दर तथा सजीव है।

मुद्रायें—जिस प्रकार अजन्ता शैली की प्रत्येक मुद्रा अपना एक विशेष भाव प्रकट करती है उसी प्रकार इस शैली की भी मुद्रायें अपना एक विशेष स्थान व अर्थ रखती हैं।

रंग विधान—रंग विधान अजन्ता शैली के समान है। चित्रो मे साधारण रंगों का प्रयोग किया गया है। चित्र भावपूर्ण हैं।

तीसरी शताब्दी के पश्चात् कला अवनति की ओर जा रही थी। उसके पश्चात् पुनः उन्नति के सोपान का समारम्भ होता है। उस समय भारत में कला-शैलियों के तीन कला-केन्द्र प्रस्थापित हुए जिन्हे विद्यापीठ से सम्बोधित किया गया था :

(1) मध्य प्रदेश विद्यापीठ—जिसमे उत्तर प्रदेश संभाग सम्मिलित था, कि स्थापना पांचवी या छठी शताब्दी के बुद्ध पक्ष राजा के राज्य के बिम्बसार नामक चित्रकार ने की। इस विद्यापीठ के असंख्य चित्रकार हो गये थे जिनकी शैली प्राचीन देवों से बहुत मिलती थी।

(2) पश्चिमी विद्यापीठ—इसका क्षेत्र राजस्थान था। इसका मुख्य [illegible] कार 'शृंगधर' मारवाड़ प्रदेश में उत्पन्न हुआ था। इस विद्यापीठ की शै

शैली से काफी समान थी। अत यक्ष शैली की यथेष्ट उन्नति भी इसी विद्यापीठ मे हुई थी।

(3) **पूर्वी विद्यापीठ**—इसका क्षेत्र बंगाल था। इसका समय नवी शताब्दी माना गया है जिस समय 'देवपाल-धर्मपाल' का राज्यकाल था। इस विद्यापीठ की शैली प्राचीन नाग शैली से काफी मिलती थी।

इसके अतिरिक्त सुदूर दक्षिण अंचल, पूर्व मे ब्रह्मदेश, उत्तर मे नेपाल तथा कश्मीर आदि मे भी विभिन्न शैलियाँ अपने-अपने क्षेत्र मे प्रचलित हो रही थी परन्तु तारानाथ के मतानुसार वे किसी न किसी रूप मे सभी प्राचीन तीन शैलियो से प्रेरणा ग्रहण करती थी। पिछले अध्यायो के अवलोकन से यह पूर्णतया सिद्ध हो चुका है कि बौद्धकालीन चित्रकला भारतीय चित्रकला के स्वर्ण-शिखर पर थी परन्तु उसके पश्चात् एक ऐसे युग का आगमन हुआ जो चित्रकला को अध पतन की ओर ले गया। बौद्ध धर्म का भी लोप हो रहा था और हिन्दू धर्म को बल मिलने लगा, मन्दिरो का निर्माण कार्य छिड गया। अत कला रूप वास्तुकला और मूर्तिकला मे दिखाई देने लगा। उसी काल मे चित्रकला के कुछ चित्र अवशेष रूप मे प्राप्य है परन्तु वे अत्यत ही निम्न श्रेणी के ठहरते है। उसी काल मे भारत मे एक नवीन जाति का पदार्पण हुआ जो रहन-सहन, वेश-भूषा और धर्म–सभ्यता की दृष्टि से हिन्दुओ से सर्वथा पृथक् थी। 712 ईसवी मे इसी जाति के एक सरदार मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध प्रान्त पर हमला किया था। हिन्दू धर्म उस समय प्रगति पथ पर आरूढ था। दोनो जातियो मे आगे चलकर सभ्यता और संस्कृति मे परस्पर समन्वय स्थापित हो गया।

उस काल के चित्रो के कुछ नमूने एलोरा और एलिफेंटा की गुफाओ मे मिलते हैं। एलोरा गुफाओ का वर्णन पिछले अध्याय मे किया गया है। अन्य विवरण आगे दिया जायेगा। चित्रकला के विद्वानो ने मध्यकालीन युग को दो भागो मे विभाजित किया—

(1) पूर्व-मध्यकालीन युग।
(2) उत्तर-मध्यकालीन युग।

पूर्व-मध्यकालीन युग

पूर्व-मध्यकालीन युग अनुमानत 700 ईसवी से 1080 ईसवी तक माना गया है। इस काल मे चित्रकला के उदाहरण मिलते है परन्तु वे अजन्ता से सजीव नहीं—रूढिबद्ध होकर निर्जीव से लगते है। न कोई गति है और न पुष्ट योजना। एलोरा के चित्रो के पश्चात् एलिफेंटा गुफा मे चित्र मिलते है। अब नष्ट हो गये है। बम्बई के समीप कई गुफा-श्रेणिया मिलती है, उनमे घारापुरी, भोगेश्वरी तथा कन्हेरी आदि है। घारापुरी की गुफाएँ बम्बई नगर के समीप समुद्र मे स्थित एलिफेंटा टापू पर है। इस टापू पर पहले एक पत्थर का हाथी था जिसे देखकर पुर्तगालियो ने एलिफेंटा नाम दे दिया। इसमे कहीं–कहीं चित्रकारी के अवशेष मिलते हैं। इनमे

शिव की त्रिमूर्ति प्रसिद्ध है। अध्ययन से तो ज्ञात होता है कि किसी समय मे इस गुफा मे चित्रकारी अच्छी थी परन्तु काल के हाथो ने उसे नष्ट कर दिया।

पर्सी ब्राउन महोदय ने एक जगह लिखा है कि जिन शताब्दियों के प्रमाण प्राप्त नही हो रहे है, वे भारत के समीपवर्ती देशो तिब्बत, खोतान और तुर्किस्तान मे खुदाई होने पर प्राप्त हुए हैं। इसमे भारतीय शैली पाई जाती है। अधिकाश मे भित्ति-चित्र, काष्ठ पर चित्रित चित्रफलक तथा चित्रपट (लपेटने योग्य) हैं। इनमें मध्यकालीन, चित्रकला पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा सकता है। इनकी कथाएं बौद्ध धर्म के अलावा ब्रह्मा, इन्द्र, पार्वती और नन्दी सहित शिव का परिवार चित्रित है जिनसे भारतीयता टपकती है। भावमुद्राएं आदि मध्यकालीन युग की ही पुष्टि करती हैं।

साहित्य रचना भी इस काल मे हुई थी। 'विष्णुधर्मोत्तर' पुराण इसी काल की कृति है जिसमे कुछ भाग चित्र-समीक्षा पर भी दिया गया है जिसे 'चित्रसूत्र' कहते है। चित्रसूत्र में चित्रो के लक्षण, अकन विधि और वर्ण-विस्तार पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है। मनुष्यो मे शारीरिक अनुपात, रूप और वस्त्रो का वर्णन है। चित्रकार को तभी चित्र रचना करनी चाहिए जब उसे नटो के अभिनय का पूर्ण ज्ञान हो। भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्यो, मुद्राओ, रग-योजनाओं, भावो के चित्रण आदि पर विशद प्रकाश डाला गया है।

भावाभिव्यक्ति के लिए रसो का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। साहित्य मे नौ रस (नव रस) माने गये हैं और एक सफल साहित्यकार के लिए इसका ज्ञान परमावश्यक है जिसके अभाव मे साहित्य रचना रस-हीन एव फीकी रहेगी वैसे ही चित्रकार को इन्ही रसो का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। चित्रो मे इन रसो के समावेश के बिना वे अधूरे ही माने जायेंगे। ये नौ-रस (नव रस) है—

(1) हास्य (2) करुण (3) वीभत्स (4) वीर (5) शृंगार (6) भक्ति (7) अद्भुत (8) शान्त (9) रौद्र। घरो मे शृगार, हास्य और शान्त रस के चित्र ही बनाये जायें। अन्य चित्र या तो देव मन्दिर या राजसभा में चित्रित किये जावें। 'चित्रसूत्र' मे यही वर्णन आता है कि रसो को किस प्रकार के चित्रो मे दिखाना चाहिए।

तत्कालीन साहित्य से पता चलता है कि उस समय चित्रकला राज-परिवार की शिक्षा का एक अग थी। क्षेमेन्द्र द्वारा 1037 ई० मे लिखित 'वृहत्कथा मजरी' मे राजकुमार विक्रम एवं चित्रकार द्वारा चित्रित पुस्तकार रूपावली का अवलोकन करता है। एक सुन्दर योवना के चित्र पर उसकी दृष्टि जाती है जिसे वह पाकर ही रहता है—राजकुमारी का नाम मलयानी होता है और अन्त मे वह विवाह सूत्र मे बँध जाता है। ऐसी चित्र मे यथार्थता थी। भास के सस्कृत नाटक 'दूत वाक्य' मे एक प्रसंग है—दुर्योधन द्वारपाल से द्रोपदी के चीरहरण का चित्रपट लाने को कहता है। चित्रपट देखकर उसकी कला की प्रशसा करता है।

भवभूति के 'उत्तर रामचरित' के प्रथम अंक का प्रारम्भ भी चित्र से है उसमें क्रमबद्ध कई प्रसंग भी चित्रों से है। इससे यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि—

(1) व्यावहारिक क्षेत्र में चित्रकला का स्थान उच्च था।
(2) चित्र धार्मिक कम और लौकिक पक्ष के अधिक थे।
(3) चित्रकला का प्रचार दरबार की कला के रूप में था।
(4) चित्र पुस्तकार और छित्रपटों के रूप में थे।
(5) बाद में जैन बौद्ध तथा लौकिक चित्रों का इसी परम्परा का विकसित रूप होना सम्भव है।

इस काल में तीन शैलियाँ प्रमुख रूप से प्रचलित थी —

(1) शिखर शैली—जिसके सबसे अच्छे उदाहरण उत्तर में भुवनेश्वर का मन्दिर, मालवा के अन्तर्गत उदयपुर में शिव का मन्दिर और बुन्देलखण्ड में खजराहो के मन्दिरों मे मिलते है।

(2) चालुक्य शैली—इस शैली के मन्दिर मैसूर, हलेबिद मदुरा और त्रिचनापल्ली मे मिलते हैं।

(3) द्राविड़ शैली—इस शैली के मन्दिर कांची, तन्जौर, मदुरा आदि में मिलते हैं। मूर्तिकला और चित्रकला की दृष्टि से इनका स्थान ऊँचा है। इसकी चित्रकारी व आलेखन कला सुन्दर अवश्य है परन्तु अजन्ता-सी जान इसमें नहीं आई, यद्यपि उनकी नकल की गई है।

पूर्व-मध्यकालीन युग चित्रकला के इतिहास का पतन युग है क्योंकि चित्रकला अपने स्थान से गिरती गई और अजन्ता की श्रेष्ठ परम्परा पर कुठाराघात होने लग गया था, भाव-भगिमाएँ नष्ट हो गई, रेखांकन शिथिल हो गया और न अजन्ता-सी जान ही रही। इतना अवश्य है कि कला का क्षेत्र व्यापक हो चुका था। चित्रों में धार्मिक भावना न रहकर लौकिकता अधिक आ गई थी। राज दरबारों में कला का प्रचार बढ़ने लग गया था। बौद्ध और जैन चित्र इसी लौकिक परम्परा में विकसित होने लगे थे और परम्परा में भी परिवर्तन आ गया था।

उत्तर-मध्यकालीन युग

(10वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक)

इस युग में राष्ट्र में कर्त्तव्य के प्रति उपेक्षा हो चुकी थी। अधःपतन और ह्रास होने लग गया था। बाहरी आक्रमणों से देश को भारी क्षति का सामना करना पड़ा परन्तु चित्रकला और वास्तुकला पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। भित्तिचित्र प्रणाली प्रायः तेरहवीं शताब्दी तक चल सकी इसके पश्चात् पुस्तक-चित्र बनने लगे। पुस्तकों पर चित्र अंकित करने की प्रणाली मध्यकाल की है। इन पुस्तक-चित्रों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(1) बौद्ध धर्म की पुस्तकों के चित्र।
(2) जैन धर्म की पुस्तकों के चित्र।

बौद्ध धर्म की पुस्तकों के चित्र
(पाल शैली)

अजन्ता की भित्ति चित्रण परम्परा बाघसितन वासन्न आदि गुफा चित्रों के पश्चात् चित्रकला गुफाओं की चार दिवारी से उठकर जन साधारण में पोथी चित्रण के रूप में स्थान बनाती है। बौद्ध धर्म दो भागों हीनयान व महायान में विभाजित हो जाता है। चित्रकला को महायान का संरक्षण प्राप्त होता है व चित्रण का मूल क्षेत्र बंगाल, बिहार होता है जिसकी परम्परा नेपाल, तिब्बत में भी आरम्भ होती है जहां इस परम्परा के चित्र काफी बाद के काल तक बनते रहे। ये पोथियां आरम्भ में ताल पत्रों की व पश्चात् कागज की हैं जिनमें सुन्दर लिखावट के मध्य प्रसगानुकूल चित्रण किया गया है। पोथी चित्र अजन्ता की परम्परा का निर्वाह करते हैं। प्रथम झलक में ऐसा आभास होता है कि अजन्ता कालीन पारम्परिक चित्रकारों ने ही इन पोथियों का चित्रण किया है किन्तु सूक्ष्म निरीक्षण से स्पष्ट हो जाता है कि इन पोथियों में अजन्ता का रेखांकन, संयोजन, अलंकरण आदि के साथ-साथ पहाड़ी प्रदेशों का प्रभाव जहाँ यह प्रचलित हुई, भी स्पष्ट है पशुओं का चित्रण अलंकारिक प्रकृति, मानव आकृतियों की छोटी आंखें, अतिभंग मुद्राएँ आदि नेपाल का प्रभाव है।

पाल पोथियों में वर्णन के साथ-साथ पत्रों पर बीच-बीच में चोकोर स्थानों पर बुद्ध की जीवनी, जातक कथाएँ, आलेखन, महायान बौद्ध से सम्बन्धित कथाओं आदि का चित्रण है। इनमें लाल (सिन्दूर, हिंगुर, महावर) नीला, पीला, सफेद व काला मूल रंगों का प्रयोग किया है साथ ही कहीं-कहीं मिश्रित रंगों का प्रयोग कलाकार ने बखूबी किया है। आकृतियां अलंकारिक त्रिभंगी, अतिभंगी, सम्मुख की बनी हुई हैं जिनमें गोलाई का अलंकारिक रूप देने के लिए प्रयुक्त रंग अथवा काली स्याही से हल्की झाँई दी गई है। रेखांकन लयात्मक व प्रवाहपूर्ण है। द्वारिक रेखाएं अजन्ता के फ्रेस्को की ही प्रतिरूप है किन्तु पोथी चित्रण होने से इनमें अलंकारिता अधिक है, तो कहीं नेपाली अथवा महायान परम्परा की भयावनी आकृतियां भी बनी हुई है, पृष्ठभूमि में सांकेतिक प्रकृति पहाड़, पेड़, पक्षी, पुष्प आदि का अंकन किया गया है। सम्पूर्ण चित्र एक कथात्मक चौखट में है जिसमें प्रमुख विषय-वस्तु को महत्वपूर्ण प्रभावोत्पादक रूप प्रदान करने हेतु अन्यों से बड़ा व मध्य भाग में चित्रित किया गया है। आकृतियों की मुद्राओं में अकड़न आने लगी है जिनकी लम्बी नाक, सवाचश्म चेहरे बने है। गोल मुखाकृति, लम्बी ठुड्डी, पतली-पतली अंगुलियां चित्रण की प्रमुख विशेषतायें हैं।

इन पुस्तक-चित्रों का एक अन्य उल्लेख इस प्रकार भी है कि दसवीं शती के बंगाल, बिहार और नेपाल में लिखित "प्रज्ञा पारमिता" आदि महायान बौद्ध पोथियां मिली हैं जो ताम्रपत्र पर लिखी गई है। ये ताम्रपत्र माप में 22½"+2½" होते थे। जिनकी लिखावट देवनागरी, स्याही चमकीली और अक्षर सुन्दर बटाव लिये हैं। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने लिखा है कि इनकी शैली परिचय

भारतीय शैली है जो मारवाड़ से प्रचलित हुई थी और पूर्व भारत तक चली। पाल वंश के राजा पूर्वी भारत में थे, अतः बाद में इस शैली का नामकरण 'पाल शैली' हो गया। ऐसा कहना उचित ही होगा कि पाल नरेशों के समय वास्तुकला के साथ-साथ चित्रकला का भी अच्छा विकास हुआ था। आज ये पाल पोथियाँ (तालपत्रों की) दुष्प्राप्य हैं। मुख्यतः नेपाल राजकीय पुस्तकालय, काशी कलाभवन, बोस्टन, ऑक्सफोर्ड आदि संग्रहालयों में ये पुस्तकें देखी जा सकती हैं। इस काल में कई चित्रशास्त्र व ग्रन्थ जिनमें सोमेश्वर द्वारा लिखित 'अभिलषितार्थ चिन्तामणि' बिल्हण कृत 'कर्णसुन्दरी' हेमचन्द्राचार्य कृत 'त्रिषष्टिशाला का पुरुषचरित्र' सोमदेव कृत 'कथासरित्सागर', क्षेमेन्द्र कृत 'वृहत्कथा मंजरी' आदि प्रमुख ग्रन्थ व शास्त्र प्राप्त हुए हैं जिनमें वर्णन के साथ-साथ चित्रण हुआ है।

जैन धर्म की पुस्तकों के चित्र

पूर्वी प्रदेशों की बौद्ध पोथी-चित्रण परम्परा के पश्चात् मध्य भारत में 1100 ई० से 15 वीं सदी के मध्य पोथी-चित्रण हुआ जिसकी सचित्र पोथियां आज देश-विदेश के अनेकों पोथी-खानों व संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। इस काल में देश बौद्ध धर्मावलम्बियों से जैन संरक्षण प्राप्त करता जा रहा था व जैन अनुयायियों ने धर्मोपदेश, प्रसार एवं प्रचार हेतु हस्तलिखित पोथियों का सहारा लिया। इन पोथियों में वर्णन चित्रमय हुआ करता था। अतः चित्रकला अजन्ता की भित्ति चित्रण परम्परा से लघु चित्रों में जैन संरक्षण में विकास प्राप्त करती है।

इस काल के पोथी चित्रों का आधारभूत विषयवस्तु जैन धर्म व जैन मतावलम्बियों के संरक्षण से इन्हें 'जैन शैली' नाम करण किया गया किन्तु देश की धर्म निरपेक्षता व साम्प्रदायिक बन्धन से मुक्त कला धारा को किसी सम्प्रदाय विशेष से जोड़ना उसके साथ अन्याय मानकर भारतीय कला जगत की परम्परानुसार इस प्रकार के नामकरण पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। साथ ही 1925 में प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान स्व० आचार्य केशवलाल हर्षदराव ध्रुव द्वारा खोजा। इसी काल का सचित्र वसन्त विलास का लम्बा पट्ट जिसमें शृंगारिक विषय वस्तु में वसन्त आगमन का चित्रण किया है जो कालीदास के ऋतु सहार पर आधारित है। जिसका जैन धर्म से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है किन्तु इनमें तत्कालीन पोथी चित्रण परम्परा का निर्वाह हुआ है। इसी प्रकार दुर्गा सप्तशती रतिरहस्य, कामसूत्र, बाल-गोपाल स्तुति आदि सचित्र ग्रन्थों ने मात्र जैन पोथी चित्रण नामकरण को एक पक्षिया सिद्ध कर दिया। दूसरा पक्ष उन देशी-विदेशी इतिहासकारों एवं कला मर्मज्ञों का है जो इस काल के चित्रों को 'अपभ्रंश शैली' व चित्रकला इतिहास में इस काल को अंध युग सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। इनकी मान्यता है कि इस काल में चित्रण पोथियों तक सीमित होकर पतन की ओर जाती है व अजन्ता के गौरव को समाप्त कर देती है। किन्तु यह मत भी अधिक प्रभावपूर्ण नहीं है क्योंकि इसी पोथी चित्रण परम्परा ने कालान्तर में राजस्थानी व पहाड़ी शैलियों का रूप ले लिया जो भारत में कला

जगत में महत्त्वपूर्ण स्थान पर है। इसी प्रकार विद्वानों ने इन्हें गुजरात प्रदेश से सम्बन्धित होने से 'गुजरात शैली' कहा तो कुछ विद्वान उसे मध्य भारत की कला कहते हैं किन्तु मैं इसे 'मध्यकालीन, पोथी चित्र परम्परा कहना अधिक उपयुक्त समझूंगा क्योंकि इस नामकरण में काल प्रमुख है न कि धर्म, स्थान या द्वेष भावना।

मध्यकालीन पोथी चित्रों में जैन धर्म के मूलन श्वेताम्बर मतावलम्बियों के ग्रंथ निशीथचूर्णी, अंगसूत्र, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, नेमिनाथचरित्र, कथारत्न सागर, सग्रहणीय सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, कल्प सूत्र, स्थापनाचार्य चरित्र इत्यादि से सम्बन्धित आरम्भ में ताल पत्रों व कालान्तर में कागज पर हस्तलिखित व चित्रित पोथियाँ उपलब्ध है जिनमें जैन तीर्थंकरों, मुनियों व इनमें सम्बन्धित कथाओं को चित्रित किया गया है। जैन धर्म के अतिरिक्त जो पोथियाँ प्राप्त हुई है उनमें बाल गोपाल स्तुति, गीतगोविन्द, दुर्गा सप्तशती, रति-रहस्य आदि है ये सचित्र पोथियाँ या पट्ट विभिन्न जैन ग्रंथालयों, पोथीखानों के अतिरिक्त भारत, अमेरिका तथा इंग्लैण्ड के संग्रहालयों में देखे जा सकते है। जिनमें कथा वर्णन के साथ-साथ मानवाकृतियाँ, पशु पक्षी, प्राकृतिक छटा, आलेखन आदि बनाये गये है।

मध्यकालीन पोथी चित्रण शैलीगत परिपक्वता लिये हुए है जिसकी निजी विशेषताएँ हैं आकृतियों के चेहरे 'सवाचश्म' एक आँख अधर में लटकी हुई व दोनों आँखों के मध्य की दूरी बहुत कम, बड़ी व आँख के मध्य काली बिन्दी मात्र बनाई गई है। काजल की रेखायें कानों तक खिंची हुई है। भौंह धनुषाकार विशालता लिए हुए है। नाक लम्बी सधी हुई बनाई गई है। आकृतियों के होठ पतले एक दूसरे से चिपके हुए सीरिष के पुष्प के समान, मुख की रेखा दूर तक फैली हुई है, कान लम्बे व छिदे हुए होते है। चिबुक दो भागों में विभक्त या गोल आम की गुठली के समान होती थी। कण्ठ में तीन रेखायें, कंधे चौड़े और उ॰ हुए, भूप्रदेश मिला हुआ, कटि अत्यन्त क्षीण केहरी के समान जगाएँ, भारी किन्तु नीचे से पतले पाँव होते है। नारी सौन्दर्य में वक्ष उभरा हुआ व कचुकी अथवा चोली बंधी होती है। पशु-पक्षियों का चित्रण गुजराती लोक कला के खिलौनों सा प्रकृति अलंकारिक घुमड़ते बादल, लहराता जल, पुष्पाच्छादित वृक्ष, झाड़ियाँ बनाई गई है। मानवकृतियों में विषयवस्तु को प्रमुखता प्रदान करने हेतु अजन्ता की ही परम्परानुसार सयोजन किया गया है। पोथी चित्रण में रेखांकन यद्यपि अजन्ता सा बारीक सूक्ष्म नहीं है फिर भी इनमें सौन्दर्याभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता है। रेखाओं की एक रसता यह दर्शाती है कि रेखांकन पोथियों की बढ़ती माँग की पूर्ति हेतु कलम से ही कर दिया गया है। आकृतियों में पारदर्शीय वस्त्र बनाये गये है जिसे राजस्थानी कला में हूबहू स्वीकारा गया है व भारतीय मूर्तिकला की भी परम्परा रही है। ताडपत्र, कागज एव कपड़े पर बने पोथी चित्रों अथवा पट्ट चित्रों की।

डा० मोतीचन्द ने कलानिधि अक एक में इस शैली की बारह विशेषतायें इस प्रकार बताई है—

(1) खाली जगह मे निकली आँख;
(2) परवल के आकार की आँखें और स्त्रियो के कर्ण स्पर्शी नेत्रो के काजल की कान तक गई रेखा।
(3) नुकीली नाक
(4) दोहरी ठुड्डी (5) मुड़े हुए हाथ तथा एठी अंगुलियाँ
(6) उभरी हुई छाती (7) खिलौने जैसे पशु-पक्षी
(8) कमजोर लिखाई (9) प्राकृतिक दृश्यों की कमी
(10) धरातल पर अनेक दृश्यो का अकन
(11) 15 वी से 16 वी शताब्दी तक हाथियो का अलकरण
(12) चटकदार रगो तथा सोने का प्रयोग

मध्यकालीन पोथी चित्रो में अलंकारिता का आध्यात्मिकता से सुन्दर सार्मजस्य है। चित्रों मे चटक रंगो का प्रयोग किया गया है लाल लाजवर्दी, नीला व पीले की प्रधानता है स्वर्ण रग का भी प्रयोग है साथ ही श्वेत-श्याम रंग को भी काम मे लिया गया है। चित्रकार वानस्पतिक अथवा रासायनिक द्रव्य से रग निर्मित करते थे। जैन पुस्तक चित्रण मे कलाकार तीर्थकरो का अलग-अलग रंगो में चित्रण करते थे। व अन्यो को सुविधानुसार इस महान कला धारा को अपभ्रंश कहना वास्तव मे दुर्भाग्यपूर्ण है जिसका विस्तार सम्पूर्ण भारत मे हो चुका था व एक सशक्त रूप मे सप्रमाण आज कला जगत में स्थापित है। सम-सामयिक काल में तो घनवादी, अभिव्यंजनावादी अथवा अन्य कोई महत्त्वपूर्ण वाद के चित्रकार इस शैली को आदर्श मानते हैं व इसके महत्त्वपूर्ण तत्त्व ग्रहण कर रहे हैं।

8

राजस्थानी चित्र शैली

15 वी सदी में भारत की आत्मा ने अपनी सुप्त अवस्था से उठकर एक नई अगडाई ली। साहित्य, भक्ति, सगीत, वास्तु आदि मे एक क्रान्तिकारी सोपान का समारम्भ हुआ। चित्रकला के क्षेत्र मे भी नई चेतना का सचार हुआ। अजन्ता के यश-प्रकाश के कम होने तक मध्यकालीन अपभ्र श शैली की ज्योति देश मे जगमगाने लगी और कला-ससार का एक नया रग आरम्भ हुआ अथवा जैन अपभ्र श शैली को इसी राजस्थानी शैली की जननी होने का सौभाग्य मिला है। अपभ्र श की अंतिम सांसो ने राजस्थानी को जन्म दिया और सम्पूर्ण प्रान्त तथा उसके बाहर भी इसका प्रभाव फैल गया। पुनरुत्थान काल जब जोर पकड़ रहा था, सगुण भक्ति धारा वेगवान होकर बहने लगी थी, उसी समय राजस्थानी कलाकारो ने अपने को भक्ति, आराधना, ऋतु-वर्णन, राग-रागनियो और नायिकाओं, प्राकृतिक सौन्दर्य, प्रेम और वियोग आदि के चित्रांकन मे लगा दिया। अजन्ता-शैली के भाव-दर्शन, मुद्रा-वैचित्र्य लावण्य और आलेखन रचना आदि का दर्शन तो इस शैली मे नहीं मिलता परन्तु जो भी शेष तत्व है उनसे पूर्ण मौलिकता, सौन्दर्य और माधुर्य भाव सर्वत्र दिखाई देते हैं। इस शैली का काल 16 वी सदी के मध्य से लेकर 19 वी सदी के अन्त तक माना जाता है फिर भी आरम्भ काल को निर्धारित नही किया जा सकता। राजस्थान प्रांत के सभी देशी राज्यों मे इस शैली का आधिपत्य था और समुचित प्रश्रय मे इसका प्रसार अत्यन्त ही व्यापक होता गया। मुगल शैली ने यद्यपि कुछ छीना भी, तो कुछ प्रदान भी किया और फलस्वरूप यह शैली समृद्धिशाली बनी— एक नया दृष्टिकोण अपनाया तथा रूढ़िगत परम्पराओ और मर्यादाओ को तोड़कर नये युग मे प्रवेश किया। इस शैली ने जीवन के सभी पक्षो पर चित्र निर्माण किये थे। मुगल शैली की तरह दरबारी जीवन और शाही जीवन से हटकर भक्ति और प्रेम, राग-रग तथा लौकिक जीवन के दृश्य चित्रित कर यह जन-जन की शैली बन गई। इस शैली का क्षेत्र अप्रत्यक्ष रूप से तो देश के विभिन्न भागो पर पूर्ण प्रभावी था फिर भी राजस्थान मे तो इसका गहरा प्रभाव रहा। दक्षिण राजस्थान अर्थात् मेवाड मे इसका सर्व-प्रथम प्रचार हुआ। मुगल शैली और ईरानी शैली ने इसमे भाव-प्रवणता और कौशलता लेकर समृद्धि प्राप्त की थी। जो भी हो, इस शैली ने भारतीय कला-भण्डार को विश्वपटल पर ख्याति अर्जित करने मे पूरा सहयोग दिया है।

राजस्थान की भू-रचना एक सी नहीं है। कहीं आकाश को छूनी गिरि-शृखलाए हैं तो कहीं हरे-भरे मैदान, कहीं उन्नत वक्ष सी फैली पथरीली भूमि है

तो कही मखमली बालू रेत का बिछौना । कला की छाप इस भू-रचना के साथ-साथ अपने-अपने अस्तित्व मे आई । इसकी परम्परा मे जलवायु, आकृति, रीति-रिवाज एव वेशभूषा आदि के कारण छोटी-छोटी, सुन्दर सुकोमल एव लालित्य भरी शैलियो (कलम) ने जन्म लिया और कौशल पाकर समृद्धिशाली बनती गई । अकबर के शासनकाल मे राजस्थानी शैली का अत्यन्त प्रभाव था । अकबर के प्रिय दरबारी अबुलफजल ने लिखा है, "हिन्दू चित्रकार मुसलमान चित्रकारो से अधिक सुन्दर चित्र-रचना करते हैं ।" औरगजेब के कठोर शासन से राज्यो की चित्रशालाएं नष्ट होने लग गई थी और चित्रकार राजस्थान छोडकर जाने लगे । कई चित्रकार पंजाब, काश्मीर और टेहरी-गढवाल की ओर गये तो कई गुजरात और दक्षिण की ओर जाकर बस गये और वही अपनी चित्र साधना आरम्भ की फलस्वरूप वहां भी नई-नई शैलियो ने जन्म लिया । शेष चित्रकार राजस्थान मे ही बस गये और छोटे-मोटे राज्याश्रयो मे चित्र साधना करने लगे ।

कई चित्रकारो ने जन-जन की कला मे रत होकर लोक-कला के रूप मे चित्र 'रचना आरम्भ की जो प्रदेश की अमूल्य निधि मे रखी जा सकती है । इन राजस्थानी चित्रकारो ने अपनी कला साधना द्वारा अभूतपूर्व प्रगति की और जहाँ-जहा बस गये वही अपने स्वतन्त्र रूप से चित्र रचना की तथा अपनी विशिष्ट छाप छोड गये । कलाकारो के अपने कौशल मे प्रदेश विभिन्न राज्याश्रयो मे विभिन्न शैलियो का आविर्भाव हुआ । वर्गीकरण के अनुसार इस शैली की दस सन्तानें अधिक प्रसिद्ध हुई जिनके नाम है—(1) जयपुर शैली, (2) किशनगढ शैली, (3) जोधपुर शैली, (4) मेवाड शैली, (5) नाथद्वारा शैली, (6) बूदी शैली, (7) कोटा शैली, (8) बीकानेर शैली, (9) जैसलमेर शैली और (10) अलवर शैली ।

राजा के युग मे देश के रक्षक राजपूत जाति के राजपूत राजाओ के सरक्षण मे पनपी. लघु चित्रण परम्परा अपने श्रेष्ठ रेखाकन प्रभावी रगयोजना तथा आदर्श परिष्करण मे विख्यात हुई ।

किशनगढ के कवि नागरीदास और उनकी प्रिया के प्रेमभाव एव वैराग्य के सम्बन्ध मे सुन्दर चित्रकथा मिलती है । काव्य और शृगार की धारा, चित्रो के रूप मे ऐसी बही है कि इसका मानो भारतीय चित्रकला के इतिहास में मिलना असम्भव ही है । जयपुर इस शैली का प्रमुख केन्द्र-बिन्दु रहा है । जयपुर कलम ने पुरुषो की मनोरम एवं स्त्रियां और राग-रागनियो की लुभावनी आकृतिया बेजोड चित्रित की है । मरुधरा की ऐतिहासिक नगरी जोधपुर की कलम ने वीर पुरुषाकृतियां कथाओं के चित्र एव प्रतीक चित्रो का आश्चर्यजनक चित्राकन किया है । स्वतन्त्रता के लिए मर मिटने वाले उदयपुर ने अपनी शैली मे वीरो का चित्रण और धार्मिक ग्रन्थो का चित्रांकन तथा नारी का कमनीय रूप प्रभावपूर्ण किया है । नाथद्वारा, उदयपुर के निकट होने से तथा पर्वतीय दृश्यो के लिए प्रसिद्ध है । जहां चित्रकारो के कई परिवार है जो चित्र साधना मे लीन हैं । नाथद्वारा एक देव स्थान है अत. कृष्ण

की बाल लीलाओ से केन्द्रित यहाँ की चित्रकला का प्रमुख विषय रहा है तथा पिछवाइयो जैसा चित्रण नाथद्वारा के कलाकारो ने किया है, सभवत वैसा भारत के किसी भी प्रदेश ने नही किया है। आज भी वहाँ के व्यावसायिक कलाकार सैकड़ो चित्र नित्य बनाकर बेचते है। कोटा, बूँदी की बोलती भित्तियाँ नारी सौन्दर्य व पशु-चित्र के अभूतपूर्व उदाहरण है। यहाँ के चित्रकारो ने नारी का सौन्दर्य चित्रण जिस प्रवणता से किया है, वैसा अन्यत्र कम दिखाई देता है। अलवर की शैली पर जयपुर शैली का यथेष्ट प्रभाव है तथा उसी साँचे मे ढली-सी जान पड़ती है। अलवरी चित्रकार वसलों-चित्रण (बोर्डर का डिजाइन) के लिए प्रसिद्ध हैं। बीकानेर की कलम में मौलिकता कम है और उस पर मुगल शैली की सर्वत्र छाप है। यहाँ की शैली पर जोधपुरी कलम का ऊपरी ठाट-बाट एव आकृति अकन मे भी वैसा ही प्रभाव दृष्टि-गोचर होता है। जैसलमेर की कला पूर्णत मौलिक न होकर जोधपुर की कला और कागडा शैली की छाया से प्रभावित है परन्तु नारी सौदर्य और रेखाओ की सशक्तता इसकी विशेषता है। उपरोक्त सभी शैलियो का विशिष्ट विवेचन पृथक् मे आगे किया जाएगा जिसमे उनका सही एव विस्तारपूर्वक कला का दिग्दर्शन हो सके। राजस्थानी शैली मे राग-मालाओ का चित्रण, नारी का रूप और सौदर्य, कृष्ण की बाल-लीलाएँ, धार्मिक चित्रो की पटकथाएँ, वीरो के भावपूर्ण चित्रण, विभिन्न वेश-भूषा एव वस्त्रो का आलकारिक प्रदर्शन, प्राकृतिक सौदर्य की अद्‌भुत छटा और पशु-पक्षियो का भव्य चित्रण आदि इस शैली की सक्षेप मे विशेषताएँ रही है जो भारतीय चित्रकला की अमूल्य देन कही जा सकती है। भारतीय चित्रकला मे राजस्थानी की एक शाखा कागडा कलम से अत्यन्त ख्याति प्राप्त शैली हो गई है जिसका विस्तृत आलेख भी पृथक् रूप मे आगे किया जायेगा।

आनन्द कुमार स्वामी जैसे विद्वानो ने इसे 'राजपूत-शैली' के नाम से सबोधित किया है और कई लोगो ने इसे हिन्दू शैली (हिन्दू-कला)। ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि राजस्थान की रियासतो के अलावा पजाब, काश्मीर, बुन्देलखड और गुजरात मे भी इस शैली का व्यापक प्रभाव रहा। इस शैली के चित्रों मे स्वाभाविकता का पट् अधिक है जिसमे नारी चित्रो मे तो विशेष रूप से पाया जाता है। प्रकृति-दृश्य चित्रण, पशु-पक्षियो आदि का रेखाकन, वेश-भूषा का अलकरण, शौर्यपूर्ण पुरुषाकृतियाँ, राग-रागनियों का सौदर्ययुक्त चित्रण आदि इसकी कुछ चुनी हुई विशेषताएँ हैं। एक चक्षु का प्रयोग इस शैली का निजीत्व है। राजस्थानी शैली के विषय जैन शैली अथवा अपभ्रंश शैली से काफी मिलते-जुलते हैं परन्तु उनमे बहुलता है। इस शैली ने नव धर्म से प्रेरणा लेकर, अपना क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत बना लिया था। वैसे तो इस शैली के अनेक विषय हैं जिन पर गहन विवेचना की जा सकती है, राजस्थानी चित्रकला मूलत. साहित्यिक रचनाओ पर आधारित हैं, जिसमे जीवन की रगीनमय, प्रेम एव रोमाच, भावातिरेकमय गीत व काव्यात्मक दर्शाया है जो अपने इष्ट आराध्य

श्री कृष्ण की भक्ति मे लीन है । परन्तु मोटे रूप मे यदि देखा जाय तो उनका वर्गीकरण निम्नवत् किया जा सकता है—

(1) पौराणिक एव कृष्ण-लीलाओ के चित्र ।
(2) ऋतु एव रागमाला के चित्र ।
(3) घरेलू जीवन के चित्र ।
(4) राजसी वैभव एव व्यक्ति चित्र ।

(1) पौराणिक एवं कृष्ण लीलाओं के चित्र

जिस तरह वैभवशालिनी अजन्ता कला ने भगवान बुद्ध के सम्पूर्ण जीवन वृत्त को कला के माध्यम से प्रस्तुत किया उसी तरह राजस्थानी कला ने भी नव-हिन्दू धर्म को सबल आधार मानकर चित्र रचना की । पौराणिक हिन्दू धर्म के कई विषयो को लेकर राजस्थानी चित्रकला अत्यन्त विशाल रूप धारण कर गई । हिन्दू धर्म के कई देवी-देवताओ को एव अवतारो के जीवन-वृत्तो एव उनकी लीलाओ को चित्रबद्ध किया गया—जिनमे भगवान शिव, राम व कृष्ण प्रमुख हैं । यह तो विदित ही है कि भारत देश का सम्पूर्ण मानव जीवन इन्ही अवतारो के कृत्यो एवं पौराणिक कथाओं से प्रेरणा लेता आया है । देश ने राम व कृष्ण को ईश्वर का रूप मानने के साथ-साथ एक श्रेष्ठ महामानव भी माना था और उसी के आधार पर इनके कार्यों को चित्रित किया गया। राजस्थानी चित्रकला मे कृष्ण की बाल-लीलाओ को विशेष स्थान मिला है । अजन्ता शैली को पुनर्जीवित करने वाली राजस्थानी चित्रकला ने असंख्य घटनाओ एवं कथाओं का सहारा लेकर कला का विस्तृत भंडार भर दिया ।

भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का स्थान इस कला मे विशेष रूप मे पाया जाता है क्योंकि कृष्ण ईश्वर के अवतार होते हुए महामानव एव लौकिक थे और भारतीय जीवन के प्रेरणा स्रोत थे। मध्यकाल के पुनरुत्थान मे समाज मे कृष्ण भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ । भक्ति मार्ग पर वल्लभाचार्य के वल्लभ सम्प्रदाय का पुष्टिमार्ग की भूमिका रही । सूर, मीरा, रसखान, बिहारी आदि भारतीय साहित्य की विभूतियाँ इस काल मे ही हुई । इसी कृष्ण भक्ति के मार्ग को जिसमे भक्त स्वच्छता, पवित्रता एव तन्मयता से अपने आराध्य देव की सेवा-पूजा करे, दर्शन करे एव प्रभुप्रसाद को सप्रेम ग्रहण करे व काया का कल्याण कर संसार के माया जाल से मुक्त हो राजपूत रजवाड़े अत्यन्त प्रभावित हुए व कृष्ण को अपना संरक्षक एवं आराध्य मानकर उच्चासन प्रदान किया, इन्ही राजा-महाराजाओ की पूजा ने भी कृष्ण-भक्ति मे आकर्षित होकर कृष्ण-मन्दिरो का प्रचलन आरम्भ किया । सामन्तो ने अपने संरक्षण मे कलाकृतियों के निर्माण हेतु प्राचीन परम्परानुसार कलाकारों को आश्रय प्रदान किया । इन कलाकारो ने अपने आश्रयदाता की भावनाओ एव जन-आकांक्षाओं की पूर्ति धार्मिक चित्रण मे कृष्ण को आधार मानकर की । कृष्ण लीला के सभी कृत्य-यथा चन्द्रमा लेने की छटपटाहट, माखन की चोरी, गायो का घने जंगलों में ग्वाल-

बालो सहित चराने जाना, किशोरावस्था मे बक-संहार, पूतना वध, कंस द्वारा किये गये विभिन्न कार्यो का विमोचन, गोवर्धन पर्वत का धारण तथा तरुणावस्था में गोपियो के साथ रास लीला, चीर-हरण बांसुरी का चमत्कार आदि विशेष रूप से कला के विषय रहे है। इनमे बाल-लीला व राधाकृष्ण के अनन्य प्रेम की तो प्रधानता थी। राजस्थान, शैली के ख्याति प्राप्त चित्रकार मोलाराम के चित्रों में कृष्ण का चन्द्रमा माँगने का चित्र बालक के सहज स्वभाव का द्योतक है।

'गोवर्धन पर्वत का धारण' एक अन्य चित्र है जिसमे शौर्य, समाज सेवा एव देश प्रेम की भावना अन्तः एवं बाह्य रूप मे पूर्णतया लक्षित होती है। इस चित्र मे गोप बालक विस्मय पूर्वक खड़े हैं, गायें कृष्ण के चरणो के पास हैं, गोपियों द्वारा कृष्ण के अदम्य साहस की चर्चा हो रही है। घने बादलो के अंचल मे मूसलाधार वर्षा हो रही है, सर्वत्र पानी ही पानी है। इन्द्र के गर्व को भंग होते देख सभी देवता आकाश से फूल बरसा रहे हैं और इन्द्र सम्मुख खडा होकर क्षमा-याचना कर रहा है। चित्र अत्यन्त उत्कृष्ट है, रंगावली चटकीली है तथा सयोजन उच्च कोटि का है। ऐसा ही एक अन्य 'चित्र रास-लीला' का है जिसमे ग्वाल व गोपियाँ नृत्य मे पूर्ण तल्लीन हैं। केन्द्र मे राधा व कृष्ण एक अपूर्व भाव-भंगिमा मे स्थित है जो प्रकृति व पुरुष के चिर-प्रेम की याद दिलाता है। रास मे अपार तल्लीनता है, एक सुन्दर लय है तथा आदर्श कोटि का सयोजन है। कृष्ण भक्ति पर आधारित अनेको साहित्यिक रचनाओं तथा केशव चन्द्र की रसिक प्रिया, जयदेव का गीत गोविन्द, सूरदास का, सूरसागर, भानुदत्त की रस मंजरी आदि पर भी चित्रण हुआ है।

राजस्थानी शैली में पौराणिक गाथाओ पर आधारित कई चित्र मिले हैं। इनमे भगवान शिव पार्वती सहित ऊँचे गिरी शिखर पर विराजमान है, पास ही नंदी व शेर है। रामायण के भी कई चित्र हैं जिनमे राम का अयोध्या त्याग, राम द्वारा लका पर चढ़ाई तथा राम दरबार मुख्य है। इसके अतिरिक्त भागवत, महाभारत पंचतन्त्र आदि महान ग्रन्थो की सचित्र प्रतियां विश्व के अनेको संग्रहालयों से सुरक्षित है। सभी पौराणिक गाथा के चित्रो मे राग और प्रेम, करुणा एवं शौर्य मिलन एवं बिछोह, भक्ति एवं त्याग आदि का सफल चित्रण इस शैली में देखने को मिलता है।

(2) ऋतु एवं रागमाला के चित्र

भारत ऋतु प्रधान देश है। इसमें छः ऋतुओं का क्रमानुसार आगमन एक विशेषता है। राजस्थानी शैली के चित्रकारो ने ऋतुओं, प्राकृतिक पेड़-पौधों एव वातावरण का ही सफल चित्रण नहीं किया वरन् उससे प्रभावित मानव जीवन को भी चित्रित किया गया है। इस शैली मे विभिन्न ग्रन्थ बारह मासा अथवा ... में प्रमुख ऋतुएँ ऋतुराज बसंत, शिशिर, ग्रीष्म एवं वर्षा है तथा उसी पर मानव की विभिन्न दशाओं को रंगों मे उतारा है। प्रकृति के सभी अवयव

पौधे, श्याम और घने बादल, बिजली की चमक, हवा का वेग, पक्षियों की मुक्त उड़ानें चन्द्र-सूर्य का प्रभाव, शान्त और गतिवान नीर सभी इस शैली में प्रभावपूर्ण बनकर यशस्वी कलाकारों की तूलिका से चित्रित हुए है। भारत में संगीत का प्रेम आदिकाल से चला आ रहा है। अमीर और गरीब सभी संगीत विद्या के प्रेमी रहे हैं। कलाकार की तूलिका भी इस वाद्य संगीत से पीछे क्यों रहे? यह भी संगीत प्रेमी बना और राग-रागनियों को मूर्तवत बनाकर कला के माध्य से उतारा। राग रागनियों एवं चित्रों का माध्यम अलग-अलग है रूप अलग है एवं श्रवेन्द्रीय व दूसरा दृश्येन्द्रीय है फिर भी दोनों की उत्पत्ति एवं आदर्श एक है। जिसका कलाकार ने बखूबी रूपान्तरण किया है। राग चित्रमय प्रस्तुति है जिसका उद्देश्य रस प्राप्ति है। अतः राजस्थानी शैली में राग-रागनियों का चित्रण ऋतु से साम्य रखते किया गया है। नायक-नायिकाओं के ऋतु विहार तथा प्रेमी-प्रेमिकाओं के युग्म इस शैली में यथेष्ठ प्रधानता रखते हैं। इन राग-रागनियों में प्रत्येक की ध्वनि व काल अनुसार विभिन्न प्रतिकों में चित्रित किया है। राग-रागनियों की संख्या अलग-अलग स्थानों पर भिन्निता रखती है। गुरु ग्रन्थ साहिब के अन्तिम भाग में राग-रागनियों का वर्गीकरण किया गया है जिसमें छः मूल राग एवं प्रत्येक की पांच रागनियां तथा आठ पुत्र है इस प्रकार कुल संख्या 110 मानी गई है। इनमें प्रमुख भैरव, भैरवी मालकोष, टोड़ीवी, हिन्डोल, ललित, दीपक, कान्हरा, केदारा, आसावरी, मारू, मेघ, भूपाली, मांड आदि तथा नायिकाओं में स्वकीया, परकीया, गणिका, अभिसारिका आदि इस शैली में मूर्त रूप बनकर उतर पड़ी हैं। वन तथा वाटिकाओं में विचरण करते नाग, शेर, मोर, हाथी, ऊँट, गाय, घोड़ा, हरिण, मयूर, हंस, चकोर, सारस, कुरज, भ्रमर आदि राजस्थानी चित्रों से प्रायः देखने को मिलते है। आम, बड़, पीपल, कदम्ब, केला, खजूर और चम्पा इस शैली के चित्रों में प्रायः चित्रित किये गये हैं। अन्त में यह प्रमाणबद्ध सत्य है कि प्रकृति और राग-मालाओं तथा नायक-नायिकाओं का जैसा चित्रण राजस्थानी कलाकार कर सके वैसा शायद ही विश्व की चित्रकला में अन्यत्र मिलेगा।

(3) घरेलू जीवन चित्र

देव भूमि भारत के जनमानस का जीवन सदा ही धार्मिक एवं पूर्ण सामाजिक रहा है उसका घरेलू जीवन और आचार विचार विशुद्ध सात्विक और धार्मिक रहा है। घरेलू और जन जीवन के चित्र जो इस शैली में मिले हैं, वे वास्तव में उन अमर चितेरों की सहज स्मृति कराते हैं। सामाजिक जीवन की सही झांकी अपने चटकीले प्रभावी रंगों तथा सशक्त रेखाओं के माध्यम से व्यक्त की है। घरेलू ग्राम्य जीवन में गांवों के हाट और चौपालें, पनघट की भीड़, घर में चलने वाले कार्य, खेतों और खलिहानों की मनोरम छटाएं और ग्राम्य शिल्प आदि इस शैली के प्रधान विषय थे। इन चित्रों के अवलोकन मात्र से कलाकार की बारीकी और जन सम्पर्क का पता चलता है। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रत्येक व्यवसाय का पूर्ण ज्ञाता था उन शिल्पियों

से घुला-मिला है तभी तो हर विषय सही रूप मे प्रदर्शित हो सके है। प्राप्त चित्रो मे वस्त्र बुनते एक शिल्पी, गायों को हाँकता ग्वाला, भावी शिल्पी को शिक्षा देते शिल्पकार, नारियो की कार्य साधना, पनघट पर परामर्श, राह की बातचीत, शिशु को दुग्ध-पान, सद्य स्नाता, अजन लगाती तरुणी, काँटा निकालती नारी, अगड़ाई लेती यौवना, दर्पण मे मुख कमल निहारती मानिनी आदि प्रमुख विषय हैं जिनमे जीवन और गति का दिग्दर्शन होता है।

राजस्थानी शैली के कलाकार के गांव बाहर भी जन-जीवन को चित्रित करने में यथेष्ट सफल हुए है। यात्रा करते यात्री, विश्राम करते बटोही, सराय की शरण, बरगद की छाया मे लेटे, थके-हारे यात्री, पंखा झलती नारी, सेवक द्वारा दिये हुए हुक्के को गुडगुडाते स्वामी, थके-प्यासे सिपाही को पानी पिलाती स्त्री आदि तथा शांति, प्रेम, कृतज्ञता और समानता के भावों का जैसा चित्रण इस शैली के चितेरे कर सके है वैसा भारतीय चित्र शैली मे अन्यत्र किसी शैली के चित्रकार नही कर सके। घरेलू झाँकियों से पूर्ण चित्र जितने इस शैली मे है, अन्य किसी मे नही।

(4) राजसी वैभव एवं व्यक्ति चित्र

सत्रहवी सदी के उत्तरार्द्ध मे जब चित्रकला भोग, विलास व वैभव के मध्य स्थान ग्रहण करती है तो कलाकार के चित्रण का विषय भी भक्ति, राग-रागनियों, साहित्यिक रचनाओं से अलग आश्रयदाताओ की प्रशस्ति मे व्यक्ति चित्रण के साथ-साथ अन्त.पुर के दृश्य, राज दरबार नृत्यागनाएँ आदि पर चित्रण हुआ इसी प्रकार राजाओ के आखेट के शौक को भी चित्रकार ने कभी शेर, हाथी तो कभी सुअर का शिकार करते अत्यन्त सुलभ रूपों मे प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार चित्रण मे तत्कालीन सामन्तो की आपसी फूट, एक-दूसरे पर चढ़ाई, युद्ध की विभीषिका आदि ऐतिहासिक दस्तावेज रूप में आज भी कलाकार की सराहना कला मर्मज्ञो एव इतिहासकारो द्वारा की जाती है।

राजस्थान शैली के आरम्भ काल मे व्यक्ति-चित्रो का अधिक प्रचार न था। समय के प्रभाव से इसमे भी परिवर्तन आया और मुगल शैली की तरह इसमे भी व्यक्ति-चित्रो का श्रीगणेश हुआ। एक लम्बे समय तक राजस्थानी और मुगल शैली का मेल साथ-साथ कला और मुगल शैली के व्यक्ति चित्रो के प्रचार से ही शैली में व्यक्ति चित्र की रचना हुई परन्तु स्तर मे न्यूनता थी। राजस्थानी कलाकार ने अपने व्यक्ति-चित्रो मे अपने ही राजा-महाराजाओ, सरदार तथा साधु-सन्तो को प्रधानता दी।

अपने आश्रयदाता एव अन्य महत्वपूर्ण व प्रभावी व्यक्तियों के एकल चित्र राजस्थान के कलाकारो ने बड़े जतन से बनाये है। यह परम्परा मुगल सम्पर्क से राजस्थान की कला मे आई किन्तु राजस्थान की लघु-चित्रण परम्परा की निजी विशेषताओ के दर्शन प्राप्य व्यक्ति-चित्रों मे होते है। मेवाड़ एवं जयपुर के अतिरिक्त

पौधे, श्याम और घने बादल, बिजली की चमक, हवा का वेग, पक्षियों की मुक्त उडाने चन्द्र-सूर्य को प्रभाव, शान्त और गतिवान नीर सभी इस शैली मे प्रभावपूर्ण बनकर यशस्वी कलाकारो की तूलिका से चित्रित हुए हैं। भारत मे संगीत का प्रेम आदिकाल से चला आ रहा है। अमीर और गरीब सभी संगीत विद्या के प्रेमी रहे है। कलाकार की तूलिका भी इस वाद्य संगीत से पीछे क्यो रहे? यह भी संगीत प्रेमी बना और राग-रागनियों को मूर्तवत बनाकर कला के माध्य से उतारा। राग रागनियो एव चित्रो का माध्यम अलग-अलग है रूप अलग है एवं श्रवेन्द्रीय व दूसरा दृष्येन्द्रीय है फिर भी दोनो की उत्पत्ति एव आदर्श एक है।। जिसका कलाकार ने बखूबी रूपान्तरण किया है। राग चित्रमय प्रस्तुति है जिसका उद्देश्य रस प्राप्ति है। अतः राजस्थानी शैली मे राग-रागनियो का चित्रण ऋतु से साम्य रखते किया गया है। नायक-नायिकाओ के ऋतु विहार तथा प्रेमी-प्रेमिकाओ के युग्म इस शैली मे यथेष्ठ प्रधानता रखते हैं। इन राग-रागनियो मे प्रत्येक की ध्वनि व काल अनुसार विभिन्न प्रतिको मे चित्रित किया है। राग-रागनियो की संख्या अलग-अलग स्थानों पर भिन्निता रखती है। गुरु ग्रन्थ साहिब के अन्तिम भाग मे राग-रागनियो का वर्गीकरण किया गया है जिसमे छ मूल राग एवं प्रत्येक की पाच रागनिया तथा आठ पुत्र है इस प्रकार कुल संख्या 110 मानी गई है। इनमे प्रमुख भैरव, भैरवी मालकोष, टोड़ीवी, हिन्डोल, ललित, दीपक, कान्हरा, केदारा, आसावरी, मारू, मेघ, भूपाली, मॉड आदि तथा नायिकाओ मे स्वकीया, परकीया, गणिका, अभिसारिका आदि इस शैली मे मूर्त रूप बनकर उतर पडी हैं। वन तथा वाटिकाओ मे विचरण करते नाघ, शेर, सांप, हाथी, ऊँट, गाय, घोडा, हरिण, मयूर, हस, चकोर, सारस, कुरज, भ्रमर आदि राजस्थानी चित्रो से प्राय देखने को मिलते है। आम, बड, पीपल, कदम्ब, केला, खजूर और चम्पा इस शैली के चित्रो में प्रायः चित्रित किये गये है। अन्त मे यह प्रमाणबद्ध सत्य है कि प्रकृति और राग-मालाओ तथा नायक-नायिकाओं का जैसा चित्रण राजस्थानी कलाकार कर सके वैसा शायद ही विश्व की चित्रकला मे अन्यत्र मिलेगा।

(3) घरेलू जीवन चित्र

देव भूमि भारत के जनमानस का जीवन सदा ही धार्मिक एव पूर्ण सामाजिक रहा है उसका घरेलू जीवन और आचार विचार विशुद्ध सात्विक और धार्मिक रहा है। घरेलू और जन जीवन के चित्र जो इस शैली मे मिले है, वे वास्तव मे उन अमर चितेरो की सहज स्मृति कराते हैं। सामाजिक जीवन की सही झाकी अपने चटकले प्रभावी रगो तथा सशक्त रेखाओ के माध्यम से व्यक्त की है। घरेलू ग्राम्य जीवन मे गावो के हाट और चौपाले, पनघट की भीड, घर में चलने वाले कार्य, खेतो और खलिहानो की मनोरम छटाएँ और ग्राम्य शिल्प आदि इस शैली के प्रधान विषय थे। इन चित्रो के अवलोकन मात्र से कलाकार की बारीकी और जन सम्पर्क का पता चलता है। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रत्येक व्यवसाय का पूर्ण ज्ञाता था उन शिल्पियो

से घुला-मिला है तभी तो हर विषय सही रूप में प्रदर्शित हो सके है। प्राप्त चित्रो मे वस्त्र बुनते एक शिल्पी, गायो को हाँकता ग्वाला, भावी शिल्पी को शिक्षा देते शिल्पकार, नारियों की कार्य साधना, पनघट पर परामर्श, राह की बातचीत, शिशु को दुग्ध-पान, सद्यःस्नाता, अजन लगाती तरुणी, काँटा निकालती नारी, अगड़ाई लेती यौवना, दर्पण मे मुख कमल निहारती मानिनी आदि प्रमुख विषय हैं जिनमे जीवन और गति का दिग्दर्शन होता है।

राजस्थानी शैली के कलाकार के गाव बाहर भी जन-जीवन को चित्रित करने मे यथेष्ट सफल हुए है। यात्रा करते यात्री, विश्राम करते बटोही, सराय की शरण, बरगद की छाया मे लेटे, थके-हारे यात्री, पगा भलती नारी, सेवक द्वारा दिये हुए हुक्के को गुडगुडाते स्वामी, थके-प्यासे सिपाही को पानी पिलाती स्त्री आदि तथा शाति, प्रेम, कृतज्ञता और समानता के भावों का जैसा चित्रण इस शैली के चितेरे कर सके है वैसा भारतीय चित्र शैली मे अन्यत्र किसी शैली के चित्रकार नही कर सके। घरेलू झाँकियों से पूर्ण चित्र जितने इस शैली मे हैं, अन्य किसी में नही।

(4) राजसी वैभव एवं व्यक्ति चित्र

सत्रहवी सदी के उत्तरार्द्ध मे जब चित्रकला भोग, विलास व वैभव के मध्य स्थान ग्रहण करती है तो कलाकार के चित्रण का विषय भी भक्ति, राग-रागनियो, साहित्यिक रचनाओं से अलग आश्रयदाताओं की प्रशस्ति मे व्यक्ति चित्रण के साथ-साथ अन्त:पुर के दृश्य, राज दरबार नृत्यागनाएँ आदि पर चित्रण हुआ इसी प्रकार राजाओ के प्राइवेट के शोक को भी चित्रकार ने कभी शेर, हाथी तो कभी सुअर का शिकार करते अत्यन्त सुलभ रूपो मे प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार चित्रण मे तत्कालीन सामन्तो की आपसी फूट, एक-दूसरे पर चढाई, युद्ध की विभीषिका आदि ऐतिहासिक दस्तावेज रूप में आज भी कलाकार की सराहना कला मर्मज्ञो एव इतिहासकारो द्वारा की जाती है।

राजस्थान शैली के आरम्भ काल मे व्यक्ति-चित्रों का अधिक प्रचार न था। समय के प्रभाव मे इसमें भी परिवर्तन आया और मुगल शैली की तरह इसमे भी व्यक्ति-चित्रो का श्रीगणेश हुआ। एक लम्बे समय तक राजस्थानी और मुगल शैली का मेल साथ-साथ कला और मुगल शैली के व्यक्ति चित्रो के प्रचार से ही शैली मे व्यक्ति चित्र की रचना हुई परन्तु स्तर मे न्यूनता थी। राजस्थानी कलाकार ने अपने व्यक्ति-चित्रो मे अपने ही राजा-महाराजाओं, सरदार तथा साधु-सन्तो को प्रधानता दी।

अपने आश्रयदाता एव अन्य महत्वपूर्ण व प्रभावी व्यक्तियो के एकल चित्र राजस्थान के कलाकारो ने बडे जतन से बनाये है। यह परम्परा मुगल सम्पर्क से राजस्थान की कला मे आई किन्तु राजस्थान की लघु-चित्रण परम्परा की निजी विशेषताओं के दर्शन प्राप्य व्यक्ति-चित्रो मे होते हैं। मेवाड एव जयपुर के अतिरिक्त

बीकानेर में भी व्यक्ति चित्रों की भरमार रही जिसमें व्यक्तित्व के व्यक्ति को बखूबी से चित्रकार ने चित्रित किया है। यूरोपियन प्रभाव से व्यक्ति चित्रों में यथार्थ दर्शन भी आया किन्तु मूल विशेषताओं से समायोजित होकर 'पर्दाज' राजस्थानी लघु-चित्रों का आकर्षक स्वरूप बन गया। राजस्थान की विविध शैलियों में निर्मित व्यक्ति-चित्र तत्कालीन इतिहास के प्रमाण हैं जिन्हें आज देश-विदेश के अनेकों म्यूजियमों एवं संग्रहालयों में देखा जा सकता है।

राजस्थानी शैली के विभिन्न केन्द्र

उपरोक्त वर्णन में यह तो पूर्णतया निश्चित हो चुका है कि राजस्थानी शैली के सभी चित्र शुद्ध शास्त्रीय पद्धति पर निर्मित हुए हैं। यद्यपि उनमें अजन्ता की-सी सुकुमारता एवं लावण्यता नहीं है, फिर भी उनमें साहित्यिक भावनाओं की गहनता है और भक्ति, श्रृंगार तथा वात्सल्य की मधुर त्रिवेणी अविरल रूप से बहती जान पड़ती है। मध्यकालीन जैन पोथियों की परम्परा, प्रचलित लोक कला एवं साहित्यिक पुनरुत्थान से प्रेरणा प्राप्त कर सर्वप्रथम मेवाड़ के चित्तौड़, चावंड व उदयपुर में राजस्थानी चित्रकला स्वतन्त्र लघुचित्रण में विकसित हुई जिसका प्राचीनतम प्राप्य उदाहरण 1423 ई० में 'सुपासनाहचरियं' का एक पन्ना व रागमाला पर आधारित चित्र है जिनमें मध्यकालीन पोथी चित्रण की सभी महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ परिष्कृत रूप से देखी जा सकती है। पूर्ण विकास 16 व 17वीं सदी तक हो जाता है इसी मध्य राजपूतों का मुगल आश्रय स्वीकार करना व दिल्ली दरबार की सेवा में रहने से मुगल कला जो राजस्थान की समकालीन है का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से इस शैली पर पड़ा अवश्य है। फिर भी चतुर चितेरों ने अपने कौशल द्वारा और रूढ़िगत परम्पराओं को ठुकराकर ऐसा नया कदम उठाया जिससे यह शैली अत्यन्त समृद्धिशाली बन गई। शाही ठाट-बाट और शाही दरबार की सदृढ़ प्राचीरों के मध्य पलने वाली मुगल शैली कला की दृष्टि से अपना आधिपत्य राजमहलों एवं दरबार के अमीर-उमरावों तक ही सीमित कर पाई थी। परन्तु राजस्थानी शैली जन-जन की शैली बन गई। समस्त प्रान्त में यद्यपि एक ही शैली का एक-छत्र राज्य था परन्तु फिर भी छोटे-मोटे कई केन्द्र थे जिनमें चित्रकारों के अथक् परिश्रम, अद्भुत चातुर्य एवं अलौकिक प्रतिभा से अपनी-अपनी विशेषता के लिए कई केन्द्र स्थापित हो गये थे, जिनकी रचनाओं द्वारा इस शैली की अभिवृद्धि हुई। जिन छोटी-छोटी शैलियों ने विभिन्न राज्याश्रयों में जो कलात्मक संसार की सृष्टि की, उनका विस्तृत वर्णन निम्न है :

जयपुर शैली

राजस्थान की जयपुर नगरी अपनी भव्यता एवं सौन्दर्य के लिए कई शताब्दियों से प्रख्यात रही है। यहाँ के कई राजा-महाराजा अपनी भवन-निर्माण कला, काव्य रचना, संगीत, ज्योतिष एवं चित्रकला के प्रेमी, संरक्षक तथा मर्मज्ञ रहे हैं। इन्हीं

राजा-महाराजाओं ने सभी कलाओं की वृद्धि में पूर्ण सहयोग दिया उचित प्रश्रय देकर कलाकारों को प्रोत्साहित किया था जिसमें कला में वृद्धि हुई। महाराजा सवाई जयसिंह ने जयपुर शहर बसाया और भवन निर्माण तथा नगर के सौन्दर्य में अद्भुत रुचि ली। कई चित्रों का निर्माण भी हुआ, जिसमें घटना प्रधान चित्र तथा सचित्र ग्रन्थ रचना एवं कविताओं पर आधारित चित्र अत्यन्त प्रसिद्ध रहे हैं। महाराजा ईश्वरसिंह जी के समय में तो चित्रकला ने यथेष्ट प्रगति की जिसमें दृश्यचित्र, व्यक्ति-चित्र एवं प्रतीक-चित्रों की प्रधानता रही थी। मुगल शैली में ली गई कला प्रेरणा तथा चित्र रचना कौशल में उस समय के बने चित्रों में मुगल शैली की छाप अवश्य दिखती है। उस समय के शिकार सम्बन्धी चित्र एवं सवारी के ठाट-बाट
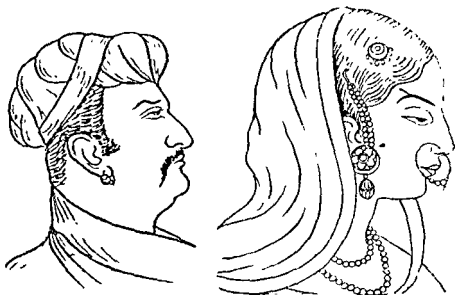
सम्बन्धी चित्र जयपुर के चित्रकारों ने बनाये थे जिन पर रेखांकन–18 जयपुर शैली की पुरुष और नारी आकृतियां (व्यक्ति चित्र) यूरोपियन शैली का प्रभाव भी दिखाई देता है। यथेष्ट प्रभाव पूर्ण एवं सुन्दर है। परन्तु मुगल शैली का प्रभाव स्पष्ट है जो राजस्थान की अन्य शैलियों पर कम दिखाने पड़ता है। जयपुर के राजा-महाराजाओं का मुगल दरबार में अधिक आवागमन था अतः जयपुर शैली पर मुगल शैली का प्रभाव बहुत रहा। प्रतिलिपिकार इतने कुशल थे कि मूल और प्रतिलिपि में कोई भेद प्रकट नहीं हो सकता। यहां तक कि कई चित्र ऐसे भी हैं जो मुगल शैली के चित्रों की अनुकृतियां ही है परन्तु वे ऐसे लगते है मानो मूल रूप में जयपुरी कलाकारों ने ही बनाये हैं। चित्रों पर अत्यधिक परिश्रम किया गया है, और उनमें अलंकारिता की छाप विशेष रूप में दिखाई देती है। जयपुर नरेश प्रताप सिंह जी भी कला-प्रेमी रहे हैं। उन्होंने राधाकृष्ण के अनन्य प्रेम, रास-नृत्य की रास, नायिकाओं के भेद, राग-रागनियों के चित्र एवं ऋतु-दृश्य चित्रों का निर्माण

करवाया था। इन्ही के राज्य काल में विशाल चित्रों का निर्माण भी होता था। ऐसा ही एक चित्र राधाकृष्ण के नृत्य का है जो करीब 10 फुट लंबा है—विषय सयोजन, रगो का सुन्दर जमाव, अग-प्रत्यगो का लावण्य, वस्त्रो की छटा, भावो का अद्वितीय अकन सभी उच्च कोटि के है। ऐसा पुष्ट मत है कि इस चित्र के समान राजस्थानी शैली मे दूसरा कोई अन्य चित्र न बना और न बन ही पायेगा। जयपुर शैली की पुरुषाकृतियाँ सुन्दर एव साधारण कद की तुर्रेदार पगडी, घारे जामा व दुपट्टा वेश मे भरा चेहरा, सुदृढ कन्धे, उन्नत ग्रीवा, ताम्रवर्णी रंग, अलकारपूर्ण वस्त्र आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। स्त्रियों का अकन भी अपनी विशेषतायें लिये हैं। कटि तक केशों का फैलाव, मादक सुन्दर नेत्र अधर मोटे, नथनी धारे नासिका, विकसित यौवन, पीत वक्ष, झूमती लटें, मुगल शैली के समान राजसी वस्त्र आदि महत्वपूर्ण विशेषताये है। प्रकृति चित्रण मे तरह-तरह के वृक्ष, पशु, पक्षी आदि चित्रत किये हैं, प्रकृति अलकारिक है। जयपुरी चित्रकारो ने चिकने रगो का प्रयोग किया है जिसके लिए वे रगो की खुदाई हेतु चिकने पत्थर पर फलक की घिसाई करते थे जिनमे हरे रग की सर्वत्र प्रधानता रही है। सभी चित्रो के हाशिये (बार्डर) गहरे लाल रग मे रजित किये जाते थे। सफेद, लाल, हरा, नीला व पीला रग कलाकारो के प्रिय रग थे जिन्हे वे वनस्पति अथवा खनिज व रसायनो से तैयार करते थे। चाँदी के रग का प्रयोग पानी बनाने मे ही करते थे व सुनहरे रग का प्रयोग अलका-रिता व भव्यता दिखाने मे करते थे। जयपुर शैली मे स्वतन्त्र विषय सयोजन की कमी रही थी, अनुकृति प्रधान चित्र अधिक थे जिससे प्रतिभा मे कमी आई है। जयपुर शैली के चित्र परिश्रम प्रधान है, सजीव हैं, विशेष दृष्टिकोण मे परिपूर्ण हैं मगर मौलिकता की दृष्टि मे वे निम्न माने जाते हैं। इस शैली के प्रसिद्ध चितेरे वैसे तो कई हैं परन्तु उनमे साहिब राम, लक्ष्मणदास, मालगराम और लालचन्द प्रमुख थे।

जयपुर जिसे अम्बर शैली के नाम से भी जाना जाता है, राजस्थानी कलम की अन्य शैलियों की तुलना मे कम शुद्ध है जिस पर आरम्भ से अन्त तक मुगल प्रभाव बहुलता मे रहा। व्यक्ति चित्र के अतिरिक्त सयोजन, रग योजना, स्थापत्य चित्र आदि पर भी मुगल प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसके पश्चात् भी जयपुर कलम मुगल शैली की उपशैली कभी नही कही जा सकती क्योंकि इस कलम के कलाकारो की आत्मा व शरीर दोनो ही राजस्थानी जीवन मे रची हुई थी जिस पर हल्का आवरण कुछ स्थानो पर मुगल कलम का पडा है। जयपुर कलम के चित्र व भित्ति चित्र जयपुर राजघरानो की हवेलियो, मन्दिरो, प्रतिष्ठित नागरिको की हवेलियो के अतिरिक्त अलवर, करौली, उणियारा, धौलपुर, लक्ष्मणगढ, मुकुन्दगढ़, झुंझनू आदि अनेक स्थानो पर जयपुर भित्ति चित्रण परम्परा के चित्र विद्यमान है। जिनमें राग-रागनियाँ, नायक, नायिका भेद, आखेट एव व्यक्ति के चित्रण के अतिरिक्त पौराणिक कथाएँ, रामायण, महाभारत, दुर्गासप्तशती, भागवत, गीतगोविन्द, कृष्ण-

लीला, वात्स्यायन का कामसूत्र आदि पर आधारित चित्रण हुआ जिनमें जयपुर शैली का स्वतन्त्र रूप स्पष्ट उभर कर सामने आता है।

किशनगढ़ शैली

राजस्थानी शैली की सभी प्रान्तीय शैलियों में इसका स्थान कुछ विद्वानों ने सर्वोच्च माना है। किशनगढ़ यद्यपि एक छोटा-सा नगर है जो जयपुर और अजमेर के बीच में स्थित है। कहते हैं कि जोधपुर नरेशों ने इस सुरम्य नगर को बसाया था और नगर के शासक राजा होने के साथ-साथ भक्ति काव्य और कला के अभूतपूर्व

रेखांकन—19 किशनगढ़ शैली (नारी सौन्दर्य)

विद्वान व ज्ञाता थे। प्रथम शासक राजा किशनसिंह ने अपने ही नाम पर सन् 1609 में किशनगढ़ की नींव डाली। किशनसिंह जी स्वयं विद्वान व कलाप्रिय थे। किशनगढ़

कलम के विकास मे राजा रूपसिंह का महत्वपूर्ण स्थान है। वल्लभ सम्प्रदाय के भक्त थे जिन्होंने भक्ति तथा आराधना को चित्रकला मे उतारा। इनके राज्य में चित्रकारो का एक अच्छा खासा जमघट था, जिन्होंने अपने स्वामी की राधा-कृष्ण की आराधना को रेखाबद्ध किया। फलत कई चित्रों का निर्माण हुआ।

राजा राजसिंह जी शासक होने के साथ-साथ भक्त भी थे। इन्हे चित्रकला का ज्ञान भी था। चित्रकार की प्रतिभा होने से इनके पुत्र सावन्तसिंह (1699-1764) भी कवि और कलाकार हुए। यही सावन्तसिंह किशनगढ तो क्या सम्पूर्ण राजस्थान प्रान्त मे भक्त नागरीदास के नाम से विख्यात है। इसी भक्त की काव्य-धारा ने किशनगढ की शैली मे प्राण फूंका था, चित्रकला की एक सुरम्य धारा बहायी थी। नागरीदास भक्त, सन्त, कला-मर्मज्ञ, कृष्णलीला के रसिक और भावुक कवि थे। जिनके पद राजस्थान में आज भी गाये जाते हैं। इन्ही के पदो की प्रेरणा से चित्रकला मे प्राण-शक्ति व्याप्त हो गयी। इसी सन्त की अमरवाणी ने चित्रकला को प्रेरणा और बल दिया। कवि नागरीदास की प्रेयसी 'वणी ठणी' ही यहा की कला का केन्द्रबिन्दु है। वणी ठणी ही राधा के रूप की प्रतीक थी, आराध्य देवी थी और इसी भाव मे प्रेरित होकर चित्रकारो ने भी नागरीदास की आराधना के प्रतीक को चित्रो मे उतारा जो राजस्थानी शैली मे सर्वोच्च शिखर पर आसीन है।

किशनगढ की शैली के चित्रों का विषय प्रमुख रूप मे वणी ठणी का सुन्दर राधा रूप है। उसी राधा रूप का चित्र इस शैली का उत्कृष्ट कला चित्र माना गया है। इसके साथ ही राग-रागनिया, वैभव, विलास, गीत गोविन्द के चित्र आदि हैं। इसी शैली के चित्रो मे पुरुषाकृतिया और नारी आकृतिया सौन्दर्य की अनुपम देन है। पुरुष लम्बे छरहरे, मोतियो जडी पाग बांधे, उन्नत ललाट, उठी नासिका, पतले होठ, खजन आकृति के नेत्र, जिनमे मादकता का रूप झलकता है, चित्रित किये गये है। नारी आकृति मे भी ललाट उन्नत, नासिका दीर्घ, नेत्र बांके और कजरारे, अधर मधुर व पतले, कोपल अलको से आच्छादित, केश लम्बे व घने, वक्ष स्थल अर्ध विकसित और उन्नत उरोजो से युक्त, कटि क्षीण पांवो को छुपाये, लहंगा और पतली कोमल अगुलियाँ चित्रित की गई। चित्रो के उपकरण फूलों मे आच्छादित वृक्ष हरित दुर्वायुक्त भूमि, नीला आकाश, तारो और चन्द्रमा युक्त सघन कुज, कमल से भरे सरोवर, पक्षियो की पाँतें, विशाल भवन, विभिन्न ऋतुओ का प्रभाव आदि है। इस शैली के चित्रो मे सरोवर, भव्य प्रासाद, तारा युक्त दुग्ध चादनी आदि-आदि चित्रित किये गये है। हासिये बनाने की परम्परा भी इस शैली मे है श्वेत व हल्के गुलाबी रग का सामजस्य विशेष रूप मे प्रयुक्त किये गये है। रगो मे हरा, गहरा नीला तथा लाल रग प्रमुख है। पुष्प आच्छादित वृक्ष, स्वर्ण आभा युक्त बादल सकलय की नीजी विशेषताएँ है। इस शैली की आकृतियो मे माधुर्य, ओज तथा लावण्य विशेष रूप मे पाया जाता है जो इसकी प्रमुख विशेषता है। दूसरी अन्य विशेषता जो सम्भवत: अन्य राजस्थानी चित्रों मे नही पायी जाती, इस शैली के चित्रों की है, वह है—खजनाकृति

नेत्र जो दीर्घ व मदकता-पूर्ण है, प्रयुक्त किये गये है। रेखाये सर्वत्र शक्ति सम्पन्न, प्रवाह युक्त एवं पूर्णतया को लिये हुये है। तूलिका की नोक प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कौशल और विश्वास से चली है। किशनगढ़ शैली का कलाकार निर्भय, भावुक और भक्त जान पड़ता था। तभी उसने प्रकृति के रूप को इतना सही उतारा है। इस शैली के प्रसिद्ध कलाकारो मे निहालचन्द, सूरध्वज, अमीर चन्द व छोटू रहे है। इनके बने कई चित्र आज भी भारत के बड़े-बड़े सग्रहालयो मे सुरक्षित है। इन चित्रकारो ने बड़े चित्र भी चित्रित किये थे, जो इस शैली की अनुपम देन है। इस शैली के चित्रों मे प्रमुखतया गुलाबी और सफेद रग प्रयुक्त किये गये हैं और हाशिये गुलाबी व हरे रंग मे। किशनगढ की शैली राजस्थानी की एक अनुपम, उन्नत और उच्च-कोटि की उप-शैली है जो विगत काल मे लेकर भविष्य तक प्रतिनिधित्व करती रहेगी। इस शैली की सुकुमारता, वैभव और विकास का सारा श्रेय सन्त कवि नागरीदास जी को रहेगा जिनकी भक्ति और काव्य मे अभिरुचि अगाध थी, कला अनुराग अपार था, बणी ठणी की शुद्ध भक्तियुक्त आराधना थी, तभी तो किशनगढ की चित्र शैली कला-कसौटी उच्च आसन पर विराजमान हो चुकी है।

मेवाड़ शैली

मेवाड़ की राजधानी उदयपुर एव प्राचीन राजधानी चावड अपनी प्राकृतिक सौन्दर्यता के प्रतीक है। उदयपुर आज भी विश्व के पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है। महाराणा कुम्भा (1433–1468) ने मेवाड मे साहित्य सगीत एव कला मे विशेष रुचि दर्शाकर यहा इन कलाओं का शृ गार किया। महाराणा सागा, मीराबाई की भक्ति रचनाएँ, महाराणा उदयसिंह, जगतसिंह, राजसिंह आदि के सरक्षण मे मेवाड मे स्वतन्त्र चित्राकन की धारा वेग से प्रवाहित हुई तथा राजस्थान को कला का केन्द्र बनाने का श्रेय प्राप्त किया।

मान मर्यादा और जन्मभूमि की स्वतन्त्रता के लिए जूझने वाले मेवाडी वीर नरेशों ने कई वर्षो तक सघर्ष किया और एक समय ऐसा प्रस्तुत हुआ जब शान्ति का शासन प्रारम्भ हुआ। राजस्थानी जीवन सम्पूर्ण कलामय है अत उदयपुर मे भी वही कलात्मक वातावरण फैल गया। फलत. यहा के राजाओ मे कला और भक्ति के प्रति अनुराग हुआ और स्वयं इस कला-ससार मे कूद पडे। उदयपुर के कई नरेशों यथा राणा अमरसिंह, संग्रामसिंह, अरसीसिंह तथा भीमसिंह आदि ने चित्रकला का प्रसार किया। यहा के वशजों के आराध्य देव श्री कृष्ण ही रहे और वल्लभ-सम्प्रदाय का ही प्रभाव रहा। अत. सूर की पदावलियाँ चित्रकार की तूलिकाओं मे उतर कर साकार रूप मे खडी हो गई। राग-रागनियाँ, नायिका भेद, ऋतुमास, गीत-गोविन्द, कृष्ण-लीला और भागवत की चित्रा-वली आदि यहा के चित्रकारो के विषय रहे। श्रीकृष्ण के अवतरित समय मे लेकर, नन्द की हर्षोल्लास वेला से आगे बढ, बाल्य जीवन की विभिन्न झाँकियाँ, असुर-वध, रास-नृत्य आदि लीलाओं को उदयपुरी चितेरो ने खूबी

के साथ चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त बिहारी, सतसई, पचतंत्र की कहानियाँ, पृथ्वीराज रासो, नल दमयन्ती, रसिक और कवि-प्रिया आंशिक एवं पूर्णरूप में चित्रित हुए हैं। बिहारी सतसई के प्रत्येक दोहे के चित्रण अर्थ की पूर्णतया स्पष्ट करते हुए चित्रित किया गया है। यहाँ की पुरुषाकृतियों का अंकन जोधपुर सा ही है मगर पगड़ी मेवाड़ी है तथा शारीरिक गठन साधारण-सा ही है। स्त्रियों का अंकन सरलता के भाव से दर्शाया गया है। मुखाकृतियाँ कमनीयता प्रधान रहती हैं। मीनाकृति नेत्र, सीधी लम्बी नाक, भरी चिबुक, कमर लटकती वेणी, लम्बे बाहुपाश, क्षीण कटि, अर्द्ध विकसित उरोज आदि इस शैली की विशेषता है। तात्पर्य यह है कि नारी चित्रण कमनीय तथा प्रभावोत्पादक रूप में हुआ है बूँदी की तरह इस शैली में वस्त्र इतने पारदर्शक नही होते। इस शैली में व्यक्ति-चित्र भी ऐसे हैं जिनमें राजा, अन्य कर्मचारी, धनी-मानी सरदार तथा गोसाई प्रमुख हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रभाव से यहाँ के चित्र अत्यन्त धार्मिक रहे है। कृष्ण को नायक बताया है और प्रत्येक रस तूलिका में उतर चुके हैं। यहाँ चित्रकारों की आलेखन प्रतिभा सूक्ष्म घटना को व्यक्त कर देने की सामर्थ्य बड़ी विचित्र जान पड़ती है लाक्षणिक प्रतीकों और भावों को व्यक्त करने के लिए कल्पना की उड़ानों का प्रकटीकरण बहुत ही सराहनीय है।

मेवाड़ कलम के आरम्भिक चित्रों में रेखाएँ मध्यकालीन जैन पोथियों की तरह मोटी (वायरील इन्स) है किन्तु 16 वी सदी में लघुचित्रों की रेखाएँ अजन्ता की परम्परानुसार पतली, लयात्मक हो गई जो सम्पूर्ण चित्रण में लावण्य उत्पन्न करती हैं। मेवाड़ चित्रों में कलाकार राज्याश्रय में था जिसने चित्रों के रंग वनस्पति रसायन अथवा खनिज पदार्थों से हाथ से घोट-घोट कर निर्मित किये हैं इन रंगों में लाल, नीला, पीला, श्वेत व श्याम रंग प्रमुख है। चित्रों का संयोजन पारम्परिक है जिसमें प्रमुख विषय वस्तु को मध्य में प्रभावोत्पादक स्थान पर नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है जिसमे यथार्थ के छायाप्रकाश, परिप्रेक्ष्य को न दिखाकर काल्पनिक पर्यप्रेक्ष्य (एरियल पर्सपेक्टिव) का निर्वाह किया गया है। प्रकृति अलंकारिक पेड़-पौधों से बनायी गयी है जिसमें एक-एक पत्ती को अलग-अलग हल्के एवं गहरे रंग से निर्मित किया गया है।

पक्षियों के चित्रण में चकोर, हंस, मयूर और पशुओं में हरिण और हाथी होते है। हाथी को गैस शैली में विविध रूपों में दिखाया गया है।

मेवाड़ शैली राजस्थानी लघु चित्र परम्परा का प्रवेश द्वार है जिसके प्रमुख केन्द्र चित्तौड़, चावंड, देवगढ़, बांसवाड़ा, डूँगरपुर आदि हैं जहाँ मेवाड़ कलम की प्रमुख विशेषताओं के अतिरिक्त निजी विशेषताएँ भी उभरी। नाथद्वारा के केन्द्र को भी मेवाड़ में ही रखा जाता है क्योंकि यहाँ के चितेरे मूलतः मेवाड़ कलम को ही अपना आधार मानते थे। आज इस कलम के असंख्य उदाहरण प्रिंस ऑफ वेल्स *म्युजियम, बम्बई, सरस्वती भंडार उदयपुर, बोस्टन म्युजियम लन्दन* के अतिरिक्त

देश-विदेश के शायद ही किसी संग्रहालय मे इस कलम का चित्र न हो। चित्रों की परम्परा मेवाड क्षेत्र की प्राचीन हवेलियों, राजप्रासादों आदि मे भी देखी जा सकती है जिनके उचित रख-रखाव की आज अत्यन्त आवश्यकता है।

नाथद्वारे की शैली

नाथद्वारा एक देव-स्थान है जो उदयपुर के निकट पहाडियों के आंचल मे बसा है। वल्लभ सम्प्रदाय का यह प्रतिष्ठावान केन्द्र है। श्री नाथजी की विशाल मूर्ति की आराधना हेतु यहाँ पुष्टीमार्गी गोसाई-जन निवास करते है। भारत के विभिन्न प्रान्तों के असंख्य नर-नारी यहाँ बहुधा आते ही रहते हैं। यहाँ के चित्रकारो ने भक्तों के अनवरत आवागमन से ईश्वर रूप की लीलाओं को चित्रित करना आरम्भ किया। सूर और अष्टछाप के अन्य भक्त कवियों के बाल-लीला के पद, *बाल गोपाल का हसना, तुतलाते बोलना, हिंडोले मे झूलना, यशोदा से माखन मागना* आदि प्रसंग चित्रों मे बनकर भक्त-जनो के सम्मुख आये। नाथद्वारा की शैली मे राग-रागनियों और नायक-नायिकाओं का जमघट नहीं है, ऋतु वर्णन और प्रेम कथाओं का चित्रण भी इस शैली में स्थान नहीं पा सके हैं। इसमें तो बलदाऊ की जोडी, नन्द की गायों का कालिंदी के तट प्रस्थान, ग्वालो का कृष्ण के साथ माखन के लिए जाना, गोपियों से छेड-छाड, माखन चोरी आदि बाल लीला प्रसग अधिकता से चित्रित हुए है। नाथद्वारा शैली मे बालगोपाल की लीला के साथ गोसाईयों के *व्यक्ति-चित्र (विभिन्न वेशधारी रूपों मे) यमुनाजी का प्रतीक चित्र, श्री नाथ बाबा के* चित्र भी बने है। इस शैली की समानता मथुरा शैली से की जा सकती है जो भारतीय अन्य शैलियो से अपना एक पृथक अस्तित्व रखती है।

नाथद्वारा शैली मे बने प्राकृतिक दृश्य चित्रण (नेचुरल सिनेरी) बड़े उत्कृष्ट होते हैं परन्तु विगत कई वर्षों मे चित्रकार बाजारू बन गया है, उसे व्यापारिक वृत्ति ने अन्धा कर दिया है फलत. आज नाथद्वारा मे सहस्त्रों लोक कलाकार कृष्ण लीला के भक्ति चित्रों का चित्रण छोड़ कर सस्ते दृश्य चित्रों, सिनेमा के आकृतियों की अनुकृति करने, नेताओं की छवीहें तैयार करने तथा अन्य चित्रों की अनुकृति करने में लग गये है। यह अध-पतन वास्तव मे शोचनीय है। ये सस्ते चित्र आज बीस पैसो से लेकर दो चार रुपये तक बिकते है। कई घराने इसमें लगे है और लोक कला का रूप बन गया है। घर के सभी व्यक्ति इसी मे लगे है। यह नाथद्वारे की कला का पतन है।

आज मे सौ, सवा सौ वर्षों पहले के बने चित्रों मे कला का अत्यन्त निखरा हुआ रूप था। संयोजन की दृष्टि से कुछ अरुचिकर अवश्य प्रतीत होता हैं फिर भी विषय वस्तु भक्ति के पुट से आँखों को भला लगता है। प्रधान रूप मे यशोदा व कृष्ण के चित्र अधिक है। यशोदा के चित्रण मे जो प्रौढता है वहीं अन्य नारी आकृतियों मे आ गई है। गायो का चित्रण बडा सुन्दर हुआ है। पुष्ट और स्वस्थ

गायें प्राचीन भारत की याद दिलाती है। ग्वाले भाव विभोर बने हैं तथा पशु-पक्षी भी आश्चर्य जनक कृष्ण की भव्य छवि की ओर आकृष्ट हैं। इस शैली में नेत्र विशाल मीनाकृति के बने हैं तथा होठ स्थूल, लटकती वेणी, कमर स्थूल, वक्ष बड़ा मगर उरोज कुछ लटके हुए है कई तरह के पक्षियों यथा बक, हंस, मोर और तोता का चित्रण मन-मोहक एवं स्वाभाविक रूपों में हुआ है। नाथद्वारे के चित्रों का प्रभाव उदयपुर, जयपुर, कोटा, बूंदी तक गया मगर पनप न सका. यह शैली मन्दिरों की ऊँची-ऊँची दीवारों में ही रह गई। इस शैली में गति व ओज था मगर उचित प्रोत्साहन के अभाव में आज यह व्यापारिक व बाजारू बनकर रह गई है। इस शैली में प्राचीन कृष्ण लीला चित्रों में कल्पना और मौलिकता की उड़ान है। मुख्य विशेषता पुष्ट गायों का चित्रण, केले के सुन्दर वृक्ष, लता, कुंज और कमल की कलियों का चित्रण है। पिछवाई चित्र शायद श्री नाथजी के पीछे लगाने के पट्ट के कारण नाम पड़ा। यहां के श्रेष्ठ उदाहरण है जिनमें श्री नाथजी की विविध झांकियां, कृष्ण लीला, भागवत के अंश आदि बनाये जाते हैं मे मेवाड़ की विशेषताओं के अतिरिक्त निजत्व भी उभरा है। यहां के चित्रों में रंग प्रखर है और रेखाएँ गतिहीन बना दी गई हैं जिससे संयोजन भी निम्न कोटि का प्रतीत होता है। यहां के प्राचीन चित्रकारों में घासीरामजी, खूबीरामजी, पुरुषोत्तमजी आदि है व आज के उदीयमान कलाकारों में रेवाशंकरजी प्रमुख हैं किन्तु आज यह केन्द्र मात्र व्यापारिक निर्माण केन्द्र है जहाँ कला नष्ट हो चुकी है।

जोधपुर शैली

मरुधरा की केन्द्र नगरी जोधपुर राजस्थान के प्रमुख नगरों में है जिसका ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्त्व चिरकाल से अपनी एक विशिष्टता लिये है। यहाँ के राजा राठौर कहे जाते है। जो राष्ट्रकूटों के वंशज है। जोधपुर के शासकों में महाराजा मानसिंह, तख्तसिंह, गजसिंह, जसवंतसिंह तथा अजीतसिंह अत्यन्त विख्यात राजा हुए हैं जिनके शौर्य की छाप मुगल काल में भी रही है। ये राजा वीर थे मगर साथ ही इनमें काव्य और कला के प्रति अपार रुचि थी। महाराजा मानसिंह को वीरता विरासत में मिली थी। वे उच्च कोटि के भक्त व काव्य कला के साधक थे। महाराजा मान के कई पद आज भी मरुभूमि में यत्र-तत्र गाये जाते है। उनके दरबार में कई चित्रकार थे जिन्होंने वैष्णव सम्प्रदाय, राग-विलास और युद्ध शिकार के चित्रों का निर्माण किया---महाराजा जसवंत सिंह एक अजेय योद्धा थे और मुगल दरबार में जिनका अच्छा प्रभुत्व था, विशेष आगमन से चित्रकला की विशेष अभिरुचि रही। फलस्वरूप जोधपुरी चित्रकारों ने मुगल शैली के चित्रों की अनुकृति भी की थी और स्वतन्त्र रचना भी। जोधपुर नरेशों के अधीनस्थ कई राज-घराने नगर के इर्द-गिर्द थे जिनमें प्रमुख थे जालौर, नागौर, कुचामन, मेड़ता। इन जागीरों में

भी कला का काफी प्रसार था और उत्कृष्ट कला सर्जना भी हुई। जालोर के बने जैनकल्प सूत्र तथा नागोर की सचित्र पोथियां है। सचित्र पोथियों में, विक्रमादित्य की वार्ता, सोनकुंवर की वाता, कच्छ वच्छ री वार्ता, चौबोलीरी कथा, राजा रिसालू री वात और चकवा-चकवी री वाता आदि पर कथा चित्रों का निर्माण हुआ है। रामायण, महाभारत, महाकाव्य के कई कथा चित्र आंशिक रूप में भी पाये जाते हैं। जोधपुर शैली में कई भित्ति-चित्र भी मिले हैं जिनकी रेखायें प्राणवान

रेखांकन— 20 नायक को ताम्बूल अर्पण करने जाती हुई एक नायिका
(जोधपुर शैली)

नही है और सयोजन ही पुष्ट हैं। केवल रगो का तारतम्य व मेल उन्नत दिशा को इंगित करता है।

किशनगढ़ शैली की तरह यहा भी राधाकृष्ण के चित्र बने है पर वे ईश्वरीय गुणो के नहीं। यहाँ भी राधाकृष्ण राजा-रानी के रूप हैं तथा होरी खेलते, हिंडोला झूलते और भोग-विलास मे रत चित्रित किये गये है। राजाओ व जागीरदारों के शबीह चित्र जो 'पोर्ट्रेट्स' कहे जाते है, बने थे। राजाओं द्वारा आखेट, उत्सव-सवारी और दरबार के मेमीर-उमराव आदि विषय भी इस शैली मे स्थान पा चुके है। अमरसिंह राठौड व वीर दुर्गादास के कई चित्र घोड़े पर आसीन चित्रित किये गये हैं। पाबूजी, हड़बूजी, गूगाजी, राव मल्लिनाथ जी आदि वीर पुरुषों की शबीहे भी इस शैली मे उत्कृष्ट-कोटि की चित्रित की गई है। प्रेम कथाओं में मूमलदे, निहालदे के चित्रों की इस शैली मे बहुतायत है। मूमल यहाँ की लोक कला मे गाई गई है। प्रेम कथाओं में अन्य कथा चित्र ढोला मरवण के बने हैं। ये अनन्य प्रेमी थे जिनके कई चित्र इस शैली मे प्रधान रूप से पाये जाते हैं। कहीं दोनो प्रेमी युगल ऊँट पर सवार हैं, कहीं मरवण अपने प्रेमी ढोला को अपना संदेश कुरजा पक्षी (सरोवर का एक विशेष सफेद रग का पक्षी) के द्वारा भेज रही है तो कहीं ढोला मरवण को रात्रि के अर्द्ध पहर मे महल से उतार कर ले जाने की चेष्टा मे है। कामसूत्र के कई अंशो के चित्र भी इस शैली मे देखने को मिलते हैं।

जोधपुर शैली मे पुरुषाकृतियाँ विशाल कद की होती है। सर पर मुगलशाही 'खिड़किया पाग' तुर्रे किलगी लगी होती हैं, चेहरा भरा हुआ, बडी लम्बी गल मुच्छ, विशाल नेत्र, मासल गात व हिचकी, सुदृढ़ कंधे, उभरा वक्ष, कमरबन्द जिसमे कटार लगी, हाथ मे भाला, पावों तक घेर घुमावदार पाजामा, चोंचदार भारी भरकम मोजड़ी, कमर से लटकती दुधारी तलवार आदि कुछ विशेषतायें हैं। कंठ-हारों और कानों मे बालियों का भी प्रयोग अधिक है। नारी अकन में कौमार्य का रूप अधिक है परन्तु कद लम्बा, उन्नत ललाट, शुक समान नासिका, खंजनाकृति लम्बे नेत्र, लटकती अलकावलियाँ, लम्बी ग्रीवा, स्वस्थ वक्ष, कसी हुई पारदर्शक कंचुकी, क्षीण कटि, झालरी युक्त चुनरी, पांवो तक लटकता लहँगा चित्रित किये गये है। नारी के कपोल पर काला तिल और होठों पर अरुणाई विशेष रूप से दिखाई जाती है। राजकुमारी व रानिया कहीं झरोखों मे बैठी, छतो पर विहार करती और महलो मे चौपड़-सारी खेलती भी बनाई गई है। वस्त्रो को अलकार पूर्ण और राजसी वैभवयुक्त दर्शाया गया है जिसे मुगल शैली का प्रभाव कहा जा सकता है। इस शैली मे अश्वों और ऊँटो का अंकन वैसा ही उत्कृष्टता पूर्वक हुआ है जैसा कि अजन्ता शैली मे हाथियो का। अश्वो पर आरूढ राजा, सवारी का दृश्य, शिकार आदि में घोड़ों का चित्रण अत्यन्त सुन्दर हुआ है। हाथियो पर चढे कई राजा दिखाये गये हैं। प्राकृतिक दृश्यो मे काले मेघ, बीच मे कोंधती विद्युत रेखा सुवर्ण रग मे दर्शायी जाती थी। वृक्षो मे आम प्रमुख है। पक्षियो मे कुरंज व मोर चित्रित किये जाते थे। मयूर, जैसे बूंदी

शैली मे चित्रित किये गये हैं वैसे इस शैली मे नही बन सके है। जोधपुर शैली में पीले रंग की प्रधानता रही है। हाशिये लाल होते थे परन्तु सीमाएँ पीले रंग की होती थी। कभी-कभी छींटदार तो कभी-कभी पशु पक्षियो से युक्त हाशिये भी बनाये जाते थे। चित्र लम्बे बनाये गये हैं जो अन्य शैली मे कम ही उपलब्ध होते है। इस शैली की प्रमुख विशेषता व मौलिकता 'मुखाकृति' चित्रण मे है। बादल मण्डलाकार विद्युत युक्त चित्रण मे है। स्त्रियो का नेत्र अंकन अब इस शैली की विशेषता रही है। पुरुषो की मूछें व दाढ़ी, पगडी का बंधेज तथा घोड़ो का सुन्दर अंकन इस शैली की विशेषता रही है जो संख्या दृष्टि से कम अवश्य है परन्तु मौलिकता और प्रचार दृष्टि से अपना विशेष स्थान रखते है। इस शैली के प्रमुख चित्रकार भाटी वश के किशन, शिवदास व देवदास थे।

बूंदी शैली

बूंदी एक छोटी सी रियासत है जो राजस्थान के दक्षिण पश्चिम मे है। बूंदी की पृष्ठभूमि में वीरता और शौर्य की अमिट छाप है। इसकी स्थापना सं 1398 मे हुई थी। सभी नरेशो ने संगीत, कला, काव्य तथा शस्त्र-विद्या मे पूर्ण रुचि ली और परिणाम स्वरूप बूंदी में अनेक स्वतन्त्र व मौलिक रचनाएँ देखने को मिलती है। राजाओं के पूर्ण प्रश्रय के कारण ही कल्पना और शैली मे मौलिकता आई। प्रश्रय के साथ-साथ राजा लोग भी स्वयं कला जिज्ञासु एवं कला पारखी हुए है। उस काल के चित्रित चित्र आज भी राजस्थानी शैली में बूंदी का प्रतिनिधित्व करते है जिनका भाव-चित्रण अपनी विशेष मर्यादा के द्योतक हैं। कला के पारखी एव प्रश्रयदाताओं मे राजा रामसिंहजी (स. 1821), राव गोपीनाथ, छत्रसाल, विशनसिंह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

बूंदी शैली के चित्रो के विषय भी वही है जो प्रान्त के विभिन्न भागों मे प्रचलित थे। राग-रागनियो का विभिन्न रूपों में चित्रण, नायक-नायिकाओं के भेद' ऋतु की बदलती घटा तथा कृष्ण-लीला वर्णन आदि पर अनेको मौलिक चित्र निर्मित हुए हैं। इसके साथ ही इस शैली मे शिकार को प्रस्थान करते, सवारी और उत्सव की तैयारी आदि के सामयिक दृश्य चित्र अंकित हुए मिले हैं जिससे उस समय की समाज-व्यवस्था तथा जन-अभिरुचि का ज्ञान होता है। कई चित्र सास्कृतिक रुचि पर भी चित्रित हैं जिनमे होली सम्बन्धी प्रमुख है।

राग-रागनियों में यहा के कलाकार उच्च कोटि के माने गये हैं। उन्होंने स्वतन्त्र कल्पना और मनोभावो के बल पर रागनी टोड़ी, भैरवी, विलावल आदि के भावचित्र चित्रित किये है, नायक-नायिकाओ के कई चित्र बने हैं, जिनमें वर्षा का आनन्द लेते, महलो मे प्रेम-साधना रत, शीत मे एक ही वस्त्र ओढे आदि हैं। बूंदी के चित्रकारो ने जैसी कुशलता दिखाई है वह अलौकिक है। कल्पना का पुट अधिक है। रंगों की विविधता सजावट एवं वातावरण विषय प्रधान है। रंग इतने चटकीले लगाये गये है। कि दर्शक मुग्ध हो जाता है। राधाकृष्ण के आधार पर भी नायिका

भेद चित्र बने है जो साहित्यिक दृष्टि से सरस है। ऋतु चित्रों मे वारहमासा चित्र बने है जिनमे ग्रीष्म का प्रकोप दुखदायी शीत मे सुख की सीमा, वर्षा का आनन्द सभी मे वातावरण ऐसा चित्रित किया गया है को स्वाभाविक लगता है। श्याम घने बादल, बिजली का कोधना, पक्षियो की पक्तिबद्ध उडाने, हाथियों, मृगशावकों शेरो आदि का जगलो मे विचरण सभी इतने सुन्दर ढग से बनाये गये हैं कि जी मे आता है कि बार-बार इसका अवलोकन किया जाय। बादलो मे सुनहरा रग अत्यन्त आकर्षक लगता है। लाजवर्दी रग (नीला) इतनी सुन्दरता मे प्रयोग किया गया है कि आकाश धरती पर उतरना चाहता है। हाशिये लाल हिंगलू रग में बनाये गये है जिन पर सोने की चमक आँखो मे तेज भर देती है। वर्षा मे नाचता हुआ मयूर यहा उच्चकोटि रूप मे चित्रित हुआ है। मयूर का जैसा सुन्दर रूप बूंदी चित्रो मे उतारा गया है अन्यत्र कही नही मिलता। सरोवर मे क्रीडा करते और कुंजो मे कलोल करते सारस, हस, शुक, कबूतर आदि प्रमुख है।

बूंदी शैली में नर-नारी आकृतिया अपनी विशेषता लिये हैं। पुरुष साधारण लबे, झुकी पगडिया धारे, घुटने तक का जामा पहने, कमर दुपट्टों से कसी हुई तथा पावो मे चुस्त पाजामा पहने दर्शाये गये हैं। भरा हुआ चेहरा, लम्बी मूछे, कानो मे एक मोती की बाली, वक्षस्थल पर मोतियो के हार तथा पुष्पहार पुरुष चित्रो में विशेष रूप से होते है। स्त्री आकृति में नेत्र आम्रपल्लव के शक्ल के, होठो पर लाली, गोलाई पूर्ण मुख, कचुकी से कसा वक्ष, खीचा हुआ उदर, क्षीण कटि, पतली अगुलियाँ, मेहदी रचे हाथ आदि कुछ विशेषताएँ है। नारी चित्रो में पारदर्शक लाल चुनरी, पीली कचुकी, काले रजित लहँगे, ललाट पर जडाऊ लटकती बिन्दी; अलकृत झूमते, सजी हुई नीचे तक लटकती वेणी भी चित्रो मे देखने को मिलती है। भवन वातायन, दालान, झूमर्ता झालर, विशाल पर्दे आदि भी इन चित्रो मे कही-कही चित्रित किये गये है।

बूंदी मे वल्लभ-कुल का प्राधान्य था तभी तो यह स्वाभाविक है कि यहाँ के नरेशो ने कृष्ण लीला मे विशेष रुचि ली और उसी पुष्ट-मार्ग को अपनाया फलस्वरूप इस शैली मे राधा-कृष्ण के अनेको चित्र इतने उच्चकोटि के बने है कि जिनकी तुलना मे प्रान्तीय शैली के कम ही चित्र आते है। यदि कोई कला पारखी राजस्थानी सस्कृति का विकास देखना चाहता है तो उसे इसी शैली के चित्रो का अवलोकन करना होगा। बूंदी की धरती उन वीरो के गुण गाती है जो रसिक, और प्रेमी होते हुए वीर थे। जिन्हे मान प्यारा था और देशाभिमान के रक्षक थे उसी बूंदी को यदि राजस्थानी कला-कृतियों का केन्द्र कहा जाय तो न्याय ही होगा।

कोटा शैली

राजस्थान के इतिहास मे जहाँ हाडौती सस्कृति अपना निजी स्थान रखती है वहाँ उससे सम्बन्धित चित्रकला भी। इसी चित्रकला ने राजस्थानी चित्रशैली मे

एक नवीन शैली को जन्म दिया जो कि हाड़ोती शैली के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस शैली ने चित्रकला के क्षेत्र मे दो धाराएँ प्रवाहित की जिनमे से एक कोटा शैली और दूसरी बूंदी शैली के नाम से प्रसिद्ध है।

कोटा नगर बूंदी के अत्यन्त ही निकट है, सम्बन्ध मे भी भाई-भाई है। कोटा की स्थापना बूंदी की स्थापना के सवा दो सौ वर्षों पश्चात् माधोसिंह जी द्वारा हुई। निकट होने पर भी कोटा की शैली बूंदी से पृथक-सी लगती है इसका कारण है कल्पना का अभाव, भाव शून्यता, कम परिश्रम तथा हल्के रंग प्रयुक्त किये गये प्रतीत होते हैं। कोटा एक छोटी रियासत है परन्तु चित्रकला का प्रसार व प्रचार अत्यन्त हुआ है इसी से यह कला-केन्द्र कहा जा सकता है। नाथद्वारा की तरह कोटा भी पुष्टि मार्गी बल्लभ-सम्प्रदाय का एक देवस्थान है यहाँ श्री मथुराधीश का प्रसिद्ध मन्दिर है अत मन्दिर की प्रेरणा से ही यहाँ दर्शन-झाकी के चित्र सेवा के चित्र, रास विलास के चित्र तथा भक्ति प्रधान चित्रों का निर्माण हुआ। गोसाइयो के राजसी वैभव के चित्र भी इस शैली मे बने है। कथाओ के चित्र, दरबारी एव सवारी तथा शिकार के चित्र भी इस शैली मे स्थान पा सके है जिनमे भैंसे व सूअर का शिकार प्रसिद्ध है। कहीं-कहीं नरेश अपनी प्रेयसियों से वातायान मे वातों और प्रेम में लीन बताये गये हैं। कोटा के महाराजा छत्र साल (इतिहास प्रसिद्ध) कला के अनुरागी एवं संरक्षक थे। इनके पिता रामसिंहजी भी कला प्रेमी एव गुणग्राही थे जिन्होने दरबारी चित्रकार लक्ष्मीनारायण, गोविन्द, रघुनाथ आदि को प्रोत्साहन दिया और फलस्वरूप कई व्यक्ति-चित्र बने। इन्ही चित्रकारो ने कुछ अन्तःपुर चित्र बनाये हैं। कोटा के चित्रकारों ने राग-रागनियों के चित्र भी बनाये हैं जिनमें राग तोड़ी अत्यन्त ही प्रसिद्ध चित्र है।

कोटा के चितेरे भित्ति-चित्र रचना करने में भी अलौकिक थे। ऐसे कुछ भित्ति-चित्र कोटा नगर स्थित गढ में जालिमसिंह जी की हवेली के रणवासों की भित्तियों पर बने हैं जो विगत वैभव की याद दिलाते है। इन भित्ति-चित्रों मे कुछ प्रसिद्ध चित्र 'संगीत साधना,' 'राग तोडी,' स्नेहालिंगन,' 'बेटी की विदाई,' श्रृंगार वेला का प्रतिबिम्ब, और 'पैर का काटा निकालती हुई नायिका,' है। कोटा की चित्रकला का विकास सवत् 1800 से 1950 तक चला। इस 150 वर्षों के छोटे से समय में इस शैली मे जो भी प्रस्तुत किया गया वह साधारण होते हुए भी इतना सफल और पूर्ण है कि उसका उत्तर नहीं। कोटा शैली की मधुरता में नारी सौन्दर्य की अभूतपूर्व प्रधानता रही है। नारी की सुन्दरता, लावण्य और नख-शिख वर्णन जैसा रीतिकालीन कवियो ने किया है वैसा ही रेखाकन कोटा के चित्रकार सफलतापूर्वक अपने कौशल के साथ कर सके है। शैली में भी हाथियों का युद्ध, द्वारों के दोनो ओर सिंहाकृतियाँ, गायो का अंकन, ऊँट व घोडे और केले के वृक्ष आदि को स्थान मिले है। पुरुष आकृतिया बूंदी की तरह ही है मगर पुरुष नाटे कद के अंगरखा पहने है। नारी आकृतियो मे आखें बड़ी खंजनाकृति की, उभरा वक्ष, कटि, अत्यंत

क्षीण, वेणी नीचे तक लटकती अकड़ी-सी, अधर कुछ आगे को निकले होते हैं। कई नारी चित्र अगड़ाई लेते या वृक्ष की डाल का सहारा लेती हुई चित्रित की गई है। कहीं तो नारी पुतली-सी जान पड़ती है। जिस समय बूंदी शैली अपने ह्रास के कगार पर खड़ी अन्तिम सास ले रही थी उस समय कोटा शैली ने नवीन अगड़ाई ली और बूंदी से पृथक् पुतलियों का चित्रण किया जो नई दिशा की ओर इंगित करती है। यह प्रयास वास्तव में सराहनीय है। इस तरह जन-जन के चित्रों के अधिक प्रचार तथा निर्माण मे और इस नवीन प्रयोग मे कोटा राजस्थान शैली का एक कला केन्द्र माना जाता है।

इस शैली मे नीला लाजवर्दी, हरा, सुनहरा, लाल व काला रंग अधिक प्रयुक्त हुआ है। सोने का रंग अप्रिय लगता है, रेखाएँ मोटी है, इसी से चित्र बूंदी शैली के स्तर से कुछ निम्न कोटि के लगते हैं परन्तु शैली की मधुरता मे शक्ति सम्पन्न चित्रण का प्राधान्य है। परिश्रम की मात्रा कम होते हुए भी सारे ही चित्र नयनाभिराम हैं। इसलिए उपरोक्त विशेषताओ के कारण कई अशो मे बूंदी के चित्रों से कोटा आगे बढ गया है।

बीकानेर शैली

बीकानेर राजस्थान के उत्तर-पश्चिम मे बसा है। बालुकायुक्त वनस्पति के अभाव मे यहाँ की धरती पर इनी-गिनी कुछ झाड़ियाँ ही यत्र-तत्र दिखाई देती हैं। बीकानेर की स्थापना राव बीकाजी द्वारा आज से करीब साढे चार सौ वर्ष पूर्व हुई जो स्वय एक वीर थे। कालान्तर मे यहाँ के राजाओ ने भी मुगल राज्याश्रय प्राप्त किया और वीरता आदि के कारण इनका यथेष्ट सम्मान्त भी था। मुगल दरबार मे आवागमन व मेल-जोल से राजाओ को कला के प्रति अधिक जिज्ञासा जाग्रत हुई। मुगल शासको के पूर्व भी यहाँ के चित्रकार राजाओ की आज्ञा से चित्रकला करते थे और शबीहे बनाया करते थे। बीकानेर की शैली पर जोधपुर का व्यापक प्रभाव पाया जाता है और कई चित्र अनुकृतियो के रूप मे भी है। मुगल शैली के कई चित्रो की नकलें भी यहाँ बनी हैं परन्तु वे सभी कल्पना, कौशल और रग सामंजस्य मे निम्न कोटि की ही उतरती है। बीकानेरी चित्रकार अनुकृति करने के साथ अपनी विशिष्टता दर्शाना भूल गये थे फलत चित्रो मे प्राण मद गति से सचारित होता हुआ जान पड़ता है। बीकानेर की चित्र शैली मे अनुकृति के साथ मौलिक चित्र साधना के कई चित्र मिले हैं जो कई तो उस काल की कला का प्रतिनिधित्व करते है।

इस शैली के विषय-प्रमुख शिकार सम्बन्धी है। आखेट को अन्य लोगो के साथ प्रस्थान, रसिकप्रिया, रागमाला के चित्र, शृ गारिक आख्यानो के रूपक तथा कामसूत्र पर आधारित कई चित्रो का आलेखन तैयार किया है। मुगल शैली के चित्र का जो सग्रह यहा प्राप्त हुआ है उससे पता लगता है, कि शैली कितनी प्रौढ़ थी

बीकानेरी शैली में भी कई चित्रों का संग्रह है जिसके अवलोकन मात्र से ही कहा जा सकता है कि कार्य अत्यन्त परिमार्जित ढंग से हुआ था। जोधपुर के वंशजों से ही निकलकर एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित हुआ था फलस्वरूप जोधपुर कला की छाप इस शैली पर पूर्णतया लक्षित होती है। यदि यही कहा जाय कि बीकानेर के चित्र जोधपुर शैली के अन्तर्गत ही मान लिये जाएँ तो कथन कोई अनुचित नहीं होगा। बीकानेर में मुसलमान चितेरे भी कई थे अतः सभी चित्रों के चेहरों पर मुगल शैली का प्रभाव पूर्णतया लक्षित होता है। इन मुसलमान चित्रकारों ने जिन चित्रों का निर्माण किया था वे सभी राजस्थानी विषयों को ही लिये हुए हैं।

इस शैली की पुरुषाकृतियाँ जोधपुर शैली के समान लम्बे कद की बनी हैं। शिर पर शिखर समान पाग (खिड़कियापगडी) तुर्रे लगे और उस पाग पर शिरपेच तथा चेहरा भरा हुआ, मांसल गाल, गलमुच्छ गालों को ढके हुए, कानों में बालके, लम्बी बाहों वाला अंगरखा, विशाल वक्ष जिस पर मोतियों के कंठे, जामा नीचे तक आया हुआ होता है। कमर में कटार दुपट्टे के अन्दर रखी जाती थी। नारी आकृति में भी जोधपुर का प्रभाव है—नेत्र विशाल, लम्बी वेणी, बड़ी हिचकी, मांसल ग्रीवा, विशाल वक्ष, कसी हुई कंचुकी, नीचे तक लटकता हुआ घेरावदार लहगा आदि प्रमुख हैं।

इस शैली में रागमाला के चित्र सुन्दर हैं। जिनमें दीपक, मालकोष और माड प्रमुख हैं। चेहरों पर तो मुगल शैली का ही प्रभाव है। बादल गोलाकृति के बनाये जाते थे जिन पर चीनी चित्रों की शैली का प्रभाव दिखाई देता है। बादलों का रंग श्वेत ही हुआ है परन्तु पृष्ठ भूमि में गहरा नीलाभ रंग छाया रहता है। बीकानेरी शैली के चित्रों में साहित्यिक भावनाएँ भी हैं, ऐसे चित्र व्यक्तिगत संग्रहों में पाये जाते हैं। डॉ. कुमार स्वामी ने इस शैली पर अपने विचार व्यक्त किये हैं, "बीकानेरी शैली अपने व्यक्तित्व का बोध कराती है और दृष्टिकोण अत्यन्त मार्मिक है।" यह तो कहना ही पडेगा कि चित्र अधिक संख्या में न बने थे। मुसलमान चित्रकार अधिक थे। आज भी हिन्दू घराने नहीं के बराबर हैं जो चित्रकारी करते है। बीकानेरी शैली के चित्रों में परिश्रम अधिक हुआ है। रंगों में पीला व लाल रंग अधिक प्रयुक्त हुआ है। बादलों का चित्रण इस शैली में अच्छा हुआ है। छल्लेदार बादल, झालरों की तरह झूमते सफेद रंगों में ही बने हैं। नेत्र खंजनाकृति में ही बने हैं जो जोधपुर की तरह ही है। वृक्षों में आम के वृक्ष तथा पशुओं में घोड़ा, ऊँट व हरिण और पक्षी के कुरजाँ का बाहुल्य है। राजा रायसिंह, कर्णसिंह और कल्याणमल ऐसे नरेश हुए है जिन्होंने चित्रकला को थोड़ा प्रोत्साहन दिया। बीकानेर की शैली में बने चित्रों में मौलिकता तथा व्यक्तित्व का अभाव है परन्तु सुन्दरता की दृष्टि से वे एक विशिष्ट श्रेणी में आ जाते हैं।

जैसलमेर शैली

राजस्थान का पश्चिमी भाग जैसलमेर की पीत बालुकामय धरती से आवृत है। जैसलमेर की एक विशिष्ट ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्परा है जो जोधपुर से

अपना एक विशेप सम्बन्ध रखती है। कला के क्षेत्र में भी जैसलमेर जोधपुर से ही पूर्णतया प्रभावित हुआ क्योकि उत्तरी राजस्थान मे जोधपुर की ही शैली प्रधान रूप मे थी। व्यापकता की दृष्टि से जोधपुर शैली का पूर्ण एव आंशिक प्रभाव इस शैली मे भी रेखा लालित्य एवं कार्य दक्षता के रूप मे आया और वह भी उस कोटि का जो अन्य किसी भी शैली में न आ सका। जोधपुर के प्रभाव के साथ-साथ जैसलमेर का चित्रकार कागडा की चित्र शैली से भी पूर्णतया प्रभावित हुआ जान पड़ता है। कांगडा के समान यद्यपि इसमे न तो वैसी भावभगिमा है, न रेखाओं में वैसा लालित्य है और न रगो के मिश्रण की प्रचुरता, केवल ऊपरी टीपटाप करने से चित्र सुन्दर बन गये हैं। यहाँ की आकृतियाँ दीर्घ एव सुन्दर होने से चित्र मनमोहक हो गये हैं। दूसरी विशेपता जो इसकी दिखाई देती है वह है इसके भवन, वृक्ष, लताओं, पत्तो व फूलो के आलेखन।

जैसलमेर का चितेरा अनुकृति मे विश्वास नही करता। वह कल्पना प्रधान है और इसी कल्पना प्रधान मनोवृत्ति से वह कई रागनियो के चित्र प्रचलित धारणाओ से भिन्न राह लेकर चला है। मालकोष राग में यदि राजा का रूप आया है तो जैसलमेर मे एक शिकारी का और गुणकली रागिनी मे नायिका पुष्प छडी का रस-पान करते वाटिका मे घूम रही है तो जैसलमेरी शैली मे कपोत उडाती हुई बताई गई है। स्वच्छ रगो को प्रयुक्त करना इस शैली के चित्रकार का परम ध्येय है ताकि चित्र मे प्रभावोत्पादकता एव लालित्य आ जाय। स्वर्ण तथा रजत रगो की झलक भी इसीलिए लगाई जाती थी।

पुरुषाकृतियो का अकन कलाकार ने जोधपुर जैसा ही किया है। कद लम्बा, गोरा वर्ण, दाढी-मूछो का सौंदर्य, मुखमण्डल पर वीरत्व, सीना तना हुआ, शिर पर झुकी पगडी आदि बनाने का प्रयास किया है परन्तु अनुकरण नही। उसमे भी मौलिकता का ध्यान अवश्य रखा गया है। स्त्रियाँ दुर्बल मुँह वाली मगर नेत्र तीखे, सुन्दर और खिचे हुए होते हैं। कटि भाग क्षीण है तो बाहुद्वय दुर्बल और अंगुलियाँ पतली व लम्बी बनी हैं। प्राकृतिक अवयवो जैसे धरती, आकाश, पेड़-पौधे, पशु आदि को श्रम और सुन्दरता देकर बनाया गया है। जैसलमेर का कलाविद मुगल शैली के भावो से परिवेष्टित तो अवश्य था मगर कला पर प्रभाव न पड़ने दिया। उसने चित्रकला पर एक विचित्र प्रभाव डाला है। यद्यपि यह जोधपुर के निकट है फिर भी उसका व्यापक प्रभाव जैसलमेर की शैली पर नही पाया जाता। चित्र मे हाशिये का प्रयोग हुआ है, रेखायें लालित्यपूर्ण दर्शायी गई हैं जिससे कला मे अनोखापन आ गया है। इस शैली मे चित्रो की संख्या कम अवश्य है परन्तु जितने भी हैं वे उच्च श्रेणी मे रखे जा सकते हैं। कागजो को छोड़, पत्थरो व हाथी दाँत पर भी जैसलमेरी कलाकार ने नक्काशी का काम किया है। पत्थरो मे तराशी गई आलेखन युक्त जालियाँ वास्तव में आश्चर्य उत्पन्न करती हैं।

अलवर शैली

राजस्थानी शैली की यह कलापूर्ण प्रशाखा भारतीय चित्रकला के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अलवर शहर राजा प्रतापसिंह जी द्वारा बसाया गया था और उस संस्थापक के पश्चात् राजा विनयसिंह जी ने तो कला के क्षेत्र में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन खड़ा किया जो भारतीय कला का एक स्वर्ण पृष्ठ माना जायेगा। जयपुर और अलवर की शैली में कोई विशेष अन्तर नही है। इसका कारण है निकटता। दोनों नगरों में कार्य साधना की होड़ थी। फलस्वरूप राजस्थानी शैली का कला-भंडार समृद्धिशाली बन गया। दोनों की शैलियां एक ही दिशा में चली हैं उनमे भेद निकालना एक बार तो असम्भव सा ही लगता है। अलवर के आस-पास कई ग्राम हैं जिनमें चित्रकारों के वंशज हैं। तिजारा ग्राम के कलाकार बहुत प्रसिद्ध हुए, जिन्होने राजमहलों में अनेक भित्ति-चित्रों का निर्माण किया और जो आज भी विगत वैभव की यादों को तरोताजा करते हैं। अलवर शैली के चित्रो मे गणिकाओं के चित्रों की बहुत प्रधानता है। उस समय गणिकाओं का दरबार में रखना एक प्रथा थी फलतः सुन्दर गणिकाओं के चित्रों का इस शैली में प्राधान्य रहा है। इस शैली के चित्रकारों में सालिगराम व डालचन्द अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। कई साधुओं के चित्र और जनसाधारण के कई ग्रामीणों के चित्र इस शैली मे बने हैं। अलवर के चित्रों में जयपुर शैली की समानता है। नारी एवं पुरुष आकृतियों में कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता, भिन्नता यही है कि ये चित्र परिश्रम से अधिक बने हैं जिनमें चटकीले रंगो का स्वर्ण रंगत और हाशियो का अंकन अधिक हुआ है। बेल-बूटों का प्रयोग भी हाशियो में किया जाता था। अलवरी कलाविद बसलियों के चित्रण में प्रवीण थे जो आज से बीस-तीस वर्षों के पहले तक होता रहा था। वसली बनाने की कला से वे इतने प्रवीण थे कि आज भी उनके कई वंश बन गये हैं। हाथी दांत की पटरियों पर भी सुन्दर रचनायें की जाती थी जिनमें राजा-रानी या सुन्दरियो की मुखाकृतियां मुख्य थी। इस शैली में प्रयुक्त रगों में सोने का रंग ज्यादा सुन्दर होता है तथा रंग चिकने और उज्जवल होते हैं। इस शैली में रेखायें प्रभावयुक्त हैं तथा नीले, हरे, पीले व लाल रगो का प्रयोग हुआ है। खेद यही है कि अलवर शैली के चित्र प्रकाश में नही आये अन्यथा वह गुप्त भंडार किसी दिन राजस्थानी शैली की कला डोर अपने हाथो मे लेकर अग्रगण्य स्थान धारण कर लेती।

राजस्थानी शैली की विशेषतायें

"राजस्थानी शैली शुद्ध भारतीय है—ईरानी और मुगल शैली का इस पर कोई प्रभाव नहीं।" ऐसा मत श्री लारेन्स विनियन ने स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। राजस्थानी शैली की विशेषताऐं हैं जो सक्षिप्त रूप में निम्न है—

(1) यह विशुद्ध भारतीय शैली है और भारतीयता की छाप इसके प्रत्येक चित्र मे लक्षित होती है जिसका विकास मध्यकालीन पोथी चित्रण व लोक कला से हुआ।

(2) इस शैली के चित्र धर्मप्रधान हैं धार्मिक भावनाओं से अनुप्राणित होने से इस शैली के चित्र जन-मानस के थे । श्री कृष्ण सदा से भारतीय लोगों के पूज्य देव रहे हैं, इसी से कृष्ण के लीला सम्बन्धी चित्रों का बाहुल्य है । अतः चित्रों में अत्यन्त रस, भक्ति तथा प्राण हैं इसी से चित्र सुन्दर तथा मनोहर हैं । कृष्ण साहित्य बिहारी, सतसई, रसिक प्रिया, गीत-गोविन्द-सूर सागर, पौराणिक ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, भागवत आदि का सचित्र चित्रण हुआ है । रागमाला और बारहमासा के जैसे सुन्दर चित्र इस शैली मे बने हैं वैसे शायद ही किसी अन्य शैली में चित्रित किये गये होंगे । घरेलू धन्धों सम्बन्धी चित्र इस शैली में अत्यन्त ही अनोखे हैं । ऐसा ज्ञात होता है कि चित्रकार अपने आसपास के वातावरण के घरेलू धन्धो से पूर्णतया परिचित था तभी उनमे इतनी स्वाभाविकता एवं यथार्थता है । प्राकृतिक वस्तुओं का अकन और चित्रण पशु-पक्षी अत्यन्त ही सजीव हैं । पेड़-पौधे, पहाड, बादल, ग्राम का चित्रण अलकारिक बनाया गया है ।

(3) इस शैली के चित्रो का विषय सयोजन अजन्ता के समान अत्यन्त सशक्त, पुष्ट और जानदार है । जिनमे मानवाकृतिया मूलतः कृष्ण-राधा को अजन्ता के बुद्ध की तरह ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है व अन्यो को उनके स्तर के अनुसार बनाया है ।

(4) रग योजना बेजोड़ और चातुर्यपूर्ण है । रंग अधिक चमकदार हैं । भी वस्त्रो का रग इतना हल्का है कि शरीर के अग-प्रत्यग स्पष्ट दिखाई देते हैं । रंगो का मेल वास्तव मे अत्यन्त ही सुन्दर है । रग हाथ से घोटकर बडी मेहनत से स्वयं कलाकार द्वारा विविध विधियो से प्राप्त किये जाते थे । मुगल प्रभाव से स्वर्ण व चान्दी का प्रयोग भी हुआ है लघु चित्रो में रग खनीज, वानस्पतिक अथवा रसायन से तैयार किये गये हैं ।

(5) रेखाओ की बारीकी सराहनीय है । आश्चर्य होता है कि तूलिकाओ द्वारा बालो के समान महीन रेखाएँ किस तरह चित्रित की गई हैं जिस पर दास कहा जाता है जिसे अगो के उभार के लिए बनाया गया है ।

(6) नायिकाओ के आभूषण, अग-प्रत्यग, नासिका और नेत्रो के अकन अत्यन्त ही कलापूर्ण हुए हैं । एक चश्म चेहरो का प्रचलन राजस्थानी शैली ने ही किया । उनके अग चित्रण तरलता और मधुरता प्रदान करते हैं ।

(7) काव्य ग्रन्थो के नायिका भेद आदि के चित्र राजस्थानी मे बहुत ही सुन्दर बने हैं ।

(8) राजस्थान मे व्यक्ति चित्रण परम्परा मे व्यक्ति का व्यक्तित्व को उभारा गया है ।

अपभ्रंश शैली एवं राजस्थानी शैली के चित्रों का मूल्यांकन

अध्याय के प्रारम्भ में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि राजस्थानी शैली अपभ्रंश का ही कुछ सुधरा और निखरा रूप है । समय के साथ-साथ शैली बदली,

टैकनीक बदली, परन्तु मूलभूत बातों में कोई विशेष अन्तर नही आया। उनके विवाद मे समानता है। रागमाला, ऋतु और श्रृङ्गार सम्बन्धी तथा कृष्ण-लीला के चित्र दोनों शैलियों मे मिलते हैं, परन्तु अपभ्रंश शैली में गौण होकर उभरे हैं। इसमे ग्रन्थचित्र हैं और इकहरे कागज पर बनाये गये हैं। जबकि राजस्थानी शैली के चित्र छिन्न-भिन्न हैं और वसलियों पर जमाये गये हैं। सवाचश्म के चेहरों को यदि अपभ्रंश मे स्थान मिला है तो एक चश्म के चेहरे राजस्थानी शैली में ही उतर सके हैं। केवल कुछ ही रग जैसे लाल-पीला आदि सुलिपि मे प्रयुक्त हुए हैं परन्तु राजस्थानी शैली मे कई तरह के चमकीले रंगो का प्रयोग हुआ है। अपभ्रंश शैली के चित्र रूढ़िगत हैं, परन्तु राजस्थानी शैली के चित्र स्वाभाविकता और यथार्थता से ओतप्रोत हैं। सुलिपि मे व्यक्ति-चित्रों की कमी है और जैन चित्रो को यथेष्ट स्थान मिला है, परन्तु राजस्थानी शैली मे व्यक्ति-चित्रो की भरमार है और उसमे काफी प्रसिद्धि प्राप्त की है। यद्यपि इन चित्रो मे बारीकी से कार्य हुआ है परन्तु मुगल शैली के समान व्यक्ति चित्र न बन सके। इसमे जैन शैली के चित्रो का अभाव है, जबकि सुलिपि मे जैन-शैली के चित्रों का अच्छा जमघट है।

इतना अवश्य कहा जायेगा कि सुलिपि शैली मे जो कमियाँ रह गई है उसे राजस्थानी शैली ने पूरा किया है। स्वाभाविकता और यथार्थता पूर्ण चित्र बनने लगे और राजस्थानी शैली भारत की अत्यन्त प्रख्यात और जन-जन की प्रिय शैली बन कर रह गई। राजस्थानी शैली से भी कई अन्य शैलियों का जन्म हुआ जिनका वर्णन आगे किया जायेगा। दरबारी शैली ईरानी तथा मुगल ने राजस्थानी शैली से बहुत कुछ लिया और वे इतनी विख्यात हो गईं।

राजस्थानी एवं बौद्ध शैली का तुलनात्मक दृष्टिकोण

तुलनात्मक दृष्टिकोण से यदि देखा जाये तो यही स्पष्टतया दृष्टिगोचर होगा कि बौद्ध शैली का पूर्ण प्रभाव राजस्थानी पर पड़ा है, परन्तु बौद्ध शैली के समान भावनाओं का दिग्दर्शन नही हुआ। बौद्ध शैली मे महात्मा बुद्ध का स्थान है तो राजस्थान मे राम और कृष्ण का। दोनों शैलियो ने धम को उच्च स्थान दिया और इसी से दोनो अत्यन्त प्रसिद्ध हुईं। बौद्ध शैली के चित्रकार बुद्ध के अनुयायी थे। उनके जन्म-जन्मान्तरो की कथाओं का सभी चित्रो मे आश्रय है। बौद्ध धर्म का भारत और अन्य देशो मे जितना प्रचार हुआ उसका मूल कारण ये चित्रकार ही थे, जिन्होंने चित्रकला के माध्यम से देश मे धर्म की ज्योति प्रज्वलित की। वैसे ही राजस्थानी चित्रकारो ने चित्रकला का अवलम्बन लेकर देश मे भक्ति की धारा पुनः प्रवाहित की।

देवो के साथ दोनो ही शैलियों मे जीव-जन्तुओ के चित्र भी मिलते है परन्तु बौद्ध शैली के जानवर सरलता लिये हैं और उनके भाव भी अत्यन्त स्वाभाविक

दिखाई देते हैं। दोनो शैलियो के रग प्रभावशाली हैं, रंग योजना बेजोड़ है, उनमें काफी चमक है, परन्तु राजस्थानी शैली के चित्रो मे बौद्ध शैली के समान सुन्दरता नही आई। बौद्ध शैली की रग योजना सुन्दर है, उनमे मेल खाते रंगो का अच्छा जमाव है तथा वास्तविकता प्रकट करते है। दोनो शैलियो मे रेखाओ की गति मे प्रवाह है परन्तु राजस्थानी शैली की रेखाएँ अटूट हैं तथा सजीवता टपकती है। लेडी हैरिंघम ने जब अजन्ता चित्रो की नकलें उतारने का कार्य आरम्भ किया उस समय चित्रो की रेखाओ की अटूटता देखकर बहुत आश्चर्य किया।

भावो का प्राधान्य दोनो शैलियो मे पाया जाता है, परन्तु बौद्ध शैली के चित्र शान्त भावो से परिपूर्ण है जहाँ कि राजस्थानी चित्र माधुर्य से ओत-प्रोत। रंग विधान मे राजस्थानी शैली बौद्ध शैली से आगे अवश्य है, क्योकि उसमे मुगलकालीन चमक दमक है जहाँ बौद्धकालीन चित्र सादगी, सौम्यता और सरलता लिये हैं। टैकनिक मे थोडा अन्तर अवश्य है परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से परे है। दृश्य संयोजन काल्पनिक है जिसे दोनो शैलियो ने अपनाया है। बौद्ध शैली के चित्र जहाँ गुफाओ की विस्तृत भित्तियो पर बने तो राजस्थानी शैली की चित्रावली मन्दिरो की छोटी दीवारो पर और कागजो पर, लेकिन टैकनिक मे एकरूपता है। राजस्थानी शैली के कई चित्र ऐसे भी हैं जो बौद्ध शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं।

---

9 मुगल शैली

भारतीय राजनीति मे मुगलो का आगमन क्रान्तिकारी हुआ, परन्तु उनके सम्पर्क से कला के क्षेत्र मे उससे कहीं बढ़कर क्रान्ति हुई। अत्यन्त प्राचीनकाल के अजन्ता आदि के चित्रों को छोड़कर पिछले काल के चित्रों में इतनी सुकुमारता और इतनी सफाई कभी नही आई। मुगल बादशाह कला के सरक्षक थे और उनके संरक्षण से वास्तुकला के साथ अन्य कलाओ मे भी अद्भुत प्रगति हुई। राजस्थानी शैली का पतनकाल 1750 ईसवी माना जाता है। चित्रकला के विद्वानो का मत है कि मुगल शैली की उन्नति का मुख्य कारण राजस्थानी शैली का पतन है। मुगल शैली भारत मे बहुत समय तक रही। इसकी प्रगति राज दरबारों में हुई। जैसे-जैसे भारत में मुगल राज्य उन्नति करता गया उसके साथ-साथ चित्रकला में मुगल शैली को प्रोत्साहन मिला। इसका पतन भी मुगल साम्राज्य के साथ ही हुआ।

ईरान काबुल तथा कन्धार होता हुआ बाबर भारत आया और एक ही लड़ाई जीत कर उसने सन् 1526 में मुगल राज्य की स्थापना की। उसने पानीपत के मैदान मे इब्राहिम लोदी को परास्त किया और दिल्ली तथा आगरे का स्वामी बन गया। इस तरह मुगल राज्य की नीव बाबर के सुदृढ़ हाथो द्वारा पड़ी। बाबर भारत में अकेला ही नही आया था, परन्तु उसके साथ कई विद्वान, कवि तथा चित्रकार भी थे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि वह स्वय एक अच्छा लेखक तथा चित्रकार था। उसने कई चित्र भी बनाये जिनकी तुलना 'जावेद' नामक मशहूर चित्रकार से कर सकते हैं।

मुगलो का उद्गम स्थान फारस कहा जाता है जहाँ ईरानी शैली का ही एक-छत्र राज्य था। ईरान में चित्रकला उस समय उच्च शिखर पर थी जहाँ कई प्रमुख कलाकार ईरानी शैली में चित्र रचना करते थे। ईरानी शैली का सर्व-प्रसिद्ध चित्रकार 'बिहजाद' भी बाबर के साथ भारत आया था जिसने कई सुन्दर चित्रों की रचना की तथा बाबर ने उसके द्वारा चित्रित चित्रों की बड़ी सुन्दर समालोचना की है। भारत में आने के बाद भी मुगल बादशाहो का सम्बन्ध ईरानी चित्रकला से बना रहा। कुछ समय तक ईरानी कला भारत मे प्रचलित रही। ईरानी चित्रकार भारत

के कठोर शासन में चित्रकला की भव्य इमारत ढह गई। सारी सुन्दरता और सुकुमारता छटपटाने लग गई। औरंगजेब एक कट्टर मुसलमान था जिसकी अभिरुचि ललित कलाओं की ओर न थी। राग-रंग, आमोद-प्रमोद तथा विलासिता आदि उसके धार्मिक मन को न डिगा सके। इसी कारण से भारतीय ललित कलाएँ उसके क्रूर शासन में धराशायी और निष्प्राण हो गई थी। इस तरह मुगल चित्रकला ने 250 वर्षों में विकास, उत्थान और पतन तीनो अवस्थाओं को देख लिया और अन्त में अंग्रेजी शासन का श्रीगणेश होते-होते छिन्न-विच्छिन्न हो गई।

अनेक कलाविशारदों ने फारस, समरकन्द और हिरात को मुगल शैली का पैतृक गृह माना है। अतः अगर मुगल शैली को नई वेशभूषा में नया रूप कहें तो कोई आश्चर्य नही। ईरानी कला उस समय वैभव के उच्च शिखर पर थी और 'बिहिजाद' आदि चित्रकार ईरानी शैली में अत्यन्त ख्याति प्राप्त कर चुके थे। मुगल शैली के प्रथम सोपान में विदेशी छाप (ईरानी शैली की) रही परन्तु ज्यों-ज्यों उस पर भारतीय प्रभाव हुआ, शैली मे एक नवीनता आ गयी।

अकबर के राज्यकाल मे ईरानी और भारतीय दोनों ही चित्रकारों ने परस्पर मेल और समन्वय स्थापित किया और वे कन्धे से कन्धा मिलाकर प्रगति पथ पर बढ़े। ईरानी चित्रकारों मे प्रमुख 'अब्दुस्समद शिराजी', 'मीर सैय्यद अली' और 'फर्रुखकालमुख' थे तो दूसरी ओर जसवन्त और बसावन जैसे प्रतिभासम्पन्न भारतीय हिन्दू चित्रकार थे। हिन्दू और ईरानी चित्रकारो के सहयोग का पता 'आइने-अकबरी' से मिलता है। प्रारम्भ मे फारसी भाषा के प्रसिद्ध कवि 'निजामी' की पुस्तक के चित्र बनाने का कार्यभार हिन्दू चित्रकार को ही सौंपा गया था। अकबर गुणग्राही, उदार और कलापारखी भी था, जिसके आश्रय मे दोनों ही शैलियो के कलाकारो को संरक्षण मिला तथा उनके मेल से दोनो शैलियो मे पर्याप्त आदान-प्रदान हुआ। इस आदान-प्रदान के फलस्वरूप दोनो के सुन्दर मिलन से एक ऐसी भारतीय शैली का जन्म हुआ जो अंकन व रंगचित्रण की दृष्टि से अभिनव थी तथा जिसे इतिहास मे मुगल शैली कहते हैं। ईरानी और भारतीयता का आदान-प्रदान तथा सामंजस्य व सम्मिश्रण केवल चित्रकला के क्षेत्र तक ही सीमित नही था, परन्तु स्थापत्य, संगीत, रीति-रिवाज, वेशभूषा और सामाजिक जीवन पर भी इस सामजस्य की छाप विशिष्ट रूप से पड़ी दिखायी देती है। दोनों शैलियो के मिलन से नई शैली का जन्म हुआ और उत्तरोत्तर विकास भी, परन्तु वह जनता तक नहीं पहुँच सकी। राज्य के कुछ दरबारियों के हाथों मे ही यह शैली अठखेलियाँ करती रही। जनता के घर-घर की वस्तु न होकर विलासितापूर्ण दरबारो की ऊँची-ऊँची दीवारो मे कैद रही। यदि यह कहा जाय कि 'मुगल शैली का जन्म दरबार मे हुआ और मृत्यु भी दरबार में' तो निर्मूल नही। इतना अवश्य हुआ कि मृत्यु शैय्या पर पड़ने के पहले जन-साधारण तक इसकी पहुँच होने लग गयी थी। परन्तु यह जनता की वस्तु न होकर दरबारियों

का ही मन-बहलाव कर सकी। इस शैली के मानवीय चित्र जनता के हाथों लग गये परन्तु इन चित्रों के विषय दरबारी जीवन से लिप्त थे। दरबारी जीवन, शहंशाहों के रहन-सहन और उनके आमोद-प्रमोद इत्यादि सुन्दर ढंग से चित्रित किये गये हैं। दरबारी रत्नों को भी चित्रबद्ध किया गया जो अत्यन्त सुन्दर है।

अकबर मुगल शैली का महान संरक्षक माना जाता है। उसने चित्रकला विकास के लिए अनुकूल वातावरण पैदा किया एवं उसके द्वारा दिये गये उत्साह से इस शैली में अभूतपूर्व उन्नति हुयी। गुजरात, राजपूताना तथा भारत के प्रायः सभी प्रान्तों के चित्रकारों को उसने संस्कृत और फारसी की पाण्डुलिपियाँ चित्रित करने के लिए आमन्त्रित किया। अनेक पाण्डुलिपियाँ इन चित्रकारों की मेधा से चमत्कृत हो उठी। तैमूर वंश के इतिहास का चित्रण इन्हीं चित्रकारों ने किया। उसकी मूल पाण्डुलिपि बाकीपुर के खुदाऊबक्स संग्रहालय में सुरक्षित है। अकबर की महाभारत की अपनी पाण्डुलिपि 'रज्मानामा' के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमे 169 चित्रों का संग्रह है जो जयपुर में संग्रहीत है। प्रेम कहानियों का चित्रण करने वाला 'हम्जानामा' है जिसके लिए अकबर ने कपड़े पर 1375 चित्र बनवाये। इसी प्रकार रामायण, अकबरनामा, यारेदानिश आदि की पाण्डुलिपियाँ अनेक चित्रकारों के अथक परिश्रम एवं सम्मिलित योगदान से चित्रित हुयी हैं। मुगल कला चोटी की कला है जिसमें राजस्थानी और ईरानी चित्रण कला के सुन्दरतम अवशेष एकत्रित हैं। दोनों का सहयोग अद्‌भुत बन पड़ा है। यह भारतीय और ईरानी कला का मधुर-मधु मेल मुगलों की भारत को देन है। मुगलों ने इस देश को अपना समझा और अपनी संरक्षकता और प्रोत्साहन से उन्होंने सुन्दर कलाकृतियों से भरा पूरा। आईने-अकबरी में लगभग 40 चित्रकारों का उल्लेख मिलता है जिससे यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि चित्रकला का काफी सम्मान था और चित्रकारों की माँग भी थी तथा चित्र भी अधिक संख्या में निर्मित हो रहे थे परन्तु राज्याश्रय मिलने पर भी मुगल शैली कभी अजन्ता के विस्तृत पैमाने और वैभव को न पहुँच सकी।

अकबरकालीन चित्र शैली

अकबर एक उदार शासक था, जिसके शासनकाल में 'इस शैली में स्पष्ट परिवर्तन लक्षित हुआ। वास्तविक मुगल शैली का रूप हमें भारतीय राजस्थानी चित्रशैली तथा ईरानी शैली के सुन्दर मेल से ही मिलता है। इस शैली में विदेशी ईरानी शैली की यथार्थता और स्वाभाविकता अधिक मात्रा में है परन्तु आलंकारिक रूढ़िबद्ध चित्रण कम मिलता है। यह शैली धीरे-धीरे स्वतन्त्र होती गयी, परन्तु पैतृक शैली के चिह्न कहीं-कहीं सहज ही में दृष्टिगोचर हो जाते हैं। इस शैली में अपना निजी अस्तित्व है, निजी विशेषताएँ हैं एवं निजी कार्यपटुता है। भारतीयता का सच्चा रूप और सच्चा वातावरण इस शैली में स्पष्ट झाकता प्रतीत होता है'। शैली का आधार भारतीय नहीं फिर भी भारतीय जनता की भावना औकी अभिव्यक्ति

अवश्य प्रतीत होती है। यद्यपि जनता का हृदय और जनता का जीवन इस शैली के चित्रांकन मे स्थान नही पा सके फिर भी रेखांकन, रंग समायोजन तथा वातावरण भारतीय चित्रण और ईरानी कलम से भिन्न जान पड़ता है।

चित्रशैली की विशेषताएँ

अकबरकालीन चित्र शैली में उसकी कई विशेषताएँ थी, जिनमें भारतीयता एवं ईरानी कलम की मिली-जुली छाप दिखाई देती है। इस शैली में छाया-प्रकाश के सिद्धान्तो का प्रयोग हुआ है तथा उन आकृतियों मे गोलाई आ गयी है। दृष्टि परम्परा का व्यवहार दिखायी पड़ता है जो भारतीय है। इस शैली के कुछ चित्रो में स्थितिजनित लघुता (सामने से देखने पर लम्बाई के कम हो जाने के (Forshortening) सिद्धान्त का भी प्रयोग हुआ है अथवा यह कहा जाय कि प्राकृतिक वस्तुओं के चित्रण में दूरी के नियमो का पालन हुआ है तथा सही अनुपात की झलक दिखाई पड़ती है। प्राकृतिक चित्रण में इस शैली ने अनूठा दृश्य उपस्थित किया है। पेड़-पौधे सारे भारतीयता लिये हैं, जिनमे नीम, आम, केला और वट मुख्य हैं। जल, थल, काश, पर्वत, वृक्ष, लताएँ और पशु-पक्षियो के चित्रण मे भी भिन्नता दिखायी देती। इन वस्तुओ को आलंकारिक आलेखनो मे प्रस्तुत न करके प्राकृतिक चित्रण भाविक अवस्था मे ही चित्रित किया गया है। पृष्ठभूमि का वातावरण विषय और ली दोनो से भारतीय दिखायी देता है। धरातल के निर्माण मे सजावट का कार्य है न्तु वह गौण ही है। मानव आकृतियों के चित्रण में जीवन तथा स्फूर्ति है और नके वस्त्र तथा आभूषण ईरानी शैली से भिन्न हैं। मानव आकृतियों में एक चश्म-हरों की बहुतायत है। वेशभूषा मे शिकन और फहराव अधिक है जो ईरानी शैली प्रतीत नही होते। अकबरकालीन चित्र अधिकतर सूती वस्त्रो पर अधिक संख्या में चित्रित हुए हैं जो 2 फीट लम्बे और लगभग 2 फीट चौड़े दिखायी देते हैं। 'हम्जानामा' जो बादशाह की प्रिय कहानियो का संग्रह है, इसमे कपड़ो पर बने 1675 चित्र हैं। इन चित्रो में अब केवल 100 चित्र ही बच रहे है और भारत मे तो 4 ही रह गये हैं। ऐसा ही एक चित्र कलकत्ता के म्यूजियम में है, जिसमें युद्ध का दृश्य है। इस चित्र मे जीवन भारतीय था। रेखांकन, वस्त्रांकन तथा संयोजन भारतीय है परन्तु आलंकारिकता, सजीवता और स्वाभाविकता तो ईरानी शैली का ज्ञान कराती है। इसका तात्पर्य यही है कि अकबर की उदार नीति और सुन्दर समन्वय से यह बड़े सुन्दर रूप में प्रकट हुयी। चित्रो का विलय चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, शैली की एकता सर्वत्र बनी हुयी है। इन सभी चित्रो से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि अकबरकालीन चित्र अनेक चित्रकारो के योग से बने थे, जिनमें कार्य भिन्न-भिन्न व्यक्तियो द्वारा चित्रित किया हुआ प्रतीत होता है। जो भी हो अकबरकालीन चित्रों की विशेषताएँ भारतीय चित्रकला मे उत्कृष्ट हैं।

अर्थात् प्रकृति के नाना रूपों का चित्रण जहाँगीरकालीन मुगल शैली की अपनी विशेषतायें हैं। इन स्वाभाविकता की छाप उसके समय के ग्रामेट और युद्ध सम्बन्धी उन चित्रों पर भी पड़ी है जिनमें पशुओं का अंकन हुआ है। सम्राट ग्रामेट-प्रेमी था और इसी के कई चित्र शेर के शिकार के हैं जिनमे जीवन गति और शक्ति है। उन भावपूर्ण चित्रों में आलंकारिकता है और जड़ता लेशमात्र भी दिखाई नही देती।

जहाँगीरकालीन चित्रों के चारों ओर बोर्डर डिजायन, फूलो, पत्तों एवं कलियों द्वारा बने हैं। कही-कही तितलियों, चिड़ियों और दूसरे पशु-पक्षियो का समावेश भी मिलता है। परन्तु सभी वस्तुओं का पूर्ण सामंजस्य फूलों, पत्तों, बेल-बूटों आदि का मुख्य चित्र से है। इन हाशियों का चित्रण अलग और अस्वाभाविक नही दिखाई देता। इस प्रकार के कार्य का प्रचलन पहले भी था परन्तु जितनी सुन्दरता, उत्कृष्टता और अद्भुत अंकन जहाँगीरकालीन चित्रों में है वैसा अन्यत्र नही पाया जाता। कही-कही तो इन हाशियो (बोर्डर्स) मे बहुत ही बारीकी से काम हुआ है। कही-कही इन बेल-बूटो मे सुनहरा कार्य भी हुआ है जो मूल चित्रकार से अच्छा प्रतीत होता है।

इसी तरह जहाँगीरकालीन चित्र अकबरकालीन चित्रों से बहुत आगे बढ़ गये हैं। उनमें प्रकृति-चित्रण के साथ ही साथ दरबारी चित्रण भी हुआ है परन्तु उनमें अदब, शान-शौकत और गम्भीरता होने से चित्र स्वाभाविक नही दिखाई देते। संयोजन जड़ता से परिपूर्ण दिखते हैं, तूलिका एक अबाध रूप से नही चली दिखाई देती और गति में एक विशेष प्रकार की रुकावट जान पड़ती है। जो भी हो जहाँगीर-कालीन चित्र अकबर-कालीन चित्रो से सुन्दर, सजीव और स्वाभाविकता हैं। इससे पता चलता है कि मुगल शैली जहाँगीर के समय मे पूर्ण परिपक्व होकर उन्नत दिशा में पहुंच गई थी।

शाहजहांकालीन चित्रशैली और उसकी विशेषताएं

शाहजहाँ सुरुचिसम्पन्न, ऐश्वर्यशाली एवं विलासप्रेमी सम्राट था। चित्रकला की जो धारा उसके पिता और पितामह के राज्यकाल में प्रवाहवान हुई, वही धारा क्षीण होती गई और कालान्तर में शुष्क होने लगी। सम्राट स्वयं चित्रकला मे कम रुचि रखता था और उसका स्थान वास्तुकला ने ले लिया था। इतिहास में शाहजहाँ का नाम वास्तुकला की सुन्दरतम कृतियो से ही सम्बन्धित है। यद्यपि उसे चित्रकला से इतना प्रेम न था और उस काल को उससे प्रोत्साहन भी न मिला फिर भी चित्रकारों को विशेष क्षति नहीं हुई और वे पूर्ववत् अपने अभिराम चित्र बनाते रहे। उसके राज्यकाल (1627–59) में दरबारी अदब बढ चला था। मुगल वैभव और विलास मे सीमित रह गये थे। रेखांकन बारीक से बारीक होने लगा, नये-नये प्रयोग कार्यान्वित हुए तथा चटकीले रंगो का प्रयोग हुआ। इन शैली के चित्रों में संयोजन और रंग योजना में चटक-मटक और विलास अधिक मात्रा में दिखाई देता है।

शरीर अंकन मे सुन्दरता है, अंग, प्रत्यगो मे सौष्ठव है परन्तु स्वाभाविकता मूक और निर्जीव लगती है । शैली मे टैक्निक की दृष्टि से क्षीणता दिखाई देती है तथा चित्रो मे भाव और जीवन की कमी खटकती है । ऐसा लगता है कि चित्रकार की तूलिका से वह शक्ति लुप्त हो गई जिससे चित्र स्वय बोल उठता है । दरबारी अदब और कायदे-कानून से स्वाभाविकता की देह पर कृत्रिमता और जड़ता का पर्दा डाला हुआ प्रतीत होता है ।

राज-दरबार, यात्रा, दूतों द्वारा सम्राट के लिए उपहार, दरबारी नृत्य, धार्मिक मेले, तथा प्रधान व्यक्तियो की आकृतियाँ उस समय सफलतापूर्वक आंकी गईं । अमीरो और सतो के विशेष चित्र तो इसी काल में बने । शैली मे चमत्कार अवश्य पाया जाता है परन्तु सर्वत्र रूखापन दिखाई देता है । इसका कारण सम्भवत दरबारी अदब की गम्भीरता और सम्राट की वास्तुकला मे रुचि थी । शाहजहाँ के काल मे चित्रकला स्वर्ण पिजरे मे बन्दी बनकर छटपटाने लगी और इसी से उसमें ह्रास के चिह्न दिखाई देने लग गये । इसमे सदेह नही कि शाहजहाँकालीन चित्रो मे जहाँगीरकालीन चित्रो की तरलता कुछ कुंठित हो गई है फिर भी उनमे प्रतिभा या सौन्दर्य की कमी नही ।

मुगल शैली का पतन

अपनी कूटनीति से औरगजेब हिन्दुस्तान का शहंशाह बन बैठा । उसका राज्यकाल 1659 से 1705 ईसवी तक माना जाता है । औरगजेब के राज्यारोहण के समय से मुगल शैली का ह्रास आरम्भ हो गया । वह एक धार्मिक पुरुष था और उसे कला से प्रेम न था । इसी से चित्रकला को विशेष क्षति पहुँची और राज्य तथा दरबारी चित्रकार राजकीय संरक्षण से वंचित कर दिये गये । वे अपने जीविकोपार्जन के लिए बाजारू चित्र बनाने लगे और उन्होने स्थानीय दरबारों मे जाकर शरण लेनी प्रारम्भ कर दी । यद्यपि कुछ चित्रकार अच्छे चित्र निर्माण करने में लगे रहे किन्तु उनकी अधिक कृतियाँ भी अतीत की छाया के समान ही रह गईं । उनके चित्रों के विषय अधिकतर दरबारी दृश्य, शाहजादो का सुरापान, नर्तकियो के साथ आमोद प्रमोद तथा स्नानक्रीडा आदि अधिक थे । कई चित्रो में संगीत और सुन्दरियाँ प्रमुख उद्दीपन विषय बन पड़े हैं ऐसे चित्रो को देखकर कोई भी कलाकार मर्माहत हुए बिना नही रह सकता । इसके अतिरिक्त प्रेम-कथाओ से सम्बन्धित भी कुछ चित्र मिलते हैं, जो कुछ ईरानी और कुछ भारतीय शैली मे निर्मित हुए है । जनता के कलाकारों ने भी कुछ समय चित्र रचना की जिनसे मुगल शैली का ही पता चलता था । परन्तु जो चित्र सम्राट औरगजेब के प्राप्त हुए हैं उनसे ज्ञात होता है कि मानव चित्रो मे कोई विशेष दोष उत्पन्न नही हुए थे ।

औरगजेब के पश्चात् उसके कई उतराधिकारी आलमगीर सानी, शाह आलम आदि दिल्ली के सिंहासन पर आये परन्तु नादिरशाह, मराठो और रुहेलो के आक्रमणों

से खजाना लुट चुका था और रहे-सहे चित्रकारों ने अपनी तूलिकाओं को समेट कर दिल्ली छोड़ी। कई चित्रकार दिल्ली में पहुंच गये और उनकी शैली "दिल्ली कलम" के नाम से प्रसिद्ध हुई। मुगल शैली की शाखाएं भारत के अन्य दरबारों में भी लगीं और पनपी। जब औरंगजेब ने अहमदनगर और बीजापुर राज्यों को जीत लिया तो दिल्ली के चित्रकार इन राज्यों में जा बसे और वहां उन्होंने एक नवीन शैली को जन्म दिया। गोलकुण्डा और बीजापुर के दरबारों में सत्रहवीं शताब्दी में जिस कलम ने प्रवेश प्रगति की उसे "दक्खनी कलम" कहते हैं। उनके दरबारों में भी दरबारी और रागमालाओं के चित्र चित्रित हुए। कई पाण्डुलिपियां चित्रकारों के आकर्षक अंग द्वारा बज उठी। चित्रकारों द्वारा "कैनवास Canvas—तैल चित्र बनाने का उपयुक्त वस्त्र) पर बड़े आकार में चित्र बनाने के कुछ प्रयत्न भी हुए। कई चित्रकार मुर्शिदाबाद, लखनऊ, बनारस और पटना जा बसे; वहां उन्होंने मृतप्राय मुगल शैली को अर्ध-जीवित अवस्था में भी कायम रखा। इसके बाद शैली का अन्त हो गया। इससे स्पष्ट है कि मुगल शैली के जन्म तथा मरण दोनों का क्रम मुगलकाल के साथ-साथ चलता रहा। साम्राज्य नष्ट होने के पश्चात् शैली भी नष्ट हो गई।

मुगल शैली के व्यक्ति चित्र

मुगल शैली में व्यक्ति चित्रों की भरमार है। दरबारी नृत्य, आखेट, प्राकृतिक दृश्यांकन आदि विषय के चित्रों के साथ-साथ व्यक्ति चित्रों की भरमार है। राजस्थानी व्यक्ति चित्रों से मुगलकालीन शैली के व्यक्ति चित्र टैकनिक और रंग योजना की दृष्टि से कहीं अधिक बढ़े-चढ़े हैं। यदि मुगल शैली की चित्रकला को 'व्यक्ति चित्रों की कला' कहा जाय तो समीचीन होगा। इस शैली में जितने व्यक्ति चित्र निर्मित हुए हैं उतने शायद आज तक किसी भी शैली में सम्भव नहीं हो सके। वैसे तो व्यक्ति चित्रों के अंक की कला अत्यन्त प्राचीन है और भारतीय चित्रों का प्रिय विषय भी रहा है। कई व्यक्ति चित्र "उषा-अनिरुद्ध" कथाओं में मिलते हैं। महात्मा बुद्ध के व्यक्ति चित्रों का दर्शन हमें अजन्ता की कला में भी मिलता है। भारत में सिंध प्रान्त पर प्रथम मुसलमान मुहम्मद बिन कासिम ने 712 ई० में आक्रमण किया था उस समय कई हिन्दू चित्रकार उसका व्यक्ति चित्र बनाने के लिए उसके पास गये थे। इससे तो यह जान पड़ता है कि व्यक्ति-चित्रकला प्राचीन ही है। संस्कृत की प्राचीन पुस्तकों में व्यक्ति चित्रकार को रूपकार की ही परिभाषा दी है, जो अत्यन्त उपयुक्त लगती है।

मुगलकालीन चित्रों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है (1) ईरानी शैली के व्यक्ति चित्र तथा (2) भारतीय शैली के व्यक्ति चित्र।

(1) ईरानी शैली के चित्रों में कई चित्र ईरानी चित्रकारों द्वारा ही निर्मित दिखाई पड़ते हैं। यह भी सम्भव है, ईरानी उन्हें साथ लाये हों। कई तो भारतीय प्रभाव से बाहर के नहीं मिलते हैं। इन चित्रों की रेखाओं में लालित्य एवं गोलाई

नहीं दिखायी देती । रेखाएँ सपाट हैं जिसमे चित्र निर्जीव लगते हैं । छाया-प्रकाश का ज्ञान ईरानी रूपकारों को न था इसी से चित्र वास्तविकता से सामंजस्य स्थापित न कर सके ।

(2) भारतीय व्यक्ति चित्र पारम्परिक मेल-जोल एव सम्राटो की उदार नीति के कारण ही चित्रित हुए । इन चित्रो मे सम्राटो, राजकुमार, राजाओं महाराजाओ, अमीर-उमरावो तथा रंको एवं सन्तो के चित्र उपलब्ध होते हैं अधिकाश चित्र खड़ी अवस्था के हैं । इन चित्रों का अंकन भारतीय है, चित्रों रंग चटकीले हैं, प्रभावयुक्त रेखाएँ हैं और छाया-प्रकाश के नियमों का यथावत् पालन भी हुआ है । कई जगह तो इन व्यक्ति चित्रो में एक से अधिक व्यक्तियों का स भी है । इन चित्रों की आकृतियाँ सुन्दर है तथा वस्त्रों में सोने का कार्य कि गया है ।

व्यक्ति चित्रों की विशेषतायें

मुगल सम्राटों को व्यक्ति चित्र बनाने का शौक था । अकबर अपना व्य चित्र अंकनार्थ रूपकार के सम्मुख खड़ा होता था । जहाँगीर और शाहजहाँ इस शौकीन थे । औरंगजेब जो चित्रकला से कम प्रेम रखता था उसके भी युवावस्था लेकर वृद्धावस्था तक के चित्र उपलब्ध होते हैं । इन चित्रों की पृष्ठभूमि हल्के धुं रगों द्वारा चित्रित की जाती थी । व्यक्ति के शारीरिक अङ्गों को गहरे रगो द्वारा चि किया जाता था । वस्त्रो का अङ्कन हल्के रंगों द्वारा होता परन्तु इतनी बारीकी दिख जाती कि अग झाकता था । मुखाकृतियों के अकन मे रूपकारों ने कमाल हासि किया है । नेत्रो, भौहों और दाढी की रचनायें रेखाओ की सुकुमारता प्रशंसनीय इतनी बारीकी का कार्य अन्यत्र सहज मे ही प्राप्त नहीं होता । वस्त्रो पर सुनहरी रूपहरी कार्य होता था । इन रूपकारो के उपर्युक्त बाह्य कार्य के अलावा स प्रदर्शन आकृति अकन और व्यक्ति के स्पष्टीकरण मे है । आकृति के साथ ही स्व का प्रदर्शन हुआ है । ऐसा लगता है कि रूपकार मनोविज्ञान का ज्ञाता हो । चे पर व्यक्तित्व एव स्वभाव झलकता है । जो चरित्र चित्रण आज उन सम्राट उपलब्ध होते है वे उनके मुख पर स्पष्ट दिखाई देते हैं । ये व्यक्ति चित्र टैक्निक दृष्टि से रूढिबद्ध हैं । उन रूपकारो ने कुछ नियमो और चित्र विधान का पूर्ण पालन करके चित्राकन किया था । इसी रूढ़िबद्ध कला से चित्रो मे प्रतिभा या र और कला सजीव एवं सशक्त बनी रही । मुगलकालीन व्यक्ति चित्र ऊपर से रूढ़ि और आलकारिक अवश्य दिखाई देते हैं, परन्तु रूपकारों ने अपनी प्रतिभा सम्पन्न कला द्वारा उनमे जीवन भी फूँका है । ये व्यक्ति चित्र चित्रकला अथवा रूप की श्रेणी में उत्कृष्ट एवं सर्वोच्च गिने जाते हैं ।

मुगल शैली के विषय तथा विशेषताएं

मुगलकला अभिजातकुलीय थी । इसमे यथार्थ की पृष्ठभूमि पर मर्यादित वर्णांकन से सुकुमारता और तरलता निखरी । सुरुचि और सफाई से उस काल के

कलाकरो ने जिस प्रतिभा से तथा जिस दक्षता और लगन से उनको प्रस्तुत किया उसकी सराहना संसार के सभी कला-समीक्षको ने की है ।

मुगल शैली के चित्रो में विषयो की विविधता है परन्तु अजन्ता के समान सजीवता स्पष्ट रूप से दिखायी नही पडती । मानवी चित्रो की इसमे बाढ-सी दिखाई देती है अथवा यो कहा जा सकता है कि मुगल शैली का बहुत-सा भाग व्यक्ति से भरा हुआ है फिर भी अनेक चित्रो के विषय ऐसे भी हैं जिनका सम्बन्ध आये दिन के जीवन से है । अनेक चित्र शिकार, युद्ध, ऐतिहासिक घटनाओ, पौराणिक आख्यायिकाओ, दरबारी जीवन, पशु-पक्षी चित्रण, प्राकृतिक चित्रण तथा धार्मिक दृश्यो के भी उपलब्ध हुए हैं । धार्मिक चित्रो में आध्यात्मिकता का अंश नाममात्र का भी नही मिलता । इस्लाम चित्रकला के विरुद्ध है । इसलिए मुसलमानो का धर्म चित्रों का विषय नही हो सकता । घरेलू जीवन के चित्रों को जो स्थान राजस्थानी शैली मे मिला वे इस शैली में न आ सके क्योकि मुगलो का जीवन अन्त पुर के पर्दे के पीछे था । घर की चहारदीवारी मे ही उनका जीवन था । शैली के विषयों को देखते हुए चित्रो का निम्नलिखित वर्गीकरण किया जा सकता है :

1. अमीर हम्जा, शाहनामा तथा ईराकी प्रेम कथाओं के चित्र
2. रामायण, महाभारत, नल दमयन्ती और अन्य धार्मिक कथाओ के चित्र
3. ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि के चित्र
4. दरबारी शिकार एवं युद्ध सम्बन्धी चित्र
5. प्राकृतिक एवं यथार्थ चित्र
6. व्यक्ति चित्र (शबीह चित्र)

(1) अमीर हम्जा, शाहनामा तथा ईरानी प्रेमकथाओ के चित्र—मुगल शैली के कलाकारों ने अमीर हम्जा और शाहनामे के चित्र बनवाये । ये चित्र मुगल शैली की प्रारम्भावस्था के बने दिखायी देते है । बाबर इन पुस्तको (अमीर हम्जा और शाहनामा) तथा कथाओ का प्रेमी था । जो ईरानी चित्रकार उसके साथ भारत आये थे, वे यद्यपि भारतीय प्रचलित कला से अनभिज्ञ अवश्य थे परन्तु ईरानी शैली मे ही उन चित्रो का निर्माण हुआ था । इन्होने इनके साथ-साथ लैला मजनू, शीरीफरहाद आदि कथाओं पर चित्र बनवाये ।

(2) रामायण, महाभारत और अन्य धार्मिक कथाओं के चित्र—रामायण तथा महाभारत के धार्मिक कथाओ के चित्र उस समय बनने आरम्भ हुए थे, जब अकबर के समय में भारतीय एव ईरानी चित्रकारो में परस्पर मेल हुआ । इस समय अकबर ने राजपूत रानी से विवाह किया था । उसकी हिन्दू धर्म मे रुचि बढ़ गयी थी । हिन्दू धर्म के नियमो तथा धार्मिक पुस्तको का उसे थोड़ा ज्ञान हो गया था । उसने इन पचतत्र नलदमयन्ती पुस्तको का फारसी मे अनुवाद कराया । उसने अपने 40 चित्रकारो से जो हिन्दू व मुसलमान दोनो से, रामायण, महाभारत तथा अन्य धार्मिक पुस्तको को कथाओ के चित्र बनवाये । इन चित्रो को उन कलाकारो ने बड़ी

निपुणता से बनवाया था। यद्यपि टैकनिक पृथक है परन्तु शैली मे अजन्ता की झलक अवश्य दिखायी देती है। मुगल शैली के कलाकारों ने इन चित्रों को नवीन ढग मे अजन्ता के नियमो के आधार पर अंकित किये। ये चित्र सुन्दर हैं जिनमे रेखाएं अत्यन्त और प्रवाहयुक्त तथा रंगों का प्रयोग भी कुशलतापूर्वक किया गया है।

(3) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के चित्र—मुगल शैली के चित्रकारो ने ऐतिहासिक चित्रो की रचना भी की थी। तारीखे खानदाने तैमूरिया, जिसमें मुगल इतिहास का सचित्र वर्णन है जिसकी एक प्रति खुदा बख्श खाँ प्राच्य पुस्तकालय, पटना मे सुरक्षित है। बाक आत बाबरी (बाबर की आत्मकथा) अकबर नामा, आदि अनेकों ऐतिहासिक ग्रन्थ रगीन पृष्ठो से भरे हुए हैं। युद्ध आदि के चित्रों को देखने से यह प्रतीत होता है कि चित्रकार युद्धस्थल पर अपने रंगों और तूलिकाओं सहित चित्रण करने गया होगा। अन्यथा काल्पनिक चित्र ऐसे उत्कृष्ट नही बन सकते। भारतीय इतिहास मे इन चित्रों की गणना उच्चकोटि में की जाती है तथा भारतीय चित्रकला में यह चित्र एक विशेष स्थान ग्रहण करते हैं कि चित्र को देखने मात्र से ही मुगलकालीन युद्धों के दृश्य आँखो के सम्मुख चलचित्रों की तरह उपस्थित हो जाते हैं।

(4) दरबारी शिकार एवं युद्ध सम्बन्धी चित्र—मुगल शैली के चित्रों में दरबारी जीवन के चित्रांकन को एक मुख्य विषय माना जाता है। इसका कारण यह है कि मुगल शैली का पालन-पोषण सदा राजदरबारो मे ही हुआ। चित्रकारो ने मुगल बादशाहो के दरबारो मे अदब, अमीर-उमरानों की शान-शौकत, शाहशाहो के सम्मुख बाहर से आये हुए उपहार, राजदूतो के परिचय पत्र एव उनका दरबारो में प्रवेश आदि विषयो पर अनेक चित्राकृतियाँ पायी जाती हैं। कई चित्रकारो ने पुरस्कार पाने हेतु उच्च पदाधिकारियों के जीवनवृत्तों को चित्र द्वारा प्रदर्शित भी किया है।

मुगल शासको को आखेट का भी काफी शौक था। वे शान-शौकत से शिकार के लिए दल-बदल सहित जाते थे। वृक्षो के झुरमुटो मे बादशाह को शेरों तथा बघेरों का शिकार करते बताया गया है। युद्ध के दृश्यो के साथ ही इन चितेरो ने हाथी, बैल, बटेर, मुर्गे और तीतरो के युद्ध के चित्र बड़े सुन्दर ढंग से बनाये हैं। क्योकि इस प्रकार के युद्ध भी मुगल बादशाहो के आमोद-प्रमोद के अंग थे। कभी-कभी शेरो और मनुष्यो को आपस में लडाया जाता था। इस तरह के युद्ध सम्बन्धी मुगल शैली के चित्र भारतीय चित्रकला की एक नवीन देन है।

(5) प्राकृतिक अथवा यथार्थ चित्र—मुगल शैली की चित्रकला मे प्रकृति चित्रण अथवा वास्तविक चित्रण का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। इसमे पशु-पक्षी, पेड़-पौधो, फूलो और फलों के चित्र सम्मिलित है। इन सारे ही अवयवो एवं प्रकृति की वस्तुओं को वास्तविक रूप मे बड़ी ही सुन्दरता से अंकित किया गया है। भारत की सभी तरह की चिडियो के चित्र इन्होने बड़ी तन्मयता से बनाये हैं जिनमें श्रेष्ठ स्थान मयूर को मिला है।

मुगल शैली की चित्रकला मे पशु भी कई जगह आये हैं जिनमे हाथी, घोड़े, ऊँट, बैल, गाय, शेर, चीतें, गीदड और लोमड़ी इत्यादि प्रमुख है। ये पशु उनकी तूलिकाओ द्वारा सुन्दर अंकित किये गये हैं। पशुओ के सीगो के मोड, उनका प्राकृतिक रंगो और स्वभाव तथा चाल आदि बातो मे विशेषता और वास्तविकता झलकती है।

पेड़-पौधो तथा उनकी शाखाओ और पत्तियो के अकन मे तो इस शैली के कलाकारो ने कमाल ही दिखाया है। पहाडी और मैदानी दोनो प्रकार के पेड़-पौधों को चित्रो में स्थान मिला है। सम्राट जहाँगीर स्वयं चित्रकारो को लेकर काश्मीर जाया करता था ताकि वहाँ के पेड़-पौधो का अकन हो सके। जड़ो, तनो और डालियों मे सुकुमार रेखांकन से गति जान पड़ती है। चित्रो मे वे एक नही वरन् सजीव दिखाई देते हैं। इससे सम्राट का प्रकृति-प्रेम तथा कलाकारों की कुशलता झलकती है।

मुगल शैली के चित्रो मे फूलों को भी विशेष स्थान प्राप्त है। जहाँगीर बचपन से ही फूलों का प्रेमी था और उसकी सम्राज्ञी नूरजहाँ उससे भी बढकर थी। उसका प्रेम भी, कहते हैं फूलों के द्वारा ही हुआ था। सम्राट और सम्राज्ञी के चित्र जो भी उपलब्ध हुए उनमे वे दोनों गुलाब के फूल सूंघते दर्शाये गये हैं। अजन्ता शैली में जो स्थान कमल को मिला है वही स्थान गुलाब को मुगल शैली में मिला है। इसका अकन भी कलाकारो ने अत्यन्त सुन्दरता और निपुणता से किया है। शाहजहाँ के काल मे भी कई प्रकार के फूलो को ताजमहल के निर्माण मे अनेक प्रकार के रग-बिरंगे पत्थरो के टुकडो द्वारा निर्मित किया गया है, जिन्हे देखकर यही प्रतीत होता है कि ये फूल पत्थरो के नही वरन् वास्तविक रूप मे चित्रित किये गये हैं। फूलों के साथ फलों का भी बड़ा ही अनूठा चित्रण हुआ है। फलो का शौक बाबर को बहुत था और वह स्वयं के खाने के फल जो भारत मे उपलब्ध न थे काबुल से मंगवाया करता था। कलाकारों ने भारत और काबुल दोनों ही देशो के फल—यथा अनार, आम, अमरूद, पपीता, नीबू, सेब और नारियल आदि को अत्यन्त कुशलतापूर्वक अंकित किये हैं।

छोटे-छोटे जानवरो, कीड़े-मकोड़े आदि के चित्र इतनी कुशलता और सुन्दरता से बनाये हैं कि उन्हे देखकर वास्तविक होने का धोखा हो जाता है। इसमें मुख्यतः सांप, बिच्छु, भौंरे, तितलियां, झींगुर हैं। तितलियों में चटकीले रग हैं तथा प्रत्येक जन्तु की बारीकियों को बड़े अच्छे और सही ढंग से अकित किया है।

मानव चित्र शबीह चित्र

मुगल शैली मे मानवीय चित्रों की भरमार है। मानवीय चित्रो के चित्रकारो को उस समय रूपकार कहा जाता था। उन रूपकारो ने सम्राटो, अमीरों, राजकुमारो, संतो एवं इतिहास प्रसिद्ध अन्य व्यक्तियों के व्यक्ति चित्रों का निर्माण किया जिन्हें चित्रकला मे अच्छा स्थान प्राप्त है। मुगलकाल में जनता का प्रमुख विषय मानवीय

चित्रण था और रूपकार इन्ही चित्रो को अधिक मात्रा में बनाते थे। वह उन रूपकारो का प्रमुख विषय था, जो राज्याश्रय मे न हों वे ऐसे चित्रों का निर्माण किया करते थे जिनको जनता और दरबारी लोग दोनो ही आदरपूर्वक अपनाते थे। उन चित्रो में बहुत से राज-दरबार से अधिक सम्बन्धित हुआ करते थे। उन चित्रो मे वही पहनावा बनाया गया है जो उस समय के लोगो मे प्रचलित था। कपड़े का रंग और उन पर किया गया बहुमूल्य सोने-चादी का कार्य राज्याधिकारियों के कपडो का बताया गया है। इन सारे ही कपडो के रग चमकदार और चटकीले हैं जो दूर से भले प्रतीत होते हैं। उस समय लोग चमकदार रंगो वाले वस्त्र अत्यन्त खुशी से पहनते थे।

मुगल शैली के व्यक्ति चित्रो की दो आकृतिया

मुगल कला में आलेखन

अजन्ता शैली की तरह मुगल शैली मे भी आलेखन की भरमार है। इन आलेखनों मे अजन्ता के समान कमल पुष्प को प्रधानता नहीं मिली वरन् अन्य प्रकार के कई फूलो एवं पत्तियो को स्थान मिला है। इन कलाकृतियों मे सीधी खड़ी तथा पडी रेखाओं का प्रयोग है जिससे उन कलाकारों के वृहद् ज्ञान का आभास होता है। कई आलेखनो मे पशुओ की सरल आकृतियो और फूलो को भी चित्रित किया गया है। यदि इन आलेखनों को हम प्राकृतिक कलाकृति के नाम से सम्बोधित करें तो समीचीन होगा। कोने तथा मध्य आलेखन मे फूलो का प्रयोग अधिक है।

मुगल शैली की सबसे अच्छे आलेखन ज्यामितिक हैं जो बहुत ही उन्नत अवस्था की जान पड़ती हैं। मुगलकालीन इमारतो पर कुरान की आयतें लिखी गयी हैं जिनकी लेखन शैली मे ज्यामितिक कलाकृतियों मे बड़ी सहायता मिली है। मुगल काल में इमारतों का निर्माण अधिक था और उनमें "पैनल-डिजाइन्स" (दिला के नमूने) अधिक मात्रा में देखने को मिलते हैं। ताजमहल मे तो इस प्रकार के

डिजायनों की भरमार है। उनको देखने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मुगल शैली के चित्रकारों को इनके बनाने का अच्छा अभ्यास था। कुछ मुगलकाल के प्रासादों तथा भवनो में धरातलीय कलाकृतियाँ (Units) सराहने योग्य हैं। इकाइयों में फूलों और लम्बी पत्तियो का अधिक प्रयोग है। अकबर के समय की गाथाओ में भी इन इकाइयों का प्रयोग किया गया है तथा प्राकृतिक कलाकृतियाँ भी कई चित्रो मे अधिक सख्या में प्राप्त होती हैं जो वास्तव मे प्रशसनीय है।

मुगल शैली में चित्रों के रंग—

मुगल चित्रों में राजस्थानी लघुचित्रो की तरह ही हाथ से देशी ढग द्वारा रंग बनाये गये हैं। रग मुख्यत: खनीज-गेरू, हिरोजी रामरज, लाजवर्दी, सोना तथा चादी रसायनिक सफेदा, प्योड़ी, सिन्दूर, स्याही (काजल) वानस्पतिक नील आदि रगो का प्रयोग किया गया है। मुगल चित्रो मे शुद्ध रगो का इतना प्रयोग नही है कि जितना राजस्थनी लघुचित्रों अथवा मध्यकालीन चित्रो मे है। इन चित्रो मे सभी रंगो के साथ सफेद रंग के मिश्रण से सोफियानी रग योजना है। चित्रो की आकृतियो मे गहराई अथवा छाया प्रकाश दर्शाने के लिए गहरे रग का प्रयोग किया गया है।

मुगल चित्रों का रंग विधान व पुस्तक चित्रण सज्जा

मुगल चित्रण मूलतः पुस्तक चित्र है जिसमे स्वतन्त्र चित्रण का अभाव था किन्तु जहाँगीर काल मे स्वतन्त्र चित्रण की परम्परा भी साथ-साथ आरम्भ हुई। संक्षेप मे मुगल चित्रो का विधान यह है कि कलाकार आरम्भ मे मोटे कागज की दो-तीन परतों को एक के बाद एक पर लेई से चिपकाते है इस पर लिकटी (रेखाकन) गेरुए रंग से जो चित्र बनाना होता था, को अकित करते इस पर जमीन बाधने हेतु सफेद रंग की पतली-पतली दो-तीन परत चढाई जाती है, बाद मे फिर सही रेखाकन करते है जिसे 'सच्ची टिपाई' कहते है तब चित्र को समरूप व ओप प्रदान करने के लिए चिकने धरातल पर चित्र को उल्टा रखकर चिकने पत्थर से घिसाई की जाती है फिर आवश्यकतानुसार कलाकार स्वय की पसन्द से विविध रगो को दो-तीन बार भरते हैं जिसे 'गदकारी' कहते है व फिर दुबारा घिसाई करते हैं। चित्र मे पूरी चमक आती है अब कलाकार आकृतियों की सीमा रेखा बनाते हैं जिसे 'खुलाई' कहते हैं साथ ही हल्की गोलाई आकृतियो में गहराई आदि भी निर्मित करते जाते हैं इसे 'लाया सुषमा' कहते हैं। इसके पश्चात् चित्र मे विविध अलकरण जिसे 'मोती महावर' कहते हैं किया जाता है। चित्र सम्पूर्ण होने के पश्चात् 'वसली साज' के पास भेजा जाता है जिसे वह वसली पर चढाता है नक्काश' व 'खत साज' चित्र को बाहरी रूप रेखा मानेखन आदि से सजाते हैं। इस प्रकार पारस्परिक चित्र विभिन्न लम्बी प्रक्रियाओं के मध्य निर्मित होकर अन्त मे शहशाह के हाथों प्रशसा व कलाकार पुरस्कार व प्रोत्साहन प्राप्त करता था।

मुगल शैली के प्रसिद्ध चित्रकार

पिछले पृष्ठों में यदा-कदा यह कहा जा चुका है कि मुगल शैली की चित्रकला कुछ काल के लिए अति प्रशसित एव बहुचर्चित थी। मुगल बादशाहो ने कई चित्रकारो

को पूर्ण राज्याश्रय दिया था एवं यथेष्ट सम्मान भी था। फलस्वरूप उन शासकों के काल में कला वैभवशालिनी बनी थी। बाबर व हुमायूं के काल के वही ईरानी चित्रकार थे। अकबर के समकालीन चित्रकारों में प्रमुख थे अब्दुस्समद शिराजी। उन्हें उस समय के आचार्य होने का सम्मान भी प्राप्त था। इसके अतिरिक्त मीर सैयद अली और फरुककालमुक तथा भारतीय चित्रकार दसवन्त, बसावन और केशोदास थे। हिन्दू चित्रकार बहुत ही प्रतिभावान बन गये थे। इसके सम्बन्ध में अबुल फजल जो अकबर का दरबारी था 'आइने अकबरी' में लिखता है "आचार्य अब्दुस्समद शिराजी के शिष्य दसवन्त एव बसावन थे परन्तु वे उस्ताद से बढ़कर हो गये थे।" यह भी लिखा है कि हिन्दू चित्रकारों के बने चित्र मुसलमान चित्रकारों से अधिक सुन्दर एव भाव प्रधान हैं। उनके द्वारा किये गये सुनहरी कार्य अद्वितीय हैं। अन्य चित्रकारों मे भगवती, नन्हा, तिरैया, सरवन, मिस्कीन एवं जगन्नाथ थे। जहांगीर के समय में भी कई प्रसिद्ध चित्रकार थे। इस काल का अत्यन्त ख्याति प्राप्त चित्रकार मन्सूर था जिसने पक्षी चित्रण में अद्वितीय ख्याति अर्जित की है। इसके अतिरिक्त गोरधन, बिशनदास, मोहम्मद अफजल और समरकन्द का मोहम्मद नादिर आदि थे। शाहजहाँ के समय मे यद्यपि चित्रकला का उतना मान नही था क्योंकि उसका स्थान वास्तुकला ने ले लिया था फिर भी अधिक सख्या मे चित्र बन रहे थे। उस समय के प्रसिद्ध चित्रकारों से विचित्तर, चितरमन, होनहार, अनूपचतर और बालचद थे। इसके अतिरिक्त मीर हाशिम, फकीरुल्ला खाँ और धनशाह आदि थे।

मुगल शैली की विशेषताएं

मुगल शैली का जन्म ईरानी एव भारतीय पारम्परिक कला के मधुर मिलन का ही प्रभाव है। जिसका आरम्भ ईरान की आत्मा से हुआ किन्तु यौवन में स्वतन्त्र भारतीय शैली बन गई। मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही इस शैली का अस्तित्व मिट गया था। इन दो-तीन शताब्दियों में मुगल शैली अपनी कई विशेषताओं से जगद्विख्यात बन गई। मुगल शैली की आकृतियाँ यथार्थ और स्वाभाविक हैं जिनमें स्फूर्ति एव जीवन झलकता है। देशकालीन वस्त्र हैं, आभूषण हैं जिससे चित्र जानदार लगते हैं। ईरानी शैली की तरह मुगल शैली के चित्रों की पृष्ठभूमि आलकारिक अवयवों से पूरित नही वरन् प्राकृतिक दृश्यों से सजीव बनाई गई है। वातावरण में भारतीयता है, रेखायें प्रभावयुक्त और गतिमान हैं। एक चश्म चेहरे हैं जो राजस्थानी का निजत्व था। छाया और प्रकाश अंधेरे (शैड एण्ड लाइट) का प्रभाव चित्रों मे मिलता है जो शुद्ध भारतीय है। ईरानी शैली मे इसकी कमी रह गई। चित्रों का संयोजन इस शैली का अत्यन्त पुष्ट है। चित्रों का निर्माण यद्यपि दरबारी आज्ञाओं, और सीमाओं विशेष परिस्थितियों में हुआ करता था परन्तु सयोजन मे शिथिलता कहीं नहीं। उसका गठन सिद्धान्तों पर आधारित है क्योंकि कथा प्रधान होने से उनमे कोई त्रुटि न रही। मुगल बादशाह ने कई कथाओं, पौराणिक गाथाओं एव ऐतिहासिक बातों को भारतीय भित्ति-चित्र परम्परा की तरह कपड़ों पर बनवाया था। यह भारतीय

परम्परा है जो मुगल शैली में पुनर्जीवित हुई। विगत भित्ति परम्परा को मुगल शैली मे कपड़े पर स्थान दिया गया। हम्जानामा के सभी चित्र सूती वस्त्रों पर बने हैं। मुगल शैली के संरक्षक मुगल थे जिन्होने अपना कार्यक्षेत्र मुगल ही माना, अत. शैली मे सभी चित्रों में भारतीयता पूर्णतः दृष्टिगोचर होती है, प्रत्येक चित्र मे भारतीयता की छाप स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होती है। गोलाईदार रेखाए, आकृतियो मे गति, हस्त मुद्राओं की सजीवता, प्राकृतिक दृश्यो की स्वाभाविक पृष्ठभूमि चित्रण, सयोजन की पुष्टता, रङ्गों की चमक आदि इस बात की पुष्टि करते है कि मुगल शैली मे भारतीयता का अंश सर्वत्र विद्यमान है। प्राचीन चित्र परम्परा व शैली का निर्वाह पूर्णत है। शृंखला कही टूटी हुई नही जान पडती। अजन्ता के चित्रो मे आवृत्तिया अधिक हैं वैसे ही मुगल शैली मे युद्ध आखेट के चित्र हैं परन्तु आवृत्तियो के अधिक होने पर अनियन्त्रण कही नही आ पाया है। अजन्ता की तरह सयोजन पुष्ट है। मुगल शैली के चित्रो में हाशियो का प्रयोग है, चित्र की चाहरदीवारी सीधी रेखाओ द्वारा नही वरन् हाशियो का जमाव है। ये हाशिये पहले भी देखे जा सकते हैं परन्तु नगण्य है। मुगल शैली मे इन हाशियो की अपनी विशेषता है। मूल चित्रो से मेल खाते उन हाशियो मे पक्षियों और पशुओ के चित्र हैं। कही-कही तो ऐसा लगता है कि इन हाशियो का चित्रकार मूल चित्र न होकर अन्य है, गति और रङ्ग योजना एक ही सी नही जान पड़ती, यद्यपि कुशलतापूर्ण है परन्तु बारीकी से देखने पर यह पता चलता है कि इन हाशियो को मूल चित्र के द्वारा चित्रित नही किया गया। यह अवश्य है कि हाशियो के चित्र खिल उठे हैं। उन हाशियो मे सोने के बुरादे का काम विशेप रूप से किया गया जान पड़ता है। जहाँगीर काल तक इस शैली के चित्र जानदार है परन्तु शाहजहाँ के पश्चात् के चित्र पतन की अवस्था के जान पड़ते है जिसे मुगल शैली के पतनकाल का आरम्भिक सोपान कहना चाहिये। जो भी हो इसे पूर्ण निर्धारित किया जा सकता है कि मुगल शैली भारतीय परम्पराओ से ओतप्रोत रही। चित्रो मे भारतीयता का निर्वाह पूर्णत हुआ है। अन्त मे यही कहा जा सकता है कि मुगल शैली भारतीय चित्रकला इतिहास मे एक महत्त्वपूर्ण कड़ी जोड़ती है। उसने चित्र जगत् मे एक नई शान पैदा की है।

राजस्थानी एवं मुगल लघु-चित्र शैलियों का संक्षिप्त तुलनात्मक वर्णन

राजस्थानी एवं मुगल दोनो शैलिया सोलहवी के उत्तरार्द्ध मे निजी विशेपतायें ग्रहण कर यौवन को प्राप्त करती है, दोनो का कार्यक्षेत्र भी सन्निकट ही है किन्तु दोनो अपनी निजी विशेपताओ से विश्व में ख्याति अर्जित किए हुए हैं–

(1) राजस्थानी कलम का स्रोत जहां शुद्ध भारतीय पारम्परिक चित्र व मध्यकालीन कला है वही मुगल कला की जननी फारस की हिरात शैली है जिससे मुगल कलाकारों ने चित्रण उधार लेकर निजी विशेपतायें ग्रहण की जिसमे भारती परम्पराओं को भी कालान्तर में स्वीकारा गया।

(2) राजस्थानी व मुगल दोनो राज्याश्रय में पल्लवित हुई फिर भी मुगल विषयवस्तु फारसी, सामन्ती, पौराणिक कथाओं के साथ व्यक्ति चित्रो तक सीमित रहा वही राजस्थानी कलम मे साहित्यिक रचनाओ, पौराणिक कथाओ के साथ-साथ जनसाधारण का जीवन, पारिवारिक झाकी व इससे भी ऊपर कृष्ण-भक्ति को महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त किया गया।

(3) मुगल कलम में चित्रण यथार्थता की बहुलता लिए हुए है जबकि राजस्थानी काल्पनिक रूपो व विषयों मे निर्मित है।

(4) मुगल कलम का विस्तार मात्र मुगल रंग शाला तक ही सीमित था जबकि राजस्थानी कलम का क्षेत्र विस्तृत था जिसकी अनेको उपशैलियां उभर कर निजी विशेषताए' प्राप्त करती हैं।

(5) मुगल कलम मे रङ्ग योजना चीनी व ईरानी प्रभाव लिये हुए सोने-चादी व नीला, गुलाबी रङ्गीय है जबकि राजस्थानी में शुद्ध व चमकीले रङ्गों का प्रयोग है।

(6) मुगल चित्रो का सयोजन राजस्थानी कलम की तरह पारम्परिक न होकर फलक के मध्य न होकर फारस की तरह दायें व बायें भाग में होता था यद्यपि इसमे भी विषयवस्तु की प्रमुखता को महत्व प्रदान किया गया है।

(7) मुगल कलम मे भित्ति-चित्रण परम्परा न होकर लघु-चित्रण व पोथी-चित्रण ही हुए हैं किन्तु राजस्थानी भित्ति-चित्रण परम्परा भी अजन्ता की तरह लघु-चित्रो के समक्ष ही श्रेष्ठ है।

(8) मुगल चित्रकारो ने चित्र निर्माण के साथ स्वयं के नाम को भी लिखा है जबकि कुछ चित्रो को छोडकर ऐसी परम्परा राजस्थानी कलाकारो में नही मिलती।

इस प्रकार मोटे रूप से यह कहा जाये कि दोनो शैलिया निजस्व के लिए प्रसिद्ध हैं वैसे ही दोनो ने एक दूसरे से कुछ प्राप्त भी किया है जिसका पूर्ण समन्वयात्मक रूप पहाडी क्षेत्र मे विकसित कागड़ा एव इसकी लघुचित्र परम्परा मे हुआ है।

---

10 कांगड़ा शैली

(कांगड़ा कलम)

कांगड़ा शैली के चित्र भारतीय चित्रकला में एक सुमधुर गीतिका के समान हैं। इस शैली के चित्रकारों ने अपनी रेखाओं और रंगों में माधुर्य का अत्यन्त मधुर रंग उड़ेला है। जब इस शैली के चित्रों पर विहंगम दृष्टि डालते हैं तो ऐसा भान होता है मानो भयंकर दावानल से त्रस्त होकर एक पक्षी सघन कुंज की गोद में अपने समस्त मधुर स्वरों से संगीत निकाल रहा हो। इतिहास इस सच्चाई का साक्षी है।
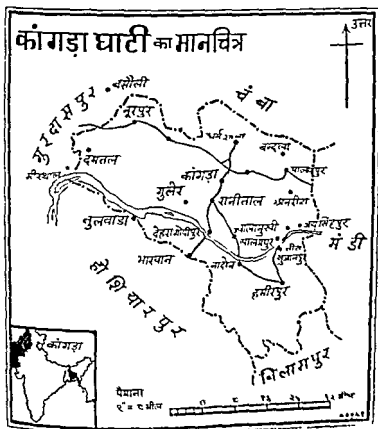
नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के कठोर आक्रमणों से जब जर्जरित मुगल साम्राज्य पतनोन्मुखी दिशा को जा रहा था तब मुगल दरबार के कलाकार पजाब की पर्वतीय रियासतो में चले गये। सम्भवतः उनमें से कुछ रावी से पूर्व वाली कांगडा व इनकी रियासतो—चम्बा, नूरपुर, गुलेर, कोट कांगडा सुकेत, कुलू, नाहन और सिरमूर आदि मे पहुँचे। पठानकोट से कुलू और जम्मू से टिहरी तक फैला हुआ 1600 वर्ग मील का यह पहाडी प्रदेश, पहाड़ी शैली की रंग भूमि है। रावी और व्यास नदियो के नीचे की घाटी का नाम कांगडा प्रदेश है। 11वी शताब्दी में टिहरी-गढ़वाल मे कागड़ा शैली पनपकर उजड़ गई थी परन्तु पुनः 17वी और 18वी शताब्दी मे चित्रकारो के आगमन ने इसी पहाडी प्रदेश को कलामय बनाकर विश्व के लिए एक आश्चर्य पैदा कर दिया। मुगल शासकों ने इस कला पर ध्यान ही नहीं दिया फलत चित्रकला शैय्या पर पड़ी मौत की सासें लेने लगी। सभी चित्रकार मुगल बादशाहो के कठोर शासन से उकता गये थे। वे अपने को आश्रयहीन और पिंजरे के निस्सहाय पक्षी की तरह बन्दी समझ रहे थे। अन्त मे वे दरबारी आश्रय एवं बन्धनो से मुक्त होकर उत्तर की ओर पहाड़ी रियासतो एव पजाब की ओर जाने को तैयार थे ताकि अपनी स्वच्छन्द कलाप्रियता एव उन्मुक्त मन से "स्वान्तः सुखाय" रचनाएँ कर सकें। विभिन्न पहाड़ी रियासतो के राजाओ ने उन कलाकारो को सहारा यहा नही की अपितु पूर्ण सहयोग एवं सरक्षण दिया जिसके फलस्वरूप भारत के उत्तरी पहाडी भूभाग पर एक ऐसी कला पनपी जिसे पहाड़ी चित्रकला या हिमाचल शैली आदि नामो से सबोधित करते है। छोटी-छोटी रियासतो ने भी इतनी तरक्की की, कि वे उसी स्थान विशेष की कलम (KALAM) कहलाने लगी जैसे, 'बसौली कलम', 'कागडा कलम' और 'चम्बा चित्र शैली'। प्रचलित नामो मे 'कागड़ा कला' नाम ही इस अध्ययन मे लिया गया है जो समस्त पहाडी चित्रकला का प्रतिनिधित्व करता है और यही कलम बहुप्रचारित एव बहुचर्चित है।

कागडा कलम की अभूतपूर्व उन्नति के उन्नायक थे राजा ससारचन्द्र। ये राजा घमण्ड चन्द के पौत्र थे जो 1774 ई० मे सिंहासनारुढ़ हुए और बीस वर्षों तक अपार यश एव ख्याति अर्जित की। राजा ससारचन्द चित्रकला के आश्रयदाता ही नही बल्कि एक कुशल चित्रकार एवं पारखी भी थे। उनके पास चित्रों का एक वृहत संग्रह भी था। उनके पास कार्य करने वाले कलाकारो ने अपनी प्रशस्त प्रतिभा को अपनी विशिष्ट शैली मे प्रवाहित कर दिया था। यद्यपि वे कलाकार राजपूत शैली में शिक्षा पाये हुए थे। परन्तु अपनी विशिष्ट अनुरंजन विधि, वस्तु-विषय और रेखा विधान के कारण इस शैली का अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। कांगड़ा-शैली या पहाड़ी कला राजपूत शैली की ही एक महत्त्वपूर्ण शाखा (Offshoot) है जिसने विशेष वातावरण एव पूर्ण प्रश्रय से एक नया ही रूप ग्रहण किया।

ससारचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् कागड़ा के सभी चित्रकार आश्रयहीन हो गये क्योंकि उनका पुत्र गोरखों के उपद्रव से तग आकर ब्रिटिश राज्य में भाग गया था।

1928 ई० में मर गया। उनकी दो पुत्रियाँ गढवाल के राजा को ब्याही थी और कुछ चित्रकार भी उनके साथ गये थे जिससे गढवाल में भी वैसी ही कला पनप सकी। गढवाल और कांगडा के चित्रों में अत्यधिक सदृश्यता का कारण पूर्णरूप से ही यही प्रतीत होता है। टेहरी गढवाल में 1815 ई० में राजा सुदर्शन हुए थे जो राजा संसारचन्द्र के समान ही चित्रकला प्रेमी थे। इनके दरबार में अनेकों चित्रकार थे जिनमे मौलाराम, चैंतू और मानकू बहुत प्रसिद्ध हैं। मौलाराम के पूर्वज दिल्ली से टेहरी गढवाल आ बसे थे। मौलाराम का समय 1760 ई० से 1833 तक है। टेहरी दरबार मे अब भी मौलाराम, चैंतू और मानकू आदि के चित्रों का अच्छा सग्रह है। राजा सुदर्शन के पश्चात् राजा प्रताप शाह के समय (1877–1884 ई०) मे भी चित्रकला के इस पहाड़ी शाखा की भी यथेष्ट उन्नति हुई। सौदागार नामक प्रसिद्ध चित्रकार भी उसी समय हुआ था।

पहाड़ी शैली के अन्य कला केन्द्र

यद्यपि इस शैली के दो मुख्य भेद हैं—जम्मू कलम और कागड़ा कलम परन्तु देखा जाय तो हिमालय के पश्चिम आँचल की समस्त रियासतों मे यह शैली न्यूनाधिक रूप से प्रचलित थी। जब भारत के दक्षिण भाग मे काफी राजनैतिक हलचलें हो रही थी उस समय यह पर्वतीय कोना शान्त और मथर गति से आर्थिक सुख-शान्ति के दौर से मस्त था। इसलिए चित्रो मे राग-रग, हास-विनोद और सुख शान्ति आदि का अंकन प्रधान रूप से हुआ है। कागडा के अतिरिक्त चम्बा की कला भी अत्यन्त विख्यात हुई है। चम्बा रावी नदी के किनारे पठानकोट से 73 मील दूर बसा है, आबादी केवल छह हजार है लेकिन यहाँ के रग महल अब भी अच्छी अवस्था मे हैं और उनमे यहाँ की अभूतपूर्व कला देखी जा सकती है। चम्बा चित्र कला और मूर्तिकला अपने ढग की अनोखी मानी जाती है। चम्बा की कला आज भी तीरा, सुजानपुर, नाहन, आलमपुर, मानडी आदि के किलों मे सुरक्षित है। वहाँ बड़े कलापूर्ण विशाल 'म्यूरल्स' है; जो बारीक चित्रकारी के कौशल को प्रदर्शित करते हैं। 18वी और 19वी सदी मे यहाँ पुरातन गाथाओं और काव्यों को लेकर हजारो चित्र बनाये गये थे।

कांगड़ा शैली-विषय और विशेषताएं

कागड़ा शैली, राजपूत शैली की ही एक सम्मानीय एव उत्कृष्ट शाखा है। इस शैली के चित्रकारो ने ऐसी चित्रो की रचना की थी जो ससार की अमूल्य निधि के रूप में आज भी पूर्णतया सुरक्षित है। इनके विषय देवताओं के ध्यान, रामायण, महाभारत, भागवत, पौराणिक साहित्य, ऐतिहासिक गाथाएँ, लोक गाथायें, केशव, बिहारी सेनापति आदि हिन्दी के प्रमुख कवियों की रचनाएँ, लोक गाथायें, केशव, बिहारी सेनापति आदि हिन्दी के प्रमुख कवियो की रचनाएँ, शबीह तथा दैनिक एव लौकिक चर्चा आदि थे। इन्होंने राग-रागनियो, नायक-नायिका भेद, ऋतु-दर्शन, और सौन्दर्य आदि विषयों को भी अत्यन्त कुशलतापूर्वक चित्रित किया। इनके

में भावनाओं और वास्तविकता का अच्छा प्रदर्शन है। आलंकारिता का सर्वत्र प्राधान्य है। इन सभी से सम्मिश्रण के चित्रों में सजीवता और रमणीयता है। ऐसा कोई रस या भाव नहीं है जिसका सफल अंकन कलाकार न कर सके हों। उनका आलेखन आवश्यकतानुसार वज्र के समान कठोर और फूल से भी कोमल होता है। वे अपनी विस्तीर्ण सहानुभूति से रेखाओं में प्राण, संयोजन में स्पन्दन और रंगों में रस की प्रचुर मात्रा ला सके। छोटी से छोटी वस्तु में विशाल दृष्टिकोण मिलता है।

कांगड़ा शैली में चित्रित एक रागिनी

उपर्युक्त विषयों को लेकर ये चित्रकार एक-दो चित्र ही न बनाकर संतुष्ट हुए परन्तु एक विशाल माला ही पिरो दी जिसे देखकर आज संसार दांतों तले उँगली दबाता है। साहित्यिक विषयों को लेकर उनको मौलिकता प्रदान करना इनकी प्रधान विशेषता थी। राजस्थानी शैली और मुगल शैली के व्यक्ति चित्रों के अभ्यस्त ये चित्रकार एकचश्मे चेहरे को चित्रित कर सके अन्य रुखों को चित्रित करने में ये असफल रहे। इन विशेषताओं के कारण यह कहना अत्युक्ति न होगा कि अजन्ता युग के बाद पहाड़ी शैली में ही भारतीय कला एक ऐसी ऊँचाई तक उठी है जहाँ तक पहुँचना खिलवाड़ नहीं।

कांगड़ा शैली के चित्रकार अधिकांश हिन्दू ही थे जिनका परम्परागत राजस्थानी शैली से अटूट सम्बन्ध था। उन्होंने सिक्खों, राजपूत राजाओं आदि के चित्र बनाये जो मुगल शैली के व्यक्ति चित्रों के समकक्ष रखे जा सकते हैं और उनमें वैसी ही रमणीयता है। कांगड़ा के कलाकारों ने कई सरदारों, फकीरों और संतों के भी व्यक्ति चित्र बनाये थे। उनके रंगों में चमक थी। गोलाई और छाया प्रकाश के सिद्धान्तों का पूर्णतया पालन कांगड़ा रूपकारों द्वारा अत्यन्त कुशलतापूर्वक हुआ है। ऐसा प्रमाण मिलता है कि इस शैली के प्रसिद्ध चित्रकार मानकू, चैंतू, भोलाराम आदि थे।

इस शैली के मुख्य केन्द्र गढवाल, बसोली, कांगड़ा आदि थे। इस शैली की अमूल्य निधि को 'धर्मशाला भूकम्प' (4 अप्रेल, 1905) ने समाप्त कर दी और साथ ही कांगड़ा शैली के कलाकारो की सन्तान को। कांगड़ा शैली ससार की उन कलाओ मे स्थान पाने योग्य है जो मनुष्य के लिए आनन्ददायक है और भावो को रग और रेखा के द्वारा अमर बनाने का प्रयत्न करती है। पहाड़ी शैली के विषय किसी संकुचित क्षेत्र के नही अपितु विस्तृत हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय महत्त्व के कुछ लोकचित्र तथा पहाडी राजाओ की कुछ प्रतिकृतियाँ भी इस शैली के चित्रकारो के विषय थे। भारतीय किसानों के जीवन से पहाड़ी चितेरों को सहानुभूति थी और इसीलिए कई चित्र भी उन पर चित्रित किये गये है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों की रचनाओ से प्रेरणा पाकर पहाड़ी चित्रकारो ने उनके नायक और नायिकाओ के सफल चित्रों का निर्माण किया है। राजस्थानी शैली की ही तरह इस शैली मे भी रागमाला के कई सुन्दर चित्र हैं अर्थात् यह कहना होगा कि पहाड़ी शैली ने साहित्य एव सगीत का अटूट सम्बन्ध तूलिका से बाँधा।

कांगड़ा चित्र शैली में नारी को विशेष प्रधानता दी। है उसे केन्द्रित करके उसके चारों ओर रूप, लावण्य, बारहमासी जीवन, अष्टयाम प्रेम, शृगार, संयोग-वियोग आदि चित्रित किया है। विदेशी कलाकारो ने लिखा है कि कागड़ा शैली मे नारी का सौंदर्य जितनी सफलता से चित्रित है वैसी अन्य किसी शैली मे नही मिलता। इस शैली मे सर्वाधिक राधा और कृष्ण के विशुद्ध अमर प्रेम का अच्छा चित्रण है। इसमे उनके कलह, पुनर्मिलन, क्रीड़ा, राग-नृत्य, नौका-विहार आदि अंकित हुए है। नायक-नायिकाओ का प्रेम और उनका सजीव चित्रण पहाड़ी कलाकारो का प्रधान विषय था परन्तु क्या मजाल जो प्रेमवसना की घनी अनुभूति कला को अपवित्र बना दे। इस शैली के कई चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं कई दिल्ली की कला प्रदर्शनी के स्थान प्राप्त कर चुके हैं जिनमे मुख्य 'राजकुमारी द्वारा हसो को प्यार', नल-दमयती प्रेम-कथा', 'वाल्मीकि का आश्रम', राधा-कृष्ण नौकाविहार', 'नायिका का आमोद-प्रमोद', 'ऊषा-अनिरुद्ध चित्र' आदि हैं।

कागड़ा कलम की रंगावली सादगी लिये है। सुन्दर ललित रेखाओ की गति हिमालय के क्रोड में बहने वाले निर्मल निर्झरिणियो की याद कराती है। रग कोमल भावनाओ के समान ही लगाये गये है जो आंखो मे शीतलता और मस्तिष्क को विश्रांति प्रदान करते हैं। लाल, पीले तथा नीले रगो का प्रयोग अधिक है। सुनहरा काम वस्त्रों और आभूषणों मे अधिक है जो सुन्दरता और वास्तविकता की वृद्धि करते हैं कम बल के स्थानों की अपेक्षा अधिक बल (High tone) दिया गया है जिसका आशय यह लगाया जा सकता है कि वे ऊँचे स्थानो पर रहते थे और अधिक बलवाले रंगों का प्रयोग करते थे। यह नियम अजन्ता के चित्रों की रंग योजना से कुछ विपरीत-सा है। बसोली के चित्र ग्रामीण हैं जिनके रंगों मे सादगी है, रेखाओ में गति, ओज और स्पन्दन है मगर बनावटीपन से दूर है। रंगो और रेखाओ में अद्भुत

समन्वय है। धार्मिक चित्रों मे रग चटकीले है जो राजस्थानी शैली की याद सहज मे ही दिला देते हैं।

कागडा शैली के चित्रों की रग विशेषता के अतिरिक्त नायक-नायिका लेखन अत्यन्त ही सुन्दरता और सौष्ठवता से हुआ है। उत्फुल्ल कमल सदृश बड़ी-बड़ी आँखें भरे-पूरे गाल, उन्नत ललाट, सधे हुये कुन्तल, उभरे हुए गठित कुछ तीखी नासिका और गोल ठाढ़ी आदि इस शैली के विशेष लक्षण हैं। चित्रो मे आभूषणो की भरमा है तथा स्त्रियो के वस्त्र राजसी ठाठ के से प्रतीत होते हैं। प्रकृति चित्रण मे हिमालय के शान्त पर्वत प्रदेश चित्रित हैं जिनसे मनोरम प्रकृति वैभव के बीच सुन्दर काष्ठ के घर, हरे-हरे झूमते वृक्ष, कुसुमित लताएँ, घने बादलो की पक्तियाँ पक्षियो का झुण्ड, मधुर मथर सरिताएँ झाकती हुई दिखायी देती हैं। कागडा शैली के चित्र भावात्मक है जहाँ कि राजस्थानी शैली आलकारिक है। इनकी रेखाएँ सजीव, सुन्दर और ओजपूर्ण हैं। पहाडी चित्रकारो को 'परस्पेक्टिव' का ज्ञान न था लेकिन इस कमी को चटकीले रगो के कोमलपूर्ण योग से पूरी कर दी है। नारी रूप को इन्होने चित्रित किया परन्तु उसमें कल्पना की मात्रा अधिक पायी जाती है। कल्पना का सुन्दर सम्बल लेकर ही नारी के अगो को इतना सुन्दर बनाया है।

इस शैली के चित्रो के सर्वप्रथम प्रकाशन का श्रेय डॉ कुमार स्वामी को है जिन्होने अथक परिश्रम द्वारा इस शैली को हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया। भारत के राष्ट्रीय सग्रहालय मे आज इस शैली के चित्र शोभा पा रहे हैं तथा सरकार द्वारा इन चित्रो की कई प्रतिलिपियाँ प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

कागडा कलम के अतिरिक्त ऐसी शाखा भी एक है जिसे राजपूत शैली से प्रेरणा लेने एव उसमे उत्पन्न होने का सौभाग्य मिला, वह है—सिक्ख शैली। यह शैली 1775 से 1850 ई० तक प्रचलित रही। इसके आश्रयदाता वे सिक्ख राजा थे जिन्होने अपने ऐश्वर्य काल मे पहाडी राज्यो को भी अपने अधीन कर लिया था। इन राजाओ ने पहाडी चित्रकारो को बुलाकर अपने दरबार के चित्र अकित कराये तथा लाहौर और अमृतसर के गुरुद्वारो तथा राजप्रासादो की दीवारो पर भी चित्राकन करवाये। सिक्ख शैली मे गुरुओ एव सिक्ख राजाओ के चित्रो का बाहुल्य है। इस शैली के ख्याति प्राप्त चित्रकार गुरुमुखसिंह हुए हैं जिन्होने अनेको चित्रो का निर्माण किया था। सिक्ख शैली गढवाल से काफी मिलती-जुलती है।

कांगड़ा शैली एवं राजस्थानी शैली का तुलनात्मक रूप

कागडी शैली एवं राजस्थानी शैली को यदि मोटे रूप से देखा जाय तो दोनो के दृष्टिकोण, भावनाएँ, विषय-सयोजन एव रंग योजना एक ही जान पडती हैं। सूक्ष्म दृष्टिपात से दोनों शैलियो मे काफी अन्तर पाया जाता है जिसका वर्णन सक्षेप रूप मे निम्नवत् है :—

(1) कांगडा शैली मूल रूप से भावना प्रधान है। भावो के माध्यम से रस-सचार उत्पन्न करना उसका मुख्य लक्ष्य माना गया है परन्तु राजस्थानी

शैली का रूप आलंकारिक है। अलकरण के कारण चित्रो का भावपक्ष दुर्बल हो गया है।

(2) कांगड़ा शैली का सयोजन विषयानुकूल सुगठित है परन्तु राजस्थानी शैली का संयोजन अधिकाश मे अस्त-व्यस्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि कलाकार कही उलझ गया है।

(3) कांगडा शैली के चित्रों की विषयावली विस्तृत है जिसमे सामाजिक तत्व को अधिक प्रधानता दी गई है परन्तु राजस्थानी का क्षेत्र धार्मिक आधार एवं कृष्ण लीलाओं से ओत-प्रोत है।

(4) कांगडा शैली का चित्रकार भावना प्रधान था अतः उसके हाथो कौशल से रेखाएँ कोमल, सशक्त एव प्राणवान बनी हैं। वे भावानुकूल परिधि मे प्रवाहित हुई दिखायी देती है लेकिन राजस्थानी चित्रकार विषय के स्वप्नजाल में रेखाओ में कोमलता एव मार्दव लाना भूल गया।

(5) राजस्थानी शैली का रंग-क्षेत्र सादगी से भरा है। स्वर्ण रंग प्रयुक्त करके राजसी ठाठ-बाट एव शाही शान व्यक्त करने का दुस्साहस किया है परन्तु कांगडा शैली का रंग-विधान कोमल है और सामजस्य के लौकिक वातावरण मे उन्नत दिशा की ओर अग्रसर होता दिखायी देता है।

(6) कांगडा शैली की नारी आकृतियाँ अधिक सुन्दर बनी हैं। रूप-लावण्य एवं अंग-प्रत्यंगों का चित्रण उच्चकोटि का है, दूसरी ओर राजस्थानी में कुछ शैली चित्रों की नारी आकृतियो को छोड शेष मे वैसी रूप साधना नही बन सकी है। रेखांकन तो हुआ है मगर अग-प्रत्यंग बनावटी एव कठोरता का आभास देते हैं।

(7) कांगडा के दृश्य, लताएँ एवं वृक्ष, पशु-पक्षी सभी एक मोहक संसार का निर्माण करते हैं वरन् राजस्थानी शैली में कल्पना से दूर भटके हुए प्राकृतिक दृश्य हैं।

(8) कागड़ा शैली की भावना लौकिक अधिक है मगर राजस्थानी धार्मिक भावना से अधिक ओत-प्रोत है।

दोनो शैलियो मे विभिन्नता होते हुए भी एकता है और उसी एकता के ाधार पर भारतीय चित्रकला का भण्डार विस्तृत, विशाल एव वैभवशाली हो सका ै। दोनो ने अपूर्व योग दिया है तथा सौंदर्य के एक अद्भुत कला संसार की रचना ी है।

11 आधुनिक भारतीय चित्रकला का पुनर्जागरण

विगत शताब्दी के अन्त मे भारतीय कला की प्रमुख परम्परागत शैलियाँ- अजन्ता, राजपूत और मुगल, इस देश में यूरोप से आने वाली यथार्थ-प्रकृति कला के प्रभाव से समाप्त प्राय· हो गई और विभिन्न लौकिक और बाजारू शैलियाँ प्रचलित होने लगी। अजन्ता शैली के स्वर्ण पृष्ठ पलट गये—राजपूत शैली चिर निद्रा की गोद में सो गयी और मुगल शैली रुग्ण होकर अन्तिम साँसें लेने लगी। उन शैलियों के ह्रास के चितेरो के वंशज यदा-कदा राजाओं की शरण में अपनी-अपनी तूती बजाने लगे और विदेशी आक्रमणों से प्रभावित होकर ये चित्रकार अपनी परम्परा की अटूट सम्पत्ति गँवा बैठे। कहने का तात्पर्य यह है कि विदेशी कला का प्रभाव उन पर गहरा पड़ा और वे माडलों की नकलें करने में व्यस्त हो गये। उत्तरी भारत चित्रकला का कई वर्षों तक केन्द्र रहा परन्तु औरगजेब की मृत्यु के पश्चात् यह केन्द्र उत्तर से हट कर दक्षिण की ओर अग्रसर हो गया। भारतीय चित्रकला के अन्तिम प्रतिनिधि श्री भूलाराम की मृत्यु 1823 ई. में हुई और उसके पश्चात् भारतीय चित्रकला की प्राचीन परम्परा नष्ट होने लगी। दक्षिण मे चित्रकला का एक नया उदय आरम्भ हुआ जिसके उन्नायक राजा रवि वर्मा माने जाते हैं। राजा रवि वर्मा करीब एक शताब्दी पहले हुए थे और आधुनिक भारतीय चित्रकला का उदय इन्ही राजा के उदय के साथ माना जाता है। राजा रवि वर्मा ने चित्रकला की तान ही नही छेड़ी वरन् आधुनिक धारा को अबाध गति से आरम्भ किया। उन्होने पाश्चात्य शैली का अनुकरण किया और सैकड़ों वर्षों की परम्परागत रूढ़िबद्ध चित्र प्रणाली से विमुख हुए। उन्होंने पाश्चात्य चित्रकला की नैसर्गिक अभिव्यक्ति का अनुसरण किया और भारतीय आदर्शों, विशेषताओं और कलापूर्ण प्रणालियो का तिरस्कार किया। उन्होंने प्रयास किया कि पाश्चात्य कला में भारतीय रूप ढाला जाय। परन्तु थोथी नकल मात्र से वे भारतीय आदर्श न ला सके। भारतीय देवी देवताओं के सैकड़ो चित्र बने परन्तु भारतीयता की छाप उन पर बैठ न सकी। नायक नायिकाओ को चित्रित किया, नारी रूपों को अंकित किया, परन्तु भारतीय रूप का निखरा सौन्दर्य सदैव दूर ही रहा। रवि वर्मा ने भारतीय चित्रकला का नया उषाकाल आरम्भ तो किया, परन्तु वे पूर्ण प्रकाश न फैला सके। उन्होंने पूर्व चित्रकारों की टैकनिक को ग्रहण अवश्य किया, परन्तु भारतीयता से दूर ही रहे इनकी विषयावली धार्मिक व सामाजिक रही परन्तु रंग

रंग शैली भारतीय न होकर विदेशी रही। इनके रंग यूरोपीय ढंग के थे, जिनसे जनता आकृष्ट अवश्य हुई, परन्तु पुनरुत्थान काल के जनक चित्रों के आगमन पर इनकी ख्याति लुप्त हो गयी। जो भी हो, रवि वर्मा ने भारतीय चित्रकला का भंडार अवश्य भरा है।

जिस समय रवि वर्मा के मिले-जुले चित्रों की धूम थी, पाश्चात्य मिश्रित रंगावली में रंगे चित्र ख्याति-किरणें बरसा रहे थे, उसी समय शुद्ध भारतीयता की छाप लिए पुनरुत्थान काल के सही नेता और अग्रणी, चित्र पारखी प्रो ई. बी. हैवेल का उदय हुआ। इनके परम सहयोगी ठाकुर अवनीन्द्रनाथ थे। प्रो ई बी हैवेल एक अंग्रेज महोदय थे जो उस समय कलकत्ता कला विद्यालय के प्रधान थे। उन्होंने भारतीय चित्रकला का अध्ययन किया और बताया कि भारतीय चित्रकला संसार की एक श्रेष्ठ कला है। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और प्रो हैवेल महोदय के दृढ़ संकल्प द्वारा यह तय किया गया कि भारतीयता की रक्षा के लिए आवश्यक है कि यूनानी और रोमी मॉडलों की अनुकृति न की जाय, दोनों के अकथ परिश्रम से भारतीय चित्रकला का एक नवीन प्रकरण खुला तथा आध्यात्मिक पुनर्गठन हुआ और इसी आदर्श की पृष्ठभूमि में उन्होंने न केवल कला-विद्यालय के पाठ्यक्रम में संशोधन कराने और उसे बदलवा लेने के लिए ही संघर्ष किया वरन् कलाओं की प्राचीन भारतीय परम्परा के क्षेत्र में अन्वेषण कार्य भी शुरू किया। पुनरुत्थान का आरम्भ तीव्र गति से बढ़ाने में अवनीन्द्र बाबू प्रधान थे। इस वातावरण की बेला में कई चितेरे गुहा-मन्दिरों के चित्रों की अनुकृति-अंकन के लिए अजन्ता गये। लेडी हेरिंघ, जो एक कला पारखी, सहृदय और समझदार महिला थी, ने अजन्ता के चित्रों सम्बन्धी पुस्तक तैयार करने में अथक परिश्रम किया।

अवनी बाबू के शिष्यों ने अजन्ता के आधार पर कई चित्रों की रचना की। इस तरह यह आंदोलन देशव्यापी रूप लेकर विश्व में छा गया। अनेक पाश्चात्य कला समीक्षकों ने इसकी सराहना की। डॉ. कुमार स्वामी ने तो देश-विदेश में जाकर भारतीय कला की गतिविधियों और आदर्श का प्रचार किया। कई कला-प्रदर्शनियाँ हुई, जिनकी मौलिकता को देखकर एक आश्चर्य का वातावरण बन गया। इस तरह पुनरुत्थान काल के आंदोलन ने लोकप्रियता की सीढ़ी पकड़ ली और फलस्वरूप 'इण्डिया सोसायटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट' की स्थापना हुई। इस सोसायटी का कार्य दीक्षा के साथ-साथ सामयिक प्रदर्शनियाँ आयोजित करना भी था। इस पुनरुत्थान काल के आंदोलन से भारतीय कला को नया जीवन मिला। संसार में भारत की कला को उचित सम्मान मिला और भूले-भटके कला-विद्यार्थियों को सही और सच्चा मार्ग मिला। यदि यह आंदोलन न छिड़ता तो रवि वर्मा द्वारा चलाया गया अधूरा और अपरिपक्व मार्ग चल पड़ता और भारतीय उच्च आदर्श अंधेरे में भटकते रहते और हम हमारी प्राचीन परम्परा को खो बैठते।

जिनमे भारतीय कला भण्डार भरा-पूरा है। अवनीन्द्र बाबू के शिष्य कई कला-विद्यालयों ज्योति-स्तम्भ की तरह है और निरन्तर कला साधना मे सलग्न हुए जिसमे नन्दलाल वसु, अमितकुमार हलदार, आर चगताई, के वेंकटप्पा, शारदा उकील, समरेन्द्रगुप्त, मनीषडे, क्षितिन्द्र मजूमदार आदि थे।

बंगाल स्कूल और कलाकार

पुनरुत्थान काल का आन्दोलन श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा प्रारम्भ हुआ और देश मे भारतीय कला का पुन: डका बज उठा। उन्होने सम्पूर्ण देश को महान कलाकार दिये, इसमे कोई सशय नही। आज भी भारत मे जो कला-विद्यालय चल रहे हैं, उनमे ठाकुर परिवार के शिष्य या प्रशिष्य अधिक सख्या मे कलासाधना और प्रचार मे सलग्न है। बंगाल स्कूल प्रमुखत ठाकुर शैली का ही प्रतिनिधित्व करता है और इस शैली ने आधुनिक युग मे अपना विशेष स्थान ग्रहण किया है। बंगाल स्कूल के कलाकारो में सर्वप्रथम स्थान श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का है, जिन्होने भारतीय कला को देश-विदेशो मे आदर और सम्मान दिलाया है।

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर जो अब हमारे बीच मे नही है, आधुनिक भारतीय कला के अग्रणी कलाकार ठाकुर परिवार मे 1871 मे जन्मे माने जाते है। उन्होने अपनी आवाज उन चित्रकारो के विरुद्ध उठाई जो भारतीय कला को निम्न कोटि का मानते थे और पाश्चात्य कला सिद्धातो को श्रेष्ठ। उन्होने देश की कला को जागृति दी, सम्मान दिया, विस्मृत गौरव को पुन सिंहासनारूढ किया, नवीन कला युग का आरम्भ किया और नई प्रेरणा दी। उन्होंने कला मे 'वाश-पद्धति' आरम्भ की। उन्होने चित्रकला के माध्यम से भारतीयता का पाठ पढाया। अवनी बाबू की कला मे पूर्व शैलियो की कोई नकल नही, पाश्चात्य शैलियो का कोई सबल नही, परन्तु उनमें नया रूपान्तर, नया जागरण, सूक्ष्मताओ का नवीन निर्माण। भावो की गहरी अनुभूतियो और लोक-रजन भावनाओ की भारी भीड़ है। उन्होंने किसी भी क्षेत्र को अछूता नही छोडा। ग्राम्य जीवन, आदिवासियो जन-मानस के कार्य-कलाप, निस्वार्थ प्रेम, वात्सल्य, व्यक्ति चित्र और पशु-पक्षियो तथा प्रकृति-दृश्य आदि सभी इनकी तूलिकाओं द्वारा चित्रित हो चुके है। सभी पात्रों का अकन इन्होंने भावनाओं मे डूब कर किया था। भावो की बारीकियो का अकन जिसे कैमरा भी नही कर सकता, अवनी बाबू ने कुशलता पूर्वक किया। उनकी तूलिका मे इतना प्रभाव था कि अंतर्मन की सूक्ष्मता को खूबी के साथ उतारा। आपने कला सम्बन्धी काफी अध्ययन किया, रगो और रूपो की खोज की और कला के द्वारा सुदूर पश्चिम तक इनकी प्रशसा हुई और भारतीय कला का सिक्का दृढता पूर्वक जम गया। विश्व कवि रवीन्द्र ने अवनी बाबू के प्रति कहा है, "अवनी बाबू ने देश को आत्महनन से बचाया, देश की कला मे चेतना उत्पन्न कर जागृत करके एक नवीन युग का सुभारम्भ किया और कला के

द्वारा भारत को पतन के गहरे गर्त मे गिरने मे बचा लिया, जिससे वे देश के सर्वसम्मानीय व्यक्ति है।"

अवनीन्द्र बाबू ने आरम्भ मे यूरोपियन पद्धति से तैलचित्र बनाये किन्तु कलकत्ता आर्ट स्कूल के तत्कालीन प्राचार्य एव कला प्रणेता स्व श्री ए बी हैवेल के मार्गदर्शन एव प्रभाव से भारतीय पारम्परिक कला को पुर्नजिवित करने का प्रशसनीय कार्य किया। साथ ही पूर्वीकलाओ विशेष कर परशियन, चीनी एव जापानी कला परम्पराओ से प्रभावित होकर एक मिश्रित कलाधारा जिसे भारतीय कला का पुनर्जागरण काल माना जाता है आरम्भ की। वाश पद्धति से सोफियानी वधुमिल रग योजना मे लाभात्मक अलकारिक आकृतिया अजता सा रेखाकन इनकी कृतियो की प्रमुख विशेषता है। इन विशेषताओ को इनकी प्रसिद्ध कृतिया मेघदूत, उमर खैय्याम, अलिफ लैला, भारत माता शिप्यरक्षिता का दुमडाह, गणेश जननी, आदि मे देखा जा सकता ह जिनके लिए स्टेला क्रैमरिश ने कहा कि "अवनीन्द्र ठाकुर की कला उनके व्यक्तिगत अधिकार पर आधारित थी।"

अवनीन्द्र बाबू ने सम्पूर्ण जीवन कलकत्ता एव शातिनिकेतन मे व्यतीत किया आपकी एक लम्बी शिष्य परम्परा रही है जिन्होने बाद मे वर्षो मे भारत की विभिन्न कलासस्थाओ में जाकर आपकी कला धारा को प्रभावित किया। किन्तु आपकी कला मे व्याप्त त्रुटियों एव उधार ली हुई विभिन्न शैलियो से आपको देश के साथ-साथ बगाल मे भी आलोचना का सामना करना पडा फिर भी आप द्वारा प्रचारित कला आन्दोलन आज भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

नन्दलाल बसु

अवनी बाबू के पटू शिष्य श्री नन्दलाल बोस का जन्म बिहार मे 1883 मे हुआ एव ये आरम्भ से ही कला मे रुचि रखते थे। आप शातिनिकेतन मे कला विभाग के प्रमुख थे। आप भारतीय कला-गगन के सबसे अधिक प्रकाशमान तारे है। उनकी कला मे व्यापक अनुभूति पायी जाती है, कल्पना की उडान है और अकन में विधान की बहुमुखी प्रतिभा झाकती है। वे सतो की तरह रहते है मगर कला द्वारा भारत मे ही नही, विदेशो मे ख्याति अर्जित कर चुके है। वसु की कला मे अजन्ता की आत्मा पूर्णतया झाकती है। उनके चित्रो मे बौद्ध कला की एकात्मीयता है और परम्पराओं को आत्मसात करने की असीम क्षमता है। उन्होने सुपरिचित लोककथाओ को अपनी तूलिकाओ से उभारा है। पौराणिक विषय उन्होंने लिये अवश्य, मगर उनमे कोई सम्प्रदाय विशेष की छाप नही दिखाई देती। उन्होने भी अपने गुरु के समान किसी भी शैली की कोई नकल नही की बल्कि भारतीय कला के सर्वोत्तम रूपो को लेकर उनमे नवीन उच्च आदर्शो का समावेश कर मौलिक चित्र बनाये। बसु महोदय ने मध्ययुगीन शिल्प कला के सर्वोत्तम कला रूपो को ढूढ निकाला जिसका उपयोग

उन्होंने शिव सम्बन्धी गाथाओं के चित्रण क्षेत्र मे अत्यन्त खूबी के साथ किया। नन्द बाबू ने नये-नये कला रूपो का आविष्कार किया जो प्राचीन भारतीय शिल्प कला के प्रतिरूप मात्र नहीं है।

उनके प्रमुख चित्रों मे शिव का विषपान, सती, दुर्गा, बुद्ध और मेष, अर्जुन, युधिष्ठिर की स्वर्ग यात्रा, स्वप्न, नीरणापादली, गांधीजी की दाडी यात्रा, उमा की तपस्या, विरहणी मेघ आदि प्रमुख चित्र है जिसमे इनका तुलिका संचालन का वे विध्य रीति के विविध प्रयोग देखे जा सकते है। आपने भारतीय परम्परा के भित्ति चित्रण मे भी रुचि दर्शायी एव शातिनिकेतन के अतिरिक्त अन्य केन्द्रों पर भी आपके द्वारा निर्मित भित्ति चित्र आज भी सुरक्षित है। 1984 मे भारत मे आपकी याद मे शताब्दी वर्ष मनाया गया जिसमे आपकी कला को प्रकाशित एव प्रसारित कर पुन स्मरण किया गया। आपका स्वर्गवास 1967 मे हुआ इससे पूर्व आपको भारत सरकार ने पद्मभूषण से सम्मानित भी किया था।

यामिनी राय

इनका पूरा नाम यामिनीरंजन राय है। आपका जन्म 1887 ई मे बंगाल मे बेलियाटोरा ग्राम मे हुआ। बगाल मे जन्म लेने से वे ठाकुर शैली से प्रभावित हुए और अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्पर्क मे आये। आरम्भ मे ठाकुर शैली का अन्धानुकरण किया, परन्तु अन्त मे वे ऊब गये और पृथक् शैली मे चित्र रचना करने और नई शैली खोजने मे दत्तचित्त हो गये। यामिनी राय ने ठाकुर शैली से मुँह मोड़कर अब चित्र-कला के उन्मीलन तत्वो की खोज की है, जिनसे कृतित्व मे शक्ति, सौंदर्य एव जीवन आ जाता है। उनका ध्यान पटुआ लोक कला की ओर गया और वे कला साधन मे लीन हो गये। ढेरो चित्र बना डाले, परन्तु किसी ने भी उनकी सराहना न की। आर्थिक दशा इतनी गिर चुकी थी कि दो वक्त का खाना दुश्वार हो चुका था। फिर भी कला साधना में पूर्णतया सलग्न रहे। कला ने पलटा खाया और जब कुछ कला-पारखियों ने उनके चित्रो को देखा तो उन्होंने उनकी भूरि-भूरि प्रशसा की। इनकी कला वास्तविक भारतीय लोक कला है। उनकी रेखाएँ दृढ एव शक्तिशाली है कोमल कही नहीं। रग मिश्रण हीन, चमकीले और स्पष्ट है। उनके चित्रो के विषय है— किसान, बढई, लुहार, बादल, साधु-संत, सथाल, फकीर इत्यादि। वसु व अवनी बाबू ने भी लोक चित्र बनाये, परन्तु यामिनी राय को महत्त्व इसलिए दिया जाता है कि उन्होंने लोक शैली को लोक जीवन के माध्यम से आभिजात्य कला के क्षेत्र मे प्रमुख स्थान दिलाया। न्यूयार्क कला प्रदर्शनी से उनका इतना सम्मान हुआ कि समस्त कला-पारखी उनकी चर्चा करने लगे। इस तरह से लोक कला के संस्थापक देश विदेश के सम्मानित हुए कलागुरु राष्ट्रीय अकादमी ने उन्हे ताम्र पत्र पुरस्कार प्रदान किया।

———

12

आधुनिक भारतीय चित्रकला

(संक्षिप्त परिचय)

पिछले अध्याय में पुनरुत्थान की चित्रकला पर पूर्णतया प्रकाश डाला जा चुका है कि भारतीय कला को पश्चिमी छाप से हैवेल महोदय तथा अवनीन्द्र बाबू के सम्मिलित सहयोग से बचाया गया। ब्रिटिश नौकरशाही को भारतीय संस्कृति जैसी वस्तु का कोई ज्ञान न था और रस्किन जैसे विद्वानों ने भी उसकी तीव्र आलोचना की, परन्तु हैवेल और अवनीन्द्र बाबू के परस्पर सहयोग ने भारतीयों के सम्मुख एक और दृढ़ आत्म-विश्वास का नया दृष्टिकोण रखा कि वे भारतीय चित्रकला को अपनाए। उन्होंने एक नई क्रांति पैदा की जिसमें नयी शक्ति और निष्ठा का संचार हुआ। उस समय वैसी प्रेरणा, शक्ति और निष्ठा के गुणों की आवश्यकता तो थी मगर शीघ्र ही निस्तेज एवं प्रेरणाहीन हो गये। इसके कई कारण थे, पिछड़े हुए दृष्टिकोण का खतरा, उत्साही कलाकारों के पास अपर्याप्त उपकरण एवं सामग्री तथा भारतीयता और पश्चिमीकरण के वास्तविक अर्थ को हृदयगम करने की विफलता। अत जनता को कला में कोई रुचि न थी और न सरकार ने ही सांस्कृतिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया। कलाकारों में प्रोत्साहन की कमी आ गई और रुचिपूर्ण वातावरण मिट सा गया। जो थोड़ी सी रुचि बन गई वह रजवाड़ों की परिधि में कैद थी। फिर भी उदरपूर्ति का ही एकमात्र ध्येय चित्रांकन ही था, अत वहा भी अच्छी रुचि का अभाव ही रहा। भाग्यवश 1947 में भारत स्वाधीन हुआ और परिस्थितियाँ तेजी से बदली। अब आशा है कि स्वतन्त्र भारत में कला का नव जागरण होगा और कला विकसित होकर विश्व में अपना श्रेष्ठ स्थान बना लेगी।

आधुनिक भारतीय चित्रकला एक ओर अंग्रेजों की प्रेरणा से यथार्थ चित्रण में मशीनवत् लगी हुई थी तो दूसरी ओर टैगोर बन्धुओं के प्रयत्न से बाघ और अजन्ता शैली के पुनर्जीवन में खोई हुई थी। दोनों ही दिशाए नये और प्रबुद्ध चित्रकारों की आस्था से दूर हटने लगी। नये चित्रकारों को जहा पाश्चात्य शैली के अन्धानुकरण में गौरवहीनता का अनुभव हुआ, वहीं बौद्ध, मुगल और राजपूत शैलियों के दोहराने में भी संतोष नही मिला। उनका ध्यान अनुकरण एवं कौशल प्रदर्शन से हटकर मौलिक कृतित्व की ओर आकर्षित हुआ, जहाँ उसे अपनी निजी शैली में व्यक्तित्व अनुभूति के प्रकाशन का अवसर प्राप्त हो सके। ऐसे ही मूल तत्वों की खोज हुई जिनसे कृतित्व में शक्ति और सामर्थ्य प्रदान कर सके। कला के नये मूल्य स्थापित

हुए तथा फ्रांस की धरती से तैर कर आये हुए 'इम्प्रेशनिज्म', 'क्यूबिज्म' और 'रियेलिज्म' ने भारत की भूमि को स्पर्श किया। इस संदर्भ में रंगों और आकारों में एक नया अर्थ भर देने की प्रायोगात्मक लालसा ने आधुनिक भारतीय चित्रकला को नई राह दी।

बीसवीं सदी में भारतीय चित्रकला अपनी पूर्व प्रचलित,—'व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के स्थान पर सम्पूर्ण शैलीगत विशेषताओं' को परित्याग कर देती है। देश विश्व बंधुत्व के प्रयास में, विदेशों से सम्पर्क, सांस्कृतिक आदान प्रदान, विदेशी कृतियों का आगमन एवं प्रदर्शन भारतीय कलाकारों का विदेशों में कला अध्ययन हेतु जाना, आदि से विश्व कला के साथ कदम से कदम मिला कर चलने की एक नवीन रोशनी का अभ्युदय होता है। अंग्रेजों ने ब्रिटिश व यूरोपियन कला की तृतीय श्रेणी की प्रकृतियाँ अथवा उनके समकक्ष कार्य व भारतीय कला में गुलामी को अंकुरित करने हेतु बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, ग्वालियर आदि के आर्ट स्कूलों की स्थापना की व पूर्ण यूरोपियन पद्धति पर कला शिक्षा आरम्भ की। किन्तु भारतीय संवेदनशील कलाकार यूरोपियन चित्रों एवं चित्रकारों की नकल से दूर होते गये एवं स्वतन्त्र अभिव्यक्ति हेतु मार्ग खोजने में प्रयत्नशील हुए।

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारतीय पारम्परिक कला को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया किन्तु स्वयं पूर्व की कला के पुनर्जागरण के जाल में फंस गये। अवनीन्द्र की ही परम्परा को जीवित रखने का नन्दलाल बोस, सुधीर खास्तगीर आदि बंगाल स्कूल के कलाकारों ने भी थोड़ा प्रयत्न किया परन्तु ठाकुर परिवार के ही कविवर रबिन्द्रनाथ ठाकुर ने पूर्ण 'अभिव्यंजनवादी' रूपों में कलाकृतियाँ निर्मित कर यूरोपियन चित्रकार 'वान गाफ' की श्रेणी में स्थापित हुए। इसी परम्परा में शैलोज मुखर्जी का नाम भी महत्त्वपूर्ण स्थान पर रहा। गगनेन्द्रनाथ ठाकुर ने घनवाद को स्वीकार कर घनवादी रूपों के सेरो आदि का चित्रण शुरू किया। जिसका (घनवाद) बीसवीं सदी के आरम्भ में विकसित होकर पिकासो, ब्राक आदि यूरोपियन चित्रकारों द्वारा सदी का सबसे महत्वपूर्ण आन्दोलन हुआ। अमृता शेरगिल ने फ्रांस से अध्ययन करके भारतीय विषय-वस्तु का यूरोपियन चित्रकार गोगा से प्रभावित होकर चित्रण आरम्भ किया।

1947 में भारत की स्वतन्त्रता के साथ ही कला जगत में भी स्वतन्त्रता की नवीन लहर का शुभारम्भ होता है। अभिव्यक्ति की इस सदी में जितनी स्वतन्त्रता देखने को मिलती है इतनी इस देश में पहले कभी नहीं देखी गई। स्वतन्त्रता के पश्चात भारत सरकार ने स्वतन्त्र संस्कृति विभाग की स्थापना की गई जिसमें देश में एक 'राष्ट्रीय ललित कला अकादमी', नई दिल्ली में स्थापित की गई व इसी की सहचरी राज्यों में भी अकादमियों की स्थापना की जाने लगी। अकादमियों ने वार्षिक कला प्रदर्शनियां प्रकाशनों एवं अन्तर्राष्ट्रीय कला का आदान प्रदान आदि शुरू किया।

अकादमी कला एवं कलाकारों को संरक्षण देने लगी। इसके साथ ही देश में 'आर्ट सोसायटी' जैसे कला केन्द्र भी आरम्भ किये व कलाकारों ने भी विविध 'ग्रुप्त' में कार्य करने, विचारों के आदान-प्रदान एवं चित्र प्रदर्शन का आयोजन करना प्रारम्भ किया। बम्बई के प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप' के कलाकार 'सूजा,' मोहन सामन्त, रजा, आरा आदि ने भारतीय नवकला आन्दोलन को मार्ग दर्शन का प्रयास आरम्भ किया वही बम्बई कलाकारों का प्रमुख केन्द्र बना जिसमें हेब्बर, श्यावक चावड़ा हुसेन, बेन्द्रे, बद्रीनारायण, अलमेलकर, कुलकर्णी, पलसीकर पनिकर आदि अनेकों देश के वरिष्ठ कलाकारों ने नवीन आयामों में चित्रण आरम्भ किया। ये सभी भारतीय पारम्परिक रूपो से कहीं न कही बन्धे रहने मे विश्वास करते थे किन्तु इनमें से किसी ने भी पारम्परिक विषय-वस्तु, रंग योजना अथवा रेखांकन से हट कर प्रयोगात्मक रूपों को नहीं अपनाया।

पिछले दो दशकों में भारतीय समसामयिक कला ने 'अन्तर्राष्ट्रीय कला' का रूप लेकर नवीन ताजगी प्रदान करने का प्रयास किया है। बड़ोदा, बनारस शान्ति निकेतन, लखनऊ आदि महत्त्वपूर्ण विश्वविद्यालयों में 'फेकल्टी ऑफ फाइन आर्ट' की स्थापना हुई। बड़ौदा में श्रीनारायण श्रीधर बेन्द्रे के प्रयास से भारतीय कला में युवा चित्रकारों को नवीन रूपो से साक्षात्कार करने का अवसर प्रदान किया जिसे श्री सुब्रमण्यम, एवं श्री शखू चौधरी ने आगे बढ़ाया। शान्ति निकेतन मे श्री दिनकर कौशिक, श्रीराम किंकर बस आदि ने महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया, मद्रास में के. सी. एस. पनिकर ने भी दक्षिण भारतीय कलाकारों को इस महत्त्वपूर्ण कार्य मे मार्ग दिखाया। बड़ोदा से शिक्षित गुलाम रसूल सतोष, शान्तिदेव, ज्योति भट्ट, विनोद शाह, जयराम पटेल, गुलाम शेख आदि ने भारतीय कला जगत मे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। अब दिल्ली कलाकारों का भी केन्द्र बन गया जहां भारत के अनेक वरिष्ठ कलाकार कार्य कर रहे है। जे. स्वामिनाथन, सतीश गुजराल, कृष्ण खन्ना, अम्बादास रामकुमार बाल चावड़ा, तैयब मेहता, जे सुल्तान अली, पी. टी. रेड्डी, विरेनडे, लक्ष्मण पै, लक्ष्मा गौड जहाँगीर साबा वाला, अकबर पदमसी रणवीर विष्ट, ओम प्रकाश, जगमोहन चोपडा आदि अनेकों चित्रकारो ने भारतीय समसामयिक कला के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह की है।

पिछले एक दशक में भारतीय कला मे युवा पीढ़ी के अनेको कलाकार अपनी रचनाधर्मिता एवं प्रयोगवादी रूपो से देश में कला जगत की *बागडोर संभालने* हेतु प्रस्तुत हुए हैं। जिस लम्बी कतार मे कुछ महत्त्वपूर्ण कलाकार उभर कर आये है वे कलाकृतियों के माध्यम से पहचाने जाते हैं ऐसे चित्रकार है—विकाश भट्टाचार्य, गणेश पाइन, परमजीतसिंह, सूर्य प्रकाश, अनुपम सूद, जयकृष्ण अग्रवाल, धीरज चौधरी, प्रकाश करमाकर, जयन्त पारीक, मनु पारीक, मोहन शर्मा, सुरेश शर्मा, एम. आर. सुवर्ण, नरेननाथ, रामेश्वर ब्रूटा, अर्पितासिंह, एरच हकीम, शुभप्रसन्न, शैल

चौयल, शब्बीर हसन काजी, विद्यासागर उपाध्याय, लक्ष्मीलाल वर्मा, महेन्द्र कुमार शर्मा, सचीदानन्द नागदेव, हरिदासन, वासुदेवन आदि अनेकों युवा कलाकार आज व्यक्तिगत अभिव्यक्ति द्वारा सुन्दर कलाकृतियों के निर्माण में लगे हुए हैं। जिनके चित्र देश में होने वाली विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनियों में प्रदर्शित होते रहे हैं। ये सभी चित्रकार अति यथार्थवाद, घनवाद, आमूर्त तान्त्रिक कला आदि अनेकों रूपों, वादों एवं माध्यमों में कार्य कर रहे हैं।

यामिनीराय

भारत में स्वतन्त्रता से पूर्व नवीन कला प्रवृत्तियों का विकास आरम्भ हो गया जिसमें भारत को विश्व कला से जोड़ा गया। यामिनीराय बंगाल के वे कलाकार थे जिन्होंने बंगाल की पट्ट चित्रण लोक कला परम्परा को नई दिशा प्रदान की। यामिनी राय का जन्म 1881 में हुआ एवं कलकत्ता आर्ट स्कूल में कला शिक्षा प्राप्त की। अवनीन्द्र बाबू के प्रभाव में आपने टाकुर शैली में भी चित्रांकन किया साथ ही आपने यथार्थवादी चित्राङ्कन में भी रुचि दर्शाई। किन्तु उनको इनमें विशेष आकर्षण न दिखाई देने से शीघ्र ही बंगाल के पट चित्रों की ओर अग्रसर हुए। सरल, स्पष्ट, ठोस एवं सुभावने पट्ट चित्रों को आपने भारतीय परिवेश में चित्राङ्कन आरंभ किया। आपकी कृतियां न ही पाश्चात्य अनुकरण हैं और न ही टाकुर शैली का खोखलापन बंगाल लोक कला के प्रतीकों को नवीन वातावरण व दीक्षा प्रदान करने का कार्य आपने किया। चित्रों का रेखाकन, संयोजन एवं रंग योजना भी बंगाल पट्ट चित्रों के समान ही टेम्परा एवं चटकिली है। आपके प्रमुख चित्रों में राधा, कृष्ण और बलराम, गणेश-पार्वती नारियां, नृत्यांगनाएं, संथाल नृत्य, जोसेफ और ईसा हैं। आपका 1972 में स्वर्गवास हो गया।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861–1941)

विश्व के प्रसिद्ध बंगला कवि गुरुवर रविन्द्रनाथ ठाकुर शांति निकेतन में समर्पित रहे हैं। रविन्द्र संगीत, साहित्य के साथ वृद्धावस्था में चित्रकला की ओर आकर्षित हुए। कविताओं के मध्य, खाली स्थानों पर सदैव चित्रण में ही समय व्यतीत करने लगे। आपने कभी व्यवस्थित कला शिक्षा नहीं ली किन्तु आप विश्व की कला से सदैव सम्पर्क में रहे व शान्तिनिकेतन का कला विभाग भी महत्त्वपूर्ण कला केन्द्र आपके संरक्षण में पनपा। आप कला में किसी नियम में बंध रह कर कार्य नहीं करना चाहते थे। क्राम के 'बानगाग' की तरह आपकी कृतियों में अभिव्यक्ति को महत्त्व दिया गया है यदि आप पुष्प का चित्रण करना चाहते तो पुष्प मसल कर अथवा पत्तियां से सीधा रंग कागज पर भर देते थे। आपने यद्यपि चित्रांकन जीवन के उतार में स्वीकारा किन्तु आज हमें उनकी असंख्य कृतियां देखने को मिलती हैं। जिसमें विश्व के किसी भी कलाकार का प्रभाव नहीं देखा जा सकता आपको पालक्ली, एडवर्ड मुंश आदि के समकक्ष रखा जाता है। भारतीय आधुनिक कला आन्दोलन में आप प्रथम हस्ताक्षर माने जाते हैं। आपकी कृतियों में रेखांकन की दृढ़ता, आकृतियां

का अनगढ सौन्दर्य, रगतो का अव्यवस्थित प्रयोग सयोजन की पारम्परिकता से दूरी आदि आपकी कला की विशेषताएँ हैं। अत आपकी कला के लिए यह कहना कि पागल व्यक्ति की कला है सर्वथा अनुपयुक्त एव अन्याय होगा। आपके शब्दो मे "मेरे चित्रों का जन्म (सृजन) किसी शिल्प कुशल अनुशासन या परम्परा मे नही हुआ है और वे जान बूझ कर की गई किसी वस्तु की अभिव्यक्ति का प्रयास नही है।"

अमृता शेर गिल—अमृता का जन्म 1913 मे हगरी के बुडापेष्ट नगर मे हुआ पिता लाहोर के सिक्ख धनिक थे एवं माँ हगेरियन। आरभिक शिक्षा आपने इटली मे अर्जित की तत्पश्चात कला की व्यवस्थित शिक्षा पेरिस में ली जहाँ आपको विश्व के महान् कलाकार गोगिन, वानगाज आदि की कलाकृतियों ने प्रभावित किया। व साथ ही पेरिस जो विश्व का तत्कालीन प्रथम कला केन्द्र था के वातावरण मे रहकर कलाकृतियाँ निर्मित करनी आरम्भ की व 1931 में प्रथम कला प्रदर्शनी आयोजित की जिसमे आपको पर्याप्त ख्याति मिली तत्पश्चात 1934 में भारत मे आ गई। 1934 मे ही आल इडिया फाईन आर्ट एण्ड क्राफ्ट सोसायटी नई दिल्ली से, भारतीय लडकिया, नामक चित्र पर स्वर्ण पदक से सम्मानित किया तत्पश्चात् भारत पर-भ्रमण पर निकल गई व अजन्ता के कला केन्द्र देख कर प्रभावित हुई।

भारत आगमन पर यहाँ के ग्राम्य जीवन गरीबी, जरजरावस्था, धार्मिक पृष्ठ-भूमि से प्रभावित हुए बिना न रह सकी किन्तु उनकी मौलिक चित्राकन पद्धति को छोडा नही। मगल कार्य, उत्सव, त्यौहार आदि के चित्र भी आपने खूब बनाये। आपके चित्रो के रग, वेशभूषा, संयोजन आकृति रचना पूर्णरूपेण भारतीय है जिसमें आकृतियो का सरलीकरण रगतो का वैविध्य, सयोजन की मौलिकता देखी जा सकती है। आपके प्रसिद्ध चित्रो मे वधू का शृंगार, नीलवसना, त्रावणकोर के बालक, गणेश पूजा आदि हैं। जिसमे से कई चित्र दिल्ली की आधुनिक कला दीर्घा मे देखे जा सकते हैं।

राजस्थान की आधुनिक चित्रकला

राजस्थान भारतीय कला के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। राज-स्थानी लघु चित्रण परम्परा विश्वविख्यात है किन्तु बीसवीं सदी से पूर्व ही सामन्तो के पतन के साथ-साथ कला का भी पतन हो गया व पारम्परिक कला केवल पूर्व चित्रों की नकल करने तक सीमित हो गई। इस सदी मे पारंपरिक कला में जिन कलाकारो ने उल्लेखनीय कार्य किया उनमें श्री कृपालसिह शेखावत, श्री बी० सी० गाग्याल, श्री गोवर्द्धनलाल जोशी, श्री रामगोपाल विजयवर्गीय व श्री देवकीनन्दन के नाम उल्लेखनीय हे जिन्होंने शान्ति निकेतन मे कला शिक्षा प्राप्त कर राजस्थान की लघु चित्र शैलियो मे नवीन रूप देने का प्रयास किया। उनमे श्री कृपालसिह ने पारंपरिक सयोजन व आकृतियाँ एव रग योजना मे यथार्थता, मोफियानी रग योजना व अजन्ता भित्ति चित्रों का रेखाकन अपने चित्रो मे प्रस्तुत किया इसी प्रकार श्री

गोवर्द्धनलाल जोशी (बाबा) ने अपने चित्रो की विषय वस्तु भील संस्कृति मे भील मानवाकृतियो से ढूंढ कर अभिव्यक्ति दी, श्री देवकीनन्दन शर्मा ने पक्षी चित्रण मे मुगल चित्रकार मंसूरअली के समकक्ष स्थान बनाने का प्रयास किया। अब राजस्थान मे यूरोपियन यथार्थवादी चित्रण का भी शुभारंभ स्वतन्त्र व्यक्ति चित्रो, दैनिक जीवन के विषयो आदि मे होने लगा। श्री भूरसिंह शेखावत, श्री द्वारका प्रसाद शर्मा, श्री भवानीचरण गुई व श्री परमानन्द चोयल ने यथार्थ अंकन मे महारत हासिल की। लेण्डस्कोप धनिकों व प्रतिष्ठित व्यक्तियों के व्यक्ति चित्र खूब बनाये।

पिछले एक दशक मे राजस्थान के कला जगत में जो नवीन प्रकाश दिप्तमान हुआ है वह इस सदी का श्रेष्ठ समय कहा जा सकता है। आज राजस्थान की युवा प्रतिमाएँ अपनी नवीनतम रचनाओ के साथ राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राज्य का प्रतिनिधित्व कर रही है। इस कार्य मे उदयपुर विश्वविद्यालय के कला विभाग का महत्त्वपूर्ण योगदान है जिससे कला अध्ययन कर निकले लक्ष्मी लाल वर्मा, शैल, चोयल, शब्बीर हसन काजी, विद्यासागर उपाध्याय किरण मुंडिया, चरण शर्मा, हर्ष छाजेड, सुभाष मेहता, जवान सिंह, जगदीश सोनी, रेखा भटनागर आदि उल्लेखनीय हैं जिन्होंने देश विदेश मे विविध प्रदर्शनियाँ आयोजित की है व राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय पुरस्कारो से सम्मानित हुए है। इसके साथ ही अजमेर एवं वनस्थली से भी राज्य के कुछ महत्त्वपूर्ण युवा चित्रकार दीक्षित हुए है। वही राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट जिससे राज्य को अत्यधिक आशा करनी चाहिये कि उपलब्धी नगण्य सी है।

इन युवा चित्रकारो के साथ-साथ उदयपुर विश्वविद्यालय के श्री, परमानन्द चोयल श्री सुरेश शर्मा, श्री ओम उपाध्याय, वनस्थली के भवानीशंकर शर्मा, अजमेर के श्री आर. वी साखलकर, श्रीराम जायसवाल, दीपिका गुई, जयपुर के श्री मोहन शर्मा, महेन्द्रकुमार शर्मा, ज्योतिस्वरूप, अब्दुल करीम आदि का भी नाम उल्लेखनीय है जिन्होने देश व विदेश के महत्त्वपूर्ण कला संस्थाओ मे अध्ययन कर आज कला जगत मे सम्मानित पद पर है।

दुर्भाग्य की बात है कि राजस्थान जिसे मूर्तिकारो का घर कहा जाता है आज आधुनिक काल मे बहुत पीछे है। इक्के दुक्के कलाकारो के अतिरिक्त एक भी राष्ट्रीय स्तर का शिल्पकार नही हुआ जिस पर राज्य गर्व कर सके यद्यपि जयपुर के मूर्ति मोहल्लो मे आज भी अनेकों परिवार इस कार्य मे रत है तथापि वे सभी बाजारू देवी-देवताओं के कलेण्डर के समकक्ष शिल्प निर्माण से अधिक कुछ नही कर रहे है, शिल्पकारो मे श्री गोवर्द्धनसिंह पवार व श्रमती उषा रानी हूजा के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री पवार के 'समेण्ट कास्ट' के उभरते अमूर्त काफी चर्चित रहे है। इनके साथ राजेन्द्र मिश्रा के शिल्प का प्रशसनीय प्रयास था।

राजस्थान की कला को अग्रगण्य स्थान दिलाने मे राज्य की कला संस्था लगभग 38 का महत्त्वपूर्ण योगदान है जिसने अपने सदस्य चित्रकारो की कृतियो को

देश के विभिन्न भागों मे प्रदर्शनियाँ ग्रायोजित कर प्रशसा ग्रजित की है। इसके ग्रतिरिक्त राज्य मे प्रोग्रेशिव ग्रारटिस्ट ग्रुप ग्रान तूलिका, कलावृत, ग्ररुणोदय केनवास कला भारती जैसी ग्रनेकों सस्थाएं भी समय-समय पर प्रदर्शनियां ग्रायोजित करती रहती है। इन सबके साथ सन् 1958 मे स्थापित राज्य ललित कला ग्रकादमी का भी महत्वपूर्ण योगदान (जितनी ग्राशा की जाती है उतना नही) रहा जिसने प्रदर्शनियाँ हेतु ग्रार्ट गैलेरी सेमिनार, एकल प्रदर्शनियाँ व वार्षिक प्रदर्शनियाँ ग्रायोजित की हैं व राज्य में नवकला ग्रान्दोलन हेतु सुन्दर वातावरण बनाया है। गर्व की बात है कि ग्राज राज्य मे राष्ट्रीय एवं ग्रंतराष्ट्रीय स्तर के कलाकारो की कृतियो का सुन्दर सग्रहालय राज्य ग्राधुनिक कलादीर्घा की स्थापना रविन्द्र मच पर किया है जो निश्चित रूप से युवा पीढ़ी एवं ग्रध्ययन रत कला विद्यार्थियो हेतु मार्ग दर्शक बनेगा एव राज्य के प्रवुद्ध दर्शको के लिए महत्वपूर्ण केन्द्र सिद्ध होगा। कला ग्रध्यापन मे राजस्थान स्कूल ग्रॉफ ग्रार्ट ग्राज एक महत्वपूर्ण केन्द्र है जिसमे कला के विवध कार्यरत है एव ग्रच्छे विद्यार्थी भी राजस्थान में यहा से निकले है।

———

13

भारतीय मूर्तिकला

(संक्षिप्त इतिहास)

भारत एक धर्म प्रधान देश है। इसके कण-कण में देव तत्त्व भरे हैं। इस देश के निवासी धर्म मे आस्था रखने के कारण पूजा की अनेक विधियाँ अपनाते है। इनमे एक भक्ति का रूप है, 'मूर्ति-पूजा'। इस देश मे अनादिकाल मे मूर्तियो का निर्माण होता आया है। प्रारम्भ मे ये मूर्तियाँ मिट्टी और पत्थर की बनती थी, परन्तु सभ्यता के साथ-साथ अनेक प्रकार की धातुओ मे मूर्तियो का निर्माण होने लगा। ये धातु है—सोना, चाँदी, पीतल, ताँबा, काँसा आदि। इनका मिश्रण करके सुन्दर एव टिकाऊ मूर्तियाँ तैयार की जाती हैं। इसके अतिरिक्त काँच, मोम, लाख, गधक, हाथी-दात, सीग, शख और लकडी आदि की भी बनती है। इन वस्तुओ को स्वाभावानुसार गढाई करके, खोद कर, पीट कर, उभार कर मूर्तियो का निर्माण किया जाता है। मूर्ति का उद्देश्य पूजा मे रखना ही नही होता वरन् व्यापक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी इनका निर्माण होता है। इसके निर्माण के उद्देश्य है—1 स्मृति को जीवित रखना, 2 अमूर्त को मूर्त रूप देना, 3 किसी भाव को आकार देना। भारतीय पाँच ललित कलाओ मे मूर्ति कला भी एक महत्त्वपूर्ण कला है।

अन्य भारतीय कलाओं की तरह मूर्ति कला का भी एक विस्तृत इतिहास है। इस कला-इतिहास का विस्तृत विवेचन तो करना कठिन है, परन्तु थोडी जानकारी के लिए इसका सक्षिप्त रूप दिया जा रहा है, जिससे उसके पक्ष मे प्रारम्भिक जानकारी हो जाये। मूर्तिकला के इतिहास को हम दस भागो मे विभाजित कर सकते है :–

1. प्रागैतिहासिक काल—मोहनजोदडो व हडप्पा।
2. वैदिक काल।
3. शैशुनाग तथा नन्दकाल।
4. मौर्यकाल।
5. शु गकाल।
6. कुषाण—सातवाहन काल।
7. गुप्तकाल।
8. पूर्व-मध्यकाल।
9. उत्तर-मध्यकाल।
10. अर्वाचीन एव वर्तमान काल।

प्रागैतिहासिक काल
मोहनजोदडो एवं हड़प्पा

प्रागैतिहासिक व मोहनजोदडो और हड़प्पा की मूर्तिकला का यह युग ईसा पूर्व 12वी सहस्राब्दी से लेकर ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी तक का है। प्रारम्भ से मनुष्य अनगढ़ पत्थरो के औजार बनाता, फिर उसने उन्ही औजारो को चिकने व चमकदार बनाये। उसके पश्चात् ताम्र धातु की खोज की और काम मे लेने लगा। कांसे का पता लग जाने पर तांबे के साथ उसे मिलाकर काम मे लेने लगा। कुछ काल के पश्चात् लोहा भी मिल गया और मानव ने उसका उपयोग भी कर लिया। तात्पर्य यह है कि ज्यों-ज्यो धातुओ की खोज होती गई, युग मे परिवर्तन आता गया तथा निर्माण कला अधिक व्यापक होती गई। मूर्तिकला के प्रारम्भ में कुछ उदाहरण ऐसे प्राप्त हुए है जिन्हे मूर्तिकला के इतिहास का जन्मदाता कहा जा सकता है। इनमे पहला हाथी-दांत पर खुदा हुआ एक हाथी का चित्र है—दूसरा, एक विशाल सींग पर उभारा हुआ अश्व तथा तीसरा हड्डी पर टट्टू का रूप। ज्यों-ज्यो सभ्यता ने करवटें ली, यह कला विकास के चरण पर बढती गई। मानव धातुओ का उपयोग अपने बुद्धिबल से लेता गया और फलस्वरूप इसमे उत्तरोत्तर प्रगति हुई। भारतीय मूर्तिकार ने स्मृति को जीवित रखने का उद्देश्य छोड़कर यथा भावो को मूर्त रूप देने पर अधिक जोर दिया क्योकि दूसरे उद्देश्यों मे धार्मिक भाव है और यही उसका चरम लक्ष्य था, अतः मानव ने स्वर्ग-सा आनन्द लेने की अनुभूति को अधिक श्रेयस्कर माना।

प्रागैतिहासिक काल मे मूर्तियां निर्माण का जो रूप है, उसका पता हमे सिंधु घाटी के मोहनजोदडो और हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त वस्तुओ मे लगता है। प्राप्त वस्तुओ मे तांबे, मिट्टी और पत्थर की मूर्तियाँ है तथा जिन पर बैल, हाथी, बाघ, गैंडा अथवा पीपल के पत्तो की अनेक आकृतियां है। मोहन-जोदडो और हड़प्पा के नगर 3000 ई. पूर्व के है। उस सभ्यता का मानव कितना सभ्य था इसका पता हमे उसकी खुदाई से प्राप्त वस्तुओ से होता है। नगरो का निर्माण भव्य था, पक्की ईंटों से मकान बनते थे, महीन सूती वस्त्र बनाते थे, धातुओ से सुन्दर गहने बनाते थे तथा अपने उपयोगार्थ अनेक प्रकार के मिट्टी के बर्तनो का निर्माण करते थे, फिर उन्हे पकाकर पक्के बनाते और रग देते थे। यह सभी उदाहरण उनकी उन्नत सामाजिक व्यवस्था का है। मोहनजोदडो की सभ्यता मे मिट्टी की मूर्तियो के अतिरिक्त धातुओ का भी प्रयोग था। पशु-पक्षियो की आकृतियो के अतिरिक्त मानवकृतियाँ भी है जिन्हे देवी-देवताओं की मूर्तियो की संज्ञा दी है। ऐसी मूर्तियो मे एक मूर्ति पृथ्वी देवी की तथा एक काली देवी की मूर्ति मिली है। मोहनजोदडो की कांसे की एक

प्रसिद्ध नर्तकी की मूर्ति दिल्ली के संग्रहालय मे सुरक्षित है। हड़प्पा से मिले पुरुष धड़ शरीर गठन, आकृति निर्माण व माध्यम का श्रेष्ठ रूप है जिसके यथार्थ रूपों का निर्माण पाश्चात्य श्रेष्ठ शिल्पों मे किसी भी स्तर पर कम नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि उस समय दो प्रकार की मूर्तियां, एक सांस्कृतिक तथा दूसरी लोक-कला एवं निम्न वर्ग की बनती थी। धातु प्रयोग से यह प्रकट होता है कि धातु ढालने की कला भारतीयो ने बहुत प्राचीनकाल मे सीख ली थी। मोहनजोदड़ो की कांसे की नर्तकी की मूर्ति इस क्षेत्र मे लासानी मानी जाती है। इस नग्न नर्तकी मूर्ति के अतिरिक्त दूसरी एक प्रसिद्ध योगी की मूर्ति है जो पद्मासन लगाये ध्यानावस्थित है। इसके अतिरिक्त अक्षर एवं लेखन लिपियों के लिए बनाये ढले ठप्पे भी मिले हैं। मोहनजोदड़ो मे प्राप्त मुद्राओं पर अंकित नन्दी से प्रकट होता है कि शैव मत को उस समय प्राथमिकता रही होगी, क्योंकि पशुपति शिव के वाहन नन्दी को मानकर ही कलाकारों ने उसका उपयोग किया है। इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के

रेखांकन—सिन्धुघाटी

सुन्दर बर्तन जिन पर भांति-भांति के आलंकारिक चित्र अंकित हैं, सिन्धु घाटी की खुदाई मे मिले आभूषण, सुन्दर आकृतियो के मिट्टी के दीवारें, बैलगाड़ी, मिट्टी की मूर्तियां, धातु मे अलंकारिक औजार आदि सब भारतीय सभ्यता के कला विकास के उदाहरण है।

वैदिक काल

भारत मे आर्यों का आगमन हुआ जो ईश्वर तथा प्रकृति की पूजा करते थे। वेदों में मूर्तियो का उल्लेख मिलता है। कई लोगों ने लिखा है कि उस समय मूर्तियां नहीं बनी थी। डा कुमार स्वामी ने लिखा है "उस समय मूर्तियां नहीं बनती थी।" मगरोंकस उत्तम विद्वान ने लिखा है—"उस काल मे मूर्तियों का निर्माण होता था।" इस राय से भारत की राय मिलती है। आर्यों की सभ्यता से यह तो स्पष्ट ही है कि वे मूर्ति-पूजक थे, अतः मूर्तियो का निर्माण होता था। इन्द्र की पूजा भी उस समय होती थी, अतः इन्द्र की मूर्तियां कई स्थानों पर मिली हैं। उस समय में

काष्ठ, मिट्टी एव ताम्बा आदि से मूर्तियां बनाने की प्रथा प्रचलित थी। रामायण व महाभारत काल में भी मनुष्य उच्चतम सीढी पर पहुँच गया था उस समय में सोने, चाँदी, ताम्बा, मिट्टी, हाथी-दांत, पत्थर आदि से कई देवी-देवताओं की मूर्तियों का निर्माण करते थे।

रामायण काल में आर्य देवताओं की पूजा करते थे और उन्ही की मूर्तिया बनाते थे। इन्द्र और विष्णु की मूर्तियां मन्दिरो में थी जिनकी पूजा की जाती थी। देवियों की भी पूजा होती थी। अभी भी देवी-देवताओं की कई मूर्तियां धरती के गर्भ में दबी हैं, यदि खुदाई का कार्य किया जाये। रामायण में उल्लेख मिलता है कि उस समय सभी प्रकार की धातुओं की मूर्तियां बनती थी। राम द्वारा जब अश्वमेध यज्ञ किया गया था, तब सीतादेवी की सोने की मूर्ति बनाकर उनकी अनुपस्थिति मे यज्ञ के स्थान पर प्रस्थापित की गई थी। महाभारत काल में भी लोग हाथी-दांत, पत्थर, कांसा, पीतल, ताम्बा, मिट्टी, हड्डियों आदि की मूर्तियां बनाते थे। जिन देवी-देवताओं की पूजा होती थी उनके अतिरिक्त और भी मूर्तियां बनती थी। महाभारत काल में एक प्रसंग एकलव्य का आता है जो गुरु द्रोणाचार्य के पास धनुर्विद्या सीखने गया था, परन्तु गुरु ने उसे शूद्र जानकर शिक्षा देना स्वीकार नहीं किया। एकलव्य ने गुरु की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उसे गुरु समझ कर उसके सामने शस्त्राभ्यास किया और निपुणता प्राप्त की। महाभारत काल की मूर्तिकला रामायण काल से कुछ निम्न कोटि की थी।

शैशुनाग तथा नन्दकाल

धार्मिक अभ्युदय के साथ-साथ भारत मे कला का विकास पाया जाता है। धार्मिक विषयों को मानुषिक रूप देने की प्रथा चल पडी और यक्ष, नाग तथा देवताओं की मूर्तियां बनने लगी। इस काल को शैशुनाग काल अथवा पूर्व-मौर्यकाल कहते हैं। खोज से यह पता लगा है कि इस काल मे कुछ इनी-गिनी मूर्तियां ही प्राप्त हो सकी हैं। यह काल 720 ई. पू. से 320 ई. पू. तक माना जाता है। बौद्धकाल मे उत्तरी भारत में लगभग 15 राज्य थे, जिनमे तीन राज्य बड़े वैभवशाली थे—1. मगध, 2. मालवा, 3. कौशल। इस समय की कुछ मूर्तियां मिली है जो शैशुनाग तथा नन्द वंश के समय की कही जाती हैं। अजात शत्रु नन्द वंश का प्रधान राजा था जिसकी एक मूर्ति मथुरा के पास एक प्राचीन ग्राम परखम से प्राप्त हुई जो आजकल मथुरा के संग्रहालय मे सुरक्षित है। अजातशत्रु शैशुनाग वंशी भगवान बुद्ध का समकालीन था। 618 ई. पू में उसकी मृत्यु हुई थी।

पटना से प्राप्त दो मूर्तियां मिली हैं जिनमें पहली अजातशत्रु के पौत्र अजउदयी की है, जिसने पाटलीपुत्र बसाया था और दूसरी उसके बेटे नन्दिवर्धन की है। उपर्युक्त तीनो मूर्तिया मानव आकृति से कुछ बड़ी हैं। शैली मे एक-सी जान पड़ती है तथा वास्तविकता के सन्निकट हैं। इसी से सम्बन्धित तीन मूर्तियां

मिली है जो मानव कद मे बडी ही है । इनमे दो नारी आकृतिया है और एक पुरषाकृति । पहली स्त्री-मूर्ति मथुरा मे मनसा देवी से पूजी जाती है । दूसरी, जो वेस नगर मे प्राप्त हुई और अब कलकत्ता सग्रहालय मे है तथा तीसरी पुरुष-मूर्ति मथुरा के पास बरोद ग्राम में मिली । वह भी मथुरा के सग्रहालय में है । इन सभी मूर्तियो की शैली प्राय एक ही-सी है । इनके निर्माण काल तथा विषय के सम्बन्ध मे कई विवाद हैं । कुछ विद्वान इनका समय ई पू 600 बताते है और उन्हे शैशुनाग वंश के देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ कहते है । कई उनको यक्ष-यक्षिणियों की मूर्तिया कहते हैं । राजा नन्दिवर्धन ने राज्य विस्तार की दृष्टि से कलिंग जीता था और वहा से अपने साथ कुछ जैन मूर्तिया भी लाया था । इससे बौद्ध एवं जैन काल मे मूर्तिकला निर्माण का पता चलता है । ये मूर्तिया असस्कृत, खुरदरी तथा पॉलिश से शून्य प्रतीत होती हैं ।

मौर्यकाल (मौर्यकालीन मूर्तिकला)

मौर्य काल 322 ई. पू से 185 ई. पू. का है । शैशुनाग वंश के पश्चात् नंद वंश का प्रबल साम्राज्य हुआ, परन्तु उस काल में अत्याचारो की पराकाष्ठा हो चुकी थी चन्द्रगुप्त मौर्य ने चाणक्य की सहायता से पजाब से यूनानियो को भी भारत से निकाला और बड़ी सेना लेकर मगध के राजा नन्द को हराकर उत्तरी भारत का प्रबल शासक बन गया । उसने भारत में मौर्य वश की स्थापना की । चन्द्रगुप्त के समय मे वास्तुकला की महान् उन्नति हुई है । उस समय के शिल्पकार तक्षणकला में अत्यन्त निपुण थे । उस समय के कलाकारो ने यक्ष-यक्षिणी की मूर्तिया, पाषाण स्तम्भों आदि का निर्माण किया था । उन कलाकारों द्वारा प्रस्तर खण्डो पर की हुई पॉलिश सब प्रकार की बाधाओ के रहते हुए आज भी बिल्कुल नई प्रतीत होती हैं— उस काल के शिल्प मे भावो की मात्रा अधिक है । यक्ष मूर्तियों के अतिरिक्त पशुओं के नमूने भी मिलते है । स्तम्भो पर उच्च कोटि का कार्य किया गया है । इससे यह ज्ञात होता है कि मौर्य कालीन प्रस्तर स्तम्भ ससार की मूतिकला में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं ।

चन्द्रगुप्त का पौत्र सम्राट अशोक था । जिसकी गणना भारत के महान् शासको मे ही नही, विश्व के महान् शासको मे से एक है । अशोक बौद्धधर्मावलम्बी था । उसने अपने राज्यकाल मे कई स्तूप, विहार एव शिलालेख बनवाये तथा कई पाषाण, स्तम्भो का भी निर्माण करवाया उसके समय के बनवाये अब तक 17 स्तम्भो का पता चला है । ये स्तम्भ बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि मे अब भी देखे जा सकते हैं तथा भारत के बाहर नेपाल मे भी एक स्तम्भ है । एक ही पाषाण के टुकड़े से बनी ये लाटें तक्षण कला का सुन्दर उदाहरण देती है । ये चुनार पत्थर की हैं जिसमें नीचे मे मोटाई तथा उत्तरोत्तर ऊपर की ओर पतलापन दिखाया गया है । ऊपर के सिरे के भाग पर 'परगहे' बनाये गये हैं जिन पर विभिन्न आकृतियाँ एव

नमूने बने है। इन स्तम्भो की दस्तकारी तथा तक्षण कला इतनी उन्नत है कि देखकर आश्चर्य ही होता है। ये स्तम्भ 30 से 40 फुट ऊँचे तथा वजन मे 1200 मन कहे जाते है। सारनाथ की लाट (सारनाथ स्तम्भ) तक्षण कला का एक अभूतपूर्व उदाहरण है। सिर पर चार शेर पलथी मारे बैठे है। नीचे गोलाकार चौकी है। उस पर उभार कर बैल, घोड़ा, हाथी तथा शेर की आकृतियाँ बनाई गई है। ऊपर के चार शेर चारों दिशाओं की ओर मुंह किये है। इनकी आकृति बहुत सुन्दर और सजीव है। दो पशुओं के बीच में धर्म चक्र अंकित किया गया है। सारनाथ का यह सिंह-मस्तक शक्ति और भाव की अभिव्यक्ति में सर्वथा बेजोड़ है। कलाकार की मेधा ने पत्थर में जान डाल दी है। सिंह शक्ति के प्रतीक है, दौड़ते पशु गति के और चक्र मानव भाग्य की बनती-बिगड़ती परिस्थितियों के। इनका आधार अधोमुखी पंखुड़ियों वाला कमल या घंटा है और सारी रचना ऊपर के धर्म चक्र का आधार है। अशोक स्तम्भ का यह अद्भुत मस्तक दुनियाँ की मूर्तिकला मे अपना विशेष स्थान रखता है। स्तम्भ पर उच्च कोटि की पॉलिस की गई है। कल्पना और कला का इतना अच्छा समावेश हुआ है कि देखते ही बनता है। उसमे मूर्तिकार का कला कौशल अद्वितीय है वास्तु कला के एक विद्वान आलोचक स्मिथ महोदय ने यह स्वीकार किया है कि इस स्तम्भ की आकृतियां विश्व की पशु आकृतियों में सर्वश्रेष्ठ है। कई अन्य जगहों पर भी ऐसी ही पशु-आकृतियां बैठाई गई है। इन स्तम्भो की 'ओप' अर्थात् एक प्रकार की पॉलिश से अत्यन्त चमकदार है। पॉलिश इतनी सुन्दर एवं टिकाऊ बनी है कि शताब्दियों से खड़े स्तम्भों पर वर्षा का कोई प्रभाव नही पड़ा और पॉलिश ज्यों की त्यों है। पशुओं की तक्षण कला और ओपदार स्तम्भो की दस्तकारी ऐसी है कि संसार में इनके समान उदाहरण प्रायः दुर्लभ ही है। सारनाथ के ऊपरी भाग को जिसमे सिंहाकृतिया-पशु एवं धर्मचक्र चिन्ह है, भारत सरकार द्वारा राज्य चिन्ह के रूप मे अपनाया गया है।

मौर्यकालीन तक्षण कला मे प्रस्तर स्तम्भों के अतिरिक्त कई सुन्दर मूर्तियों का भी निर्माण हुआ था। ऐसी ही एक मूर्ति दीदारगंज (पटना) के समीप 'चमर-ग्रहणी' स्त्री की ओपदार मूर्ति मिली है, जिसे मूर्तिकला की दृष्टि से उच्चतम नमूना कहा जाता है। कुछ लोग इस मूर्ति को यक्षिणी बतलाते है। इसमे भी पॉलिश की वही विशेषता पाई जाती है। पटना व परखम से प्राप्त यक्ष, लोहानुपुर से प्राप्त विशाल मानव धड़ मौर्य कालीन वैभव, भव्यता व श्रेष्ठ कला के सुन्दर उदाहरण हैं वही मौर्य कालीन टेराकोटा शिल्प भी अलकरण एवं निर्माण के अच्छे रूप है। मौर्यकाल की सभी मूर्तियां 'बालुई पत्थर' (Sand Stone) की बनी हुई हैं। कई लोगो का यह भ्रम है कि इन मूर्तियो पर ईरानी कला की छाप है किन्तु यथेष्ट प्रमाणों के अभाव मे कोई पुष्टि न हो सकी है।

सम्राट अशोक के बनवाये कई स्तूपो मे सांची का स्तूप अत्यन्त ही प्रसिद्ध एवं विशाल है। इसकी नीमी का व्यास 120 फुट तथा ऊँचाई 24 फुट है। चारो

ओर दो प्रदक्षिणाएँ बनी है। अशोक ने भारत से तथा उसमे बाहर कुल मिलाकर चौरासी हजार स्तूप बनवाये थे, ऐसा बौद्ध ग्रन्थों मे लिखा हुआ पाया गया है। अशोक द्वारा कई शिलालेख भी बनवाये गये थे जिन पर विभिन्न भाषा के अक्षरों की खुदाई हुई है जो तक्षण कला का अद्भुत उदाहरण है। मौर्यकालीन कई मठ और गुफाएँ भी मिलती है जिनके तोरणद्वार तथा द्वारो पर हाथी और शेरो तथा पक्षियों की मूर्तियाँ बडी सुन्दर ढग से बनी हैं। मौर्यकालीन मूर्तिकला जो अशोक के शासन काल मे हुई वह उच्च श्रेणी की हैं, जिसमे कही भी भद्दापन, बेढंगापन तथा मोटापन नही पाया जाता। सभी के सुन्दर कला, बारीकी पूर्ण तक्षण और उच्चकोटि की पॉलिश की हुई मिलती है।

शुंगकालीन मूर्तिकला

शुंगकालीन मूर्तिकला का काल 184 ई पू. से 27 ई. पू. तक का माना जाता है। मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् देश मे अन्त:कलह एवं विदेशी आक्रमण भी हुए और चार शक्तियो ने अपना अधिकार भी जमाया। पूर्व मे चेट पश्चिम और पश्चिमोत्तर मे ग्रीक एव ब्राह्मण, मध्य मे शुग और कण्व तथा दक्षिण में शालवाहन मौर्यकाल मे पुष्यमित्र शुंग नामक सेनापति था। वह बृहद्रथ का वध करके स्वय शासक बन गया। उसी के उत्तराधिकारी शुंगवंश कहलाये। इसी शुगकाल मे स्तूपों का अत्यधिक निर्माण हुआ था, जिसमें सांची एवं भरहुत के स्तूप अत्यन्त ही प्रसिद्ध है। शुग काल का सांची एव भरहुत स्तूप मूर्तिकला के जीते-जागते उदाहरण है। स्तूप वास्तव मे समाधि की प्रतिलिपि है। प्रारम्भ मे स्तूपों का आकार समाधि जैसा ही बनाया जाता था। शनैः शनै उनकी बनावट में भी उन्नति हुई और उसकी परिक्रमा एव द्वारो मे कला का अपूर्व प्रदर्शन प्रारम्भ होने लगा।

सांची—यह स्थान बौद्ध गया मे भोपाल के पास है, जो स्टेशन से आधे मील की दूरी पर स्थित है। साञ्ची मे एक विशाल स्तूप का निर्माण हुआ है, जिसमे पत्थर का काम है। अशोक के समय में केवल समाधि वाला भाग बना था, परन्तु शुग वंश वालों ने बाहरी भाग एव परिक्रमा आदि बनवाये। स्तूप के चारों ओर चार तोरण द्वार बने हैं और परिक्रमा के लिए 'दोहरी वेदिका' है। यह वेदिका और तोरणद्वार ही शुंगकालीन मूर्तिकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। तोरण के चौपहले खम्भे चौदह फुट ऊँचे हैं तथा सम्पूर्ण तोरण चौतीस फुट ऊँचा है। इन तोरणद्वारों पर भगवान बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं, बुद्ध की जन्मजन्मातर की जातक कथाओं राजाओं का जीवन वृत्तान्त, ग्रामीण जीवन, बौद्धभिक्षु, यक्ष, यक्षिणियाँ वृक्षिकाएँ, द्वारपाल, बौनों के अतिरिक्त जंगली जानवरों तथा शेर, हाथी, हिरण आदि का शिल्पांकन बखूबी किया गया है। अलंकरणों की भी सांची स्तूप मे भरमार है। शिल्प चूना बनाने के पत्थर से निर्मित किया गया है जो कि पूर्व प्रचलित काष्ठ कला को स्थायित्व प्रदान करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। काष्ठ खुदाई की तरह ही सांची स्तूप में आकृतियाँ

को चपटा (गोल नही) अर्द्ध उभार लिये हुए मोटी सीमा रेखा के साथ अलंकृत किया गया है। उत्खनन में यथार्थता का पूर्ण अभाव है, आकृतियाँ अनुपात मे छोटी बनाई गई हैं। पुरुष व नारी दोनों ही आभूषण व पारदर्शीय वस्त्र धारण किये हुए हैं। संयोजन मे प्रमुख आकृति को अन्य सहयोगियों से बड़ा व मध्य में निर्मित कर महत्व प्रदान किया गया है। खाली स्थान पर फूलपत्तियाँ, ज्यामितिक आकारों, जलचरों व थलचरों युक्त आलेखन निर्मित है सम्पूर्ण घटना का क्रमानुसार अंकन किया गया है। अंत में मूल विषय का अंकन किया गया है।

सांची के सम्पूर्ण स्तूप का निर्माण बौद्ध धर्म के पूजा व प्रसार हेतु किया गया है। किन्तु यहाँ बुद्ध की उपस्थिति मानव रूप में कही पर भी न होकर खाली सिंहासन पद चिन्ह, कमल दल, धर्मचक्र आदि संकेतों के माध्यम से की गई है। इनके अतिरिक्त सांची स्तूप मानवाकृतियों से भरा पडा है। यहाँ के प्रसिद्ध शिल्पों मे मायादेवी का स्वप्न, बुद्ध गृह त्याग, बोधि वृक्ष का स्वागत, जातक, छंदत जातक, मृग जातक, जेतवन का दान आदि हैं।

सांची की कला से यह बात स्पष्ट है कि उस काल मे लाक्षणिक पद्धति से ही बुद्ध सम्बन्धी घटनाओं का समुचित प्रदर्शन किया जाता था। स्तूपों के लिए मनुष्य द्वारा जो भाव प्रदर्शित किये जाते थे उन्हे प्रस्तर कला मे स्पष्टतया दिखलाया गया है और विद्याधरो के हाथो मे माला अर्पित किये जाने के दृश्यों की रचना की गई है। धर्म चक्र से भगवान बुद्ध का एकीकरण स्थापित करके धर्म पूजा ही सब जगह दिखलाई गई है। सांची की कला में एक स्थान पर हिन्दु मूर्ति का भी नमूना मौजूद है। लक्ष्मी कमल पुष्प पर आसीन है। उनके दाहिने-बायें दो हाथी सूंडों से जलघट पकडे हुए लक्ष्मी पर जल उंडेल रहे है। इस प्रतिमा से यह स्पष्ट होता है कि शुंग काल मे हिन्दु धर्म का प्रभाव तथा मूर्ति निर्माण का प्रारम्भ ज्ञात होता है। इस तरह सांची की सुन्दर खुदाई या तक्षण कार्य इतनी उच्च कोटि की है कि वाणी द्वारा वर्णन भी अधूरा रहेगा।

भरहुत

शुंगकालीन मूर्तिकला मे सांची के बाद भरहुत का दूसरा स्थान है और वैसे मूर्तिकला की दृष्टि से भरहुत स्तूप बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। भरहुत विन्ध्य प्रदेश के अन्तर्गत नागोद राज्य मे इलाहबाद–जबलपुर के बीच लगरगवां स्टेशन के निकट है। इसके प्राचीन नाम के बारे मे कई प्रमाण मिले है। राजा प्रसेनजित की पुरोहित बावरी की कथा मे उज्जयिनी से कोशाम्बी तक के नगरो के नाम में 'वलसेत' मिलता है। जनरल कनिंघम के मतानुसार यूनानी टालमीक के प्रसिद्ध नक्शे मे 'वरदाश्रातिस' लिखा है। इसी से आस-पास के वर्तमान लेखक इसका नाम वरदावती' बताते हैं।

स्तूप निर्माण का कार्य उस काल मे काफी हुआ। दक्षिण से उत्तरी भा
तक कई स्तूपों की अनेक आकृतियाँ बन गई। स्तूप निर्माण कराकर वह व्यक्ति .
का भागी समझा जाता और उसके आदर से निर्वाण के मार्ग का अनुगामी हो जाता।
अतः स्तूप तैयार हो जाने पर भरहुत स्तूप 'शाम्पक विहार' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।
जनरल कनिंघम को खोज में वहाँ एक विहार के चिन्ह मिले भी थे। स्तूप के पूर्व
तोरण पर जो लेख है उससे स्तूप का 'सुगम राज्य' में स्थित होना पाया जाता है।
यह 'सुगम' शब्द सु ग अर्थात् शु गवंशी राज्य का द्योतक है। 1873 ई. में जनरल
कनिंघम को इस महान् स्तूप का पता चला और उन्होंने 1874 मे इसकी खुदाई
कराई। खुदाई मे जो तोरण, स्तम्भ, सूची आदि प्राचीन शिल्प के उत्कृष्ट उदाहरण
मिले थे वे कलकत्ता संग्रहालय में भेज दिये गये है जहाँ वे आज भी सुरक्षित हैं।
मूल स्थान पर आजकल केवल मिट्टी का ढेर शेष है।

भरहुत स्तूप के तले का व्यास 68 फुट था। इसके चारों ओर पक्के फर्श की
सवा दस फीट चौड़ी परिक्रमा थी तथा इसके बाद लाल प्रस्तर की प्रवेष्टनी का प्रस्तर
जो प्रयोग मे आया है। वह चुनार जैसा रवादार था। भीतर का समाधि स्तूप]12 इंच
लम्बी और साढ़े तीन इंच मोटी ईंटों का बना था। प्रवेष्टनी के चारों दिशाओं
में एक द्वार था। द्वार के तोरण 20 फीट से अधिक ऊँचे थे। प्रवेष्टनी कभी मूर्ति
शिल्प से अलकृत थी। बाड के प्रत्येक अंश पर बौद्ध कथाएँ, अलंकरण गोमूत्रिका,
यक्ष-यक्षिणियाँ आदि रचित हैं। भरहुत की मूर्तियों के विषय विभिन्न हैं। जिनमें कई
तो बहुत प्रमुख है. जैसे—जातकों के दृश्य, बुद्ध की जीवन सम्बन्धी घटनाएँ एवं
ऐतिहासिक घटनाओं के दृश्य आदि। स्तम्भों पर देवी-देवताओं, यक्ष, नाग, आदि की
मूर्तिया अंकित हैं। वृत्तों अथवा अर्द्धवृत्तों मे कहीं कमल, कहीं भगवान बुद्ध के
चरित्र सम्बन्धी जातक कथाएँ अंकित हैं। यहाँ पर अधिकतर वामन मनुष्य की पीठ
पर खड़ी यक्षिणियों की मूर्तिया मिली हैं। यहां की कला में डंठल तथा पत्ते सहित
कमल पूर्णघट के मुख से निकलता दिखलाया गया है। कहीं-कहीं कमल के बीच में
यक्ष, पक्षी आदि भी चित्रित हैं। भरहुत स्तूप में भी लाक्षणिक पद्धति से ही भगवान
के उष्णीस की पूजा देवलोक मे दिखलाई गई है।

भरहुत के स्तम्भों तथा तथा सूचि आदि पर दाता के नाम अथवा दृश्य के
वर्णनात्मक छोटे-छोटे वाक्य भी खुदे हैं। कई दृश्य चित्र भी बने हुए हैं, जैसे—राजा
प्रसेनजित की रथ में सवारी, बोधिवृक्ष की पूजा, हाथी पर मगधराज अजातशत्रु
आदि। भरहुत कला मे भिन्न-भिन्न प्रकार के वृक्षों सहित अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं।
उनकी सुन्दरता, सजीवता तथा अलंकरण देखते ही बनता है इसमें व्यावहारिक जीवन
के कुछ उपयोगी वस्तुओं के भी अनेक नमूने हैं।

भरहुत और सांची की शैली एक सी ही है। स्तूप निर्माण, शिल्प संयोजन
आलेखन आदि सांची की परम्परा पर हैं। सांची की तक्षण कला का ढंग विशेष तौर

का है तो भरहुत में पत्थरो को काट कर उभारना । पत्थर समूचा लगाया है, जिसका रग भूरा है । इस प्रान्त की सभी शिल्प कला में ऐसा ही पत्थर प्रयुक्त हुआ है ।

सांची की शैली मे अशोक शैली की प्रधानता है और भरहुत मे शु गो की लोक कला शैली का बाहुल्य है । भरहुत की शिल्प कला मे हास्य और व्यग्य का पुट है । चक्र मूर्ति का सयोजन देखकर हँसी आती है । बन्दरो का एक झुण्ड बाजा बजाते हुए एक हाथी को ले जा रहा है । एक जगह एक बडी सडासी से एक मनुष्य का दात उखाडा जा रहा है । एक जगह एक बडी सडासी मे एक मनुष्य का दात उखाड़ा जा रहा है । सक्षेप मे यही है कि भरहुत की कला लोक-कला सी है, सुथरापन नहीं है जो अशोकीय स्तम्भों व तोरणों मे है । शु गकाल की अमस्य मूर्तियाँ भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक पायी जाती है । शु गकालीन अन्य प्रमुख स्तूपो मे बोद्ध गया एव सारनाथ के स्तूप है, किन्तु वहाँ स्तूप कला का कोई उल्लेखनीय रूप नही था । इनके अतिरिक्त भेमा तितलखेरा आदि स्थानो पर भी शु गकालीन छुटपुट शिल्प प्राप्त हुए है । दक्षिण भारत की भाजा गुफा भी शु गकाल का प्रतिनिधित्व करती है, जिससे स्पष्ट होता है कि शु गकाल शिल्पकला का श्रेष्ठ समय था ।

काष्ठ, मिट्टी एव ताम्बा आदि से मूर्तियां बनाने की प्रथा प्रचलित थी। रामायण व महाभारत काल में भी मनुष्य उच्चतम सीढी पर पहुँच गया था उस समय में सोने, चाँदी, ताम्बा, मिट्टी, हाथी-दांत, पत्थर आदि मे कई देवी-देवताओं की मूर्तियों का निर्माण करते थे।

रामायण काल मे आर्य देवताओं की पूजा करते थे और उन्ही की मूर्तिया बनाते थे। इन्द्र और विष्णु की मूर्तिया मन्दिरो में थी जिनकी पूजा की जाती थी। देवियों की भी पूजा होती थी। अभी भी देवी-देवताओ की कई मूर्तियां धरती के गर्भ में दबी हैं, यदि खुदाई का कार्य किया जाये। रामायण में उल्लेख मिलता है कि उस समय सभी प्रकार की धातुओं की मूर्तिया बनती थी। राम द्वारा जब अश्वमेघ यज्ञ किया गया था, तब सीतादेवी की सोने की मूर्ति बनाकर उनकी अनुपस्थिति में यज्ञ के स्थान पर प्रस्थापित की गई थी। महाभारत काल में भी लोग हाथी-दांत, पत्थर, कांसा, पीतल, ताम्बा, मिट्टी, हड्डियों आदि की मूर्तियां बनाते थे। जिन देवी-देवताओं की पूजा होती थी उनके अतिरिक्त और भी मूर्तियां बनती थी। महाभारत काल में एक प्रसंग एकलव्य का आता है जो गुरु द्रोणाचार्य के पास धनुर्विद्या सीखने गया था, परन्तु गुरु ने उसे शूद्र जानकर शिक्षा देना स्वीकार नही किया। एकलव्य ने गुरु की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उसे गुरु समझ कर उसके सामने शस्त्राभ्यास किया और निपुणता प्राप्त की। महाभारत काल की मूर्तिकला रामायण काल से कुछ निम्न कोटि की थी।

शैशुनाग तथा नन्दकाल

धार्मिक अभ्युदय के साथ-साथ भारत मे कला का विकास पाया जाता है। धार्मिक विषयों को मानुषिक रूप देने की प्रथा चल पडी और यक्ष, नाग तथा देवताओं की मूर्तियां बनने लगी। इस काल को शैशुनाग काल अथवा पूर्व-मौर्यकाल कहते हैं। खोज मे यह पता लगा है कि इस काल में कुछ इनी-गिनी मूर्तिया ही प्राप्त हो सकी हैं। यह काल 720 ई. पू. से 320 ई. पू. तक माना जाता है। बौद्धकाल में उत्तरी भारत में लगभग 15 राज्य थे, जिनमें तीन राज्य बडे वैभवशाली थे—1. मगध, 2. मालवा, 3. कौशल। इस समय की कुछ मूर्तिया मिली हैं जो शैशुनाग तथा नन्द वंश के समय की कही जाती हैं। अजात शत्रु नन्द वंश का प्रधान राजा था जिसकी एक मूर्ति मथुरा के पास एक प्राचीन ग्राम परखम से प्राप्त हुई जो आजकल मथुरा के संग्रहालय मे सुरक्षित है। अजातशत्रु शैशुनाग वंशी भगवान बुद्ध का समकालीन था। 618 ई. पू में उसकी मृत्यु हुई थी।

पटना से प्राप्त दो मूर्तियां मिली हैं जिनमें पहली अजातशत्रु के पौत्र अजउदयी की है, जिसने पाटलीपुत्र बसाया था और दूसरी उसके बेटे नन्दिवर्धन की है। उपर्युक्त तीनों मूर्तिया मानव आकृति मे कुछ बडी हैं। शैली में एक-सी जान पडती है तथा वास्तविकता के सन्निकट हैं। इसी से सम्बन्धित तीन मूर्तियां और

मिली है जो गालव नन्द से यक्षी की है। इनमें दो नारी आकृतियां हैं और एक पुरुषाकृति। पहली स्त्री-मूर्ति मथुरा में मनसा देवी से पूजी जाती है। दूसरी, जो बेस नगर से प्राप्त हुई और अब कलकत्ता संग्रहालय में है तथा तीसरी पुरुष-मूर्ति मथुरा के पास परखम ग्राम से मिली। यह भी मथुरा के संग्रहालय में है। इन सभी मूर्तियों की शैली प्राय एक सी ही है। इनके निर्माण काल तथा विषय के सम्बन्ध में कई विवाद है। कुछ विद्वान इनका समय ई. पू. 600 बताते हैं और इन्हें शैशुनाग वंश के देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ कहते हैं। कई उनको यक्ष-यक्षिणियों की मूर्तियां कहते हैं। राजा नन्दिवर्धन ने राज्य विस्तार की दृष्टि से कलिंग जीता था और वहां से अनेक साथ कुछ जैन मूर्तियां भी लाया था। इससे बौद्ध एवं जैन काल में मूर्तिकला निर्माण का पता चलता है। ये मूर्तियां सशक्त, गुरुत्व तथा ओजस्विता से पूर्ण प्रतीत होती हैं।

मौर्यकाल (मौर्यकालीन मूर्तिकला)

मौर्य काल 322 ई. पू. से 185 ई. पू. तक है। शैशुनाग वंश के पश्चात् नंद वंश का प्रबल साम्राज्य हुआ, परन्तु उस काल में अत्याचारों की पराकाष्ठा हो चुकी थी चन्द्रगुप्त मौर्य ने चाणक्य की सहायता से पंजाब से यूनानियों को भी भारत से निकाला और बड़ी सेना लेकर मगध के राजा नन्द को हराकर उत्तरी भारत का प्रबल शासक बन गया। उसने भारत में मौर्य वंश की स्थापना की। चन्द्रगुप्त के समय में वास्तुकला की महान् उन्नति हुई है। उस समय के शिल्पकार तक्षणकला में अत्यन्त निपुण थे। उस समय के कलाकारों ने यक्ष-यक्षिणी की मूर्तियां, पाषाण स्तम्भों आदि का निर्माण किया था। उन कलाकारों द्वारा प्रस्तर खण्डों पर की हुई पॉलिश सब प्रकार की बाधाओं के रहते हुए आज भी बिल्कुल नई प्रतीत होती है—उस काल के शिल्प में भावों की मात्रा अधिक है। यक्ष मूर्तियों के अतिरिक्त पशुओं के नमूने भी मिलते हैं। स्तम्भो पर उच्च कोटि का कार्य किया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि मौर्य कालीन प्रस्तर स्तम्भ संसार की मूर्तिकला में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं।

चन्द्रगुप्त का पौत्र सम्राट अशोक था। जिसकी गणना भारत के महान् शासकों में ही नही, विश्व के महान् शासकों में से एक है। अशोक बौद्धधर्मावलम्बी था। उसने अपने राज्यकाल में कई स्तूप, विहार एवं शिलालेख बनवाये तथा कई पाषाण, स्तम्भो का भी निर्माण करवाया उसके समय के बनवाये अब तक 17 स्तम्भों का पता चला है। ये स्तम्भ बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि में अब भी देखे जा सकते हैं तथा भारत के बाहर नेपाल में भी एक स्तम्भ है। एक ही पाषाण के टुकड़े से बनी ये लाटें तक्षण कला का सुन्दर उदाहरण देती हैं। ये चुनार पत्थर की हैं जिसमे नीचे से मोटाई तथा उत्तरोत्तर ऊपर की ओर पतलापन दिखाया गया है। ऊपर के सिरे के भाग पर 'परगहे' बनाये गये हैं जिन पर विभिन्न आकृतियां एवं

नमूने बने हैं। इन स्तम्भों की दस्तकारी तथा तक्षण कला इतनी उन्नत है कि देखकर आश्चर्य ही होता है। ये स्तम्भ 30 से 40 फुट ऊँचे तथा वजन में 1200 मन कहे जाते हैं। सारनाथ की लाट (सारनाथ स्तम्भ) तक्षण कला का एक अभूतपूर्व उदाहरण है। सिर पर चार शेर पलथी मारे बैठे है। नीचे गोलाकार चौकी है। उस पर उभार कर बैल, घोड़ा, हाथी तथा शेर की आकृतियां बनाई गई है। ऊपर के चार शेर चारो दिशाओं की ओर मुंह किये हैं। इनकी आकृति बहुत सुन्दर और सजीव है। दो पशुओं के बीच में धर्म चक्र अंकित किया गया है। सारनाथ का यह सिंह-मस्तक शक्ति और भाव की अभिव्यक्ति मे सर्वथा बेजोड़ है। कलाकार की मेधा ने पत्थर में जान डाल दी हैं। सिंह शक्ति के प्रतीक हैं, दौड़ते पशु गति के और चक्र मानव भाग्य की बनती-बिगडती परिस्थितियों के। इनका आधार अधोमुखी पंखुडियों वाला कमल या घटा है और सारी रचना ऊपर के धर्म चक्र का आधार है। अशोक स्तम्भ का यह अद्भुत मस्तक दुनियाँ की मूर्तिकला मे अपना विशेष स्थान रखता है। स्तम्भ पर उच्च कोटि की पॉलिस की गई है। कल्पना और कला का इतना अच्छा समावेश हुआ है कि देखते ही बनता है। उसमे मूतिकार का कला कौशल अद्वितीय है वास्तु कला के एक विद्वान आलोचक स्मिथ महोदय ने यह स्वीकार किया है कि इस स्तम्भ की आकृतियां विश्व की पशु आकृतियो मे सर्वश्रेष्ठ है। कई अन्य 'परगहों' पर भी ऐसी ही पशु-आकृतियां बैठाई गई है। इन स्तम्भो की 'ओप' अर्थात् एक प्रकार की पॉलिश से अत्यन्त चमकदार है। पॉलिश इतनी सुन्दर एवं टिकाऊ बनी है कि शताब्दियों से खड़े स्तम्भो पर वर्षा का कोई प्रभाव नही पड़ा और पॉलिश ज्यों की त्यों है। पशुओ की तक्षण कला और ओपदार स्तम्भों की दस्तकारी ऐसी है कि संसार मे इनके समान उदाहरण प्रायः दुर्लभ ही है। सारनाथ के ऊपरी भाग को जिसमें सिंहाकृतिया-पशु एव धर्मचक्र चिन्ह है, भारत सरकार द्वारा राज्य चिन्ह के रूप मे अपनाया गया है।

मौर्यकालीन तक्षण कला मे प्रस्तर स्तम्भों के अतिरिक्त कई सुन्दर मूर्तियों का भी निर्माण हुआ था। ऐसी ही एक मूर्ति दीदारगज (पटना) के समीप 'चमार-ग्रहणी' स्त्री की ओपदार मूर्ति मिली है, जिसे मूर्तिकला की दृष्टि से उच्चतम नमूना कहा जाता है। कुछ लोग इस मूर्ति को यक्षिणी बतलाते है। इसमे भी पॉलिश की वही विशेषता पाई जाती है। पटना व परखम से प्राप्त यक्ष, लोहानुपुर से प्राप्त विशाल मानव धड़ मौर्य कालीन वैभव, भव्यता व श्रेष्ठ कला के सुन्दर उदाहरण हैं वही मौर्य कालीन टेराकोटा शिल्प भी अलंकरण एव निर्माण के अच्छे रूप हैं। मौर्यकाल की सभी मूर्तिया 'बालुहे पत्थर' (Sand Stone) की बनी हुई हैं। कई लोगों का यह भ्रम है कि इन मूर्तियों पर ईरानी कला की छाप है किन्तु यथेष्ट प्रमाणों के अभाव मे कोई पुष्टि न हो सकी है।

सम्राट अशोक के बनवाये कई स्तूपो मे साची का स्तूप अत्यन्त ही प्रसिद्ध एवं विशाल है। इसकी तली का व्यास 120 फुट तथा ऊँचाई 24 फुट है। चारों

और दो प्रदक्षिणाएँ बनी हैं। अशोक ने भारत में तथा उसके बाहर कुल मिलाकर चौरासी हजार स्तूप बनवाये थे, ऐसा बौद्ध ग्रन्थों में लिखा हुआ पाया गया है। अशोक द्वारा कई शिलालेख भी बनवाये गये थे जिन पर विभिन्न भाषा के अक्षरों की खुदाई हुई है जो तक्षण कला का अद्भुत उदाहरण है। मौर्यकालीन कई मठ और गुफाएँ भी मिलती हैं जिनके तोरणद्वार तथा द्वारों पर हाथी और शेरों तथा पक्षियों की मूर्तियाँ बड़ी सुन्दर ढंग से बनी हैं। मौर्यकालीन मूर्तिकला जो अशोक के शासन काल में हुई वह उच्च श्रेणी की है, जिसमें कहीं भी भद्दापन, बेढंगापन तथा मोटापन नहीं पाया जाता। सभी में सुन्दर कला, बारीकी पूर्ण तक्षण और उच्चकोटि की पॉलिश की हुई मिलती है।

शुंगकालीन मूर्तिकला

शुंगकालीन मूर्तिकला का काल 184 ई. पू. से 27 ई. पू. तक का माना जाता है। मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् देश में अस्त-व्यस्तता एवं विदेशी आक्रमण भी हुए और चार शक्तियों ने अपना अधिकार भी जमाया। पूर्व में चेट पश्चिम और पश्चिमोत्तर में ग्रीक एवं ब्राह्मण, मध्य में शुंग और कण्व तथा दक्षिण में सातवाहन मौर्यकाल में पुष्यमित्र शुंग नामक सेनापति था। वह बृहद्रथ का वध करके स्वयं शासक बन गया। उसी के उत्तराधिकारी शुंगवंश कहलाये। इसी शुंगकाल में स्तूपों का अत्यधिक निर्माण हुआ था, जिसमें सांची एवं भरहुत के स्तूप अत्यन्त ही प्रसिद्ध है। शुंग काल का सांची एवं भरहुत स्तूप मूर्तिकला के जीते-जागते उदाहरण हैं। स्तूप वास्तव में समाधि की प्रतिलिपि है। प्रारम्भ में स्तूपों का आकार समाधि जैसा ही बनाया जाता था। शनैः शनैः उनकी बनावट में भी उन्नति हुई और उनकी परिक्रमा एवं द्वारों में कला का अपूर्व प्रदर्शन प्रारम्भ होने लगा।

सांची—यह स्थान बोद्ध गया में भोपाल के पास है, जो स्टेशन से आधे मील की दूरी पर स्थित है। सांची में एक विशाल स्तूप का निर्माण हुआ है, जिसमें पत्थर का काम है। अशोक के समय में केवल समाधि वाला भाग बना था, परन्तु शुंग वंश वालों ने बाहरी भाग एवं परिक्रमा आदि बनवाये। स्तूप के चारों ओर चार तोरण द्वार बने हैं और परिक्रमा के लिए 'दोहरी वेदिका' है। यह वेदिका और तोरणद्वार ही शुंगकालीन मूर्तिकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। तोरण के चौपहले खम्भे चौदह फुट ऊँचे हैं तथा सम्पूर्ण तोरण चौतीस फुट ऊँचा है। इन तोरणद्वारों पर भगवान बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं, बुद्ध की जन्मजन्मान्तर की जातक कथाओं राजाओं का जीवन वृत्तान्त, ग्रामीण जीवन, बौद्धभिक्षु, यक्ष, यक्षिणियाँ वृक्षिकाएँ, द्वारपाल, बौनों के अतिरिक्त जंगली जानवरों तथा शेर, हाथी, हिरण आदि का शिल्पांकन बखूबी किया गया है। आलेखनों की भी सांची स्तूप में भरमार है। शिल्प चूना बनाने के पत्थर से निर्मित किया गया है जो कि पूर्व प्रचलित काष्ठ कला को स्थायित्व प्रदान करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। काष्ठ खुदाई की तरह ही सांची स्तूप में आकृतियों

को चपटा (गोल नही) अर्द्ध उभार लिये हुए मोटी सीमा रेखा के साथ अलंकृत किया गया है। उत्खनन में यथार्थता का पूर्ण अभाव है, आकृतियाँ अनुपात मे छोटी बनाई गई हैं। पुरुष व नारी दोनो ही आभूषण व पारदर्शीय वस्त्र धारण किये हुए है। संयोजन में प्रमुख आकृति को अन्य सहयोगियो से बडा व मध्य मे निर्मित कर महत्त्व प्रदान किया गया है। खाली स्थान पर फूलपत्तियो, ज्यामितिक आकारो, जलचरों व थलचरो युक्त आलेखन निर्मित है सम्पूर्ण घटना का क्रमानुसार अंकन किया गया है। अंत मे मूल विषय का अंकन किया गया है।

साँची के सम्पूर्ण स्तूप का निर्माण बौद्ध धर्म के पूजा व प्रसार हेतु किया गया है। किन्तु यहाँ बुद्ध की उपस्थिति मानव रूप में कही पर भी न होकर खाली सिंहासन पद चिन्ह, कमल दल, धर्मचक्र आदि सकेतो के माध्यम से की गई है। इनके अतिरिक्त साँची स्तूप मानवाकृतियों से भरा पडा है। यहाँ के प्रसिद्ध शिल्पों मे मायादेवी का स्वप्न, बुद्ध गृह त्याग, बौधि वृक्ष का स्वागत, जातक, छदंत जातक, मृग जातक, जेतवन का दान आदि है।

साँची की कला से यह बात स्पष्ट है कि उस काल मे लाक्षणिक पद्धति से ही बुद्ध सम्बन्धी घटनाओ का समुचित प्रदर्शन किया जाता था। स्तूपों के लिए मनुष्य द्वारा जो भाव प्रदर्शित किये जाते थे उन्हे प्रस्तर कला मे स्पष्टतया दिखलाया गया है और विद्याधरो के हाथो से माला अर्पित किये जाने के दृश्यो की रचना की गई है। धर्म चक्र से भगवान बुद्ध का एकीकरण स्थापित करके धर्म पूजा ही सब जगह दिखलाई गई है। साँची की कला में एक स्थान पर हिन्दु मूर्ति का भी नमूना मौजूद है। लक्ष्मी कमल पुष्प पर आसीन है। उनके दाहिने-बायें दो हाथी सूंडो से जलघट पकड़े हुए लक्ष्मी पर जल उडेल रहे है। इस प्रतिमा मे यह स्पष्ट होता है कि शुंग काल मे हिन्दु धर्म का प्रभाव तथा मूर्ति निर्माण का प्रारम्भ ज्ञात होता है। इस तरह साँची की सुन्दर खुदाई या तक्षण कार्य इतनी उच्च कोटि की है कि वाणी द्वारा वर्णन भी अधूरा रहेगा।

भरहुत

शुंगकालीन मूर्तिकला में साँची के बाद भरहुत का दूसरा स्थान है और वैसे मूर्तिकला की दृष्टि से भरहुत स्तूप बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। भरहुत विन्ध्य प्रदेश के अन्तर्गत नागोद राज्य मे इलाहबाद–जबलपुर के बीच लगरगवां स्टेशन के निकट है। इसके प्राचीन नाम के बारे मे कई प्रमाण मिले है। राजा प्रसेनजित की पुरोहित बावरी की कथा मे उज्जयिनी से कोशाम्बी तक के नगरों के नाम मे 'वलसेत' मिलता है। जनरल कनिघम के मतानुसार यूनानी टालमीक के प्रसिद्ध नक्शे में 'वरदाआतिस' लिखा है। इसी से आस-पास के वर्तमान लेखक इसका नाम वरदावती' बताते हैं।

स्तूप निर्माण का कार्य उस काल में जारी हुआ। दक्षिण से उत्तरी भारत तक कई स्तूपों की अनेक आकृतियाँ बन गईं। स्तूप निर्माण कराकर वह व्यक्ति पुण्य का भागी समझा जाता और उसके आदर से निर्वाण के मार्ग का अनुगामी हो जाता। अत. स्तूप तैयार हो जाने पर भरहुत स्तूप 'शासक विहार' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जनरल कनिंघम की खोज में वहाँ एक विहार के चिह्न मिले भी थे। स्तूप के पूर्व तोरण पर जो लेख है उसमें स्तूप का 'सुगम राज्य' में स्थित होना पाया जाता है। यह 'सुगम' शब्द शु ग अर्थात् शु गवंशी राज्य का द्योतक है। 1873 ई. में जनरल कनिंघम को इस महान् स्तूप का पता चला और उन्होंने 1874 में इसकी खुदाई कराई। खुदाई में जो तोरण, स्तम्भ, सूची आदि प्राचीन शिल्प के उत्कृष्ट उदाहरण मिले थे वे कलकत्ता संग्रहालय में भेज दिये गये हैं जहाँ वे आज भी सुरक्षित हैं। मूल स्थान पर आजकल केवल मिट्टी का ढेर शेष है।

भरहुत स्तूप के तल का व्यास 68 फुट था। इसके चारों ओर पक्के फर्श की सवा दस फीट चौड़ी परिक्रमा थी तथा इसके बाद लाल प्रस्तर की प्रवेष्टनी का प्रस्तर जो प्रयोग में आया है। यह घुनार जैसा रवादार था। भीतर का समाधि स्तूप 12 इंच लम्बी और साढ़े तीन इंच मोटी ईंटों का बना था। प्रवेष्टनी के चारों दिशाओं में एक द्वार था। द्वार के तोरण 20 फीट से अधिक ऊँचे थे। प्रवेष्टनी कभी मूर्ति शिल्प से अलंकृत थी। बाड़ के प्रत्येक अंग पर बौद्ध कथाएँ, अलंकरण गोमूत्रिका, यक्ष–यक्षिणियाँ आदि रचित हैं। भरहुत की मूर्तियों के विषय विभिन्न हैं। जिनमें कई तो बहुत प्रमुख हैं जैसे—जातकों के दृश्य, बुद्ध की जीवन सम्बन्धी घटनाएँ एवं ऐतिहासिक घटनाओं के दृश्य आदि। स्तम्भों पर देवी-देवताओं, यक्ष, नाग, आदि की मूर्तियाँ अंकित हैं। वृत्तों अथवा अर्द्धवृत्तों में कहीं कमल, कहीं भगवान बुद्ध के चरित्र सम्बन्धी जातक कथाएँ अंकित हैं। यहाँ पर अधिकतर वामन मनुष्य की पीठ पर खड़ी यक्षिणियों की मूर्तियाँ मिली हैं। यहाँ की कला में डंठल तथा पत्ते सहित कमल पूर्णघट के मुख से निकलता दिखलाया गया है। कहीं-कहीं कमल के बीच में यक्ष, पक्षी आदि भी चित्रित हैं। भरहुत स्तूप में भी लाक्षणिक पद्धति से ही भगवान के उष्णीष की पूजा देवलोक में दिखलाई गई है।

भरहुत के स्तम्भों तथा तथा सूचि आदि पर दाता के नाम अथवा दृश्य के वर्णनात्मक छोटे-छोटे वाक्य भी खुदे हैं। कई दृश्य चित्र भी बने हुए हैं, जैसे—राजा प्रसेनजित की रथ में सवारी, बोधिवृक्ष की पूजा, हाथी पर मगधराज अजातशत्रु आदि। भरहुत कला में भिन्न-भिन्न प्रकार के वृक्षों सहित अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं। उनकी सुन्दरता, सजीवता तथा अलंकरण देखते ही बनता है इसमें व्यावहारिक जीवन के कुछ उपयोगी वस्तुओं के भी अनेक नमूने हैं।

भरहुत और साँची की शैली एक सी ही है। स्तूप निर्माण, शिल्प संयोजन आलेखन आदि साँची की परम्परा पर है। साँची की तक्षण कला का ढंग चिपटे तौर

का है तो भरहुत मे पत्थरो को काट कर उभारना । पत्थर समूचा लगाया है, जिसका रग भूरा है । इस प्रान्त की सभी शिल्प कला मे ऐसा ही पत्थर प्रयुक्त हुग्रा है ।

साची की शैली मे अशोक शैली की प्रधानता है और भरहुत मे शुंगो की लोक कला शैली का बाहुल्य है । भरहुत की शिल्प कला मे हास्य और व्यग्य का पुट है । चक्र मूर्ति का मयांजन देखकर हँसी आती है । बन्दरों का एक भुण्ड बाजा बजाते हुए एक हाथी को ले जा रहा है । एक जगह एक बडी संडासी मे एक मनुष्य का दात उखाडा जा रहा है । एक जगह एक बडी संडासी मे एक मनुष्य का दात उखाडा जा रहा है । सक्षेप मे यही है कि भरहुत की कला लोक-कला सी है, सुथरापन नही है जो अशोकीय खम्भो व तोरणो मे है । शुगकाल की असख्य मूर्तियाँ भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक पायी जाती है । शुगकालीन अन्य प्रमुख स्तूपो मे बौद्ध गया एव सारनाथ के स्तूप है, किन्तु वहाँ स्तूप कला का कोई उल्लेखनीय रूप नही था । इनके अतिरिक्त मेसा तितलसेरा आदि स्थानो पर भी शुंगकालीन छुटपुट शिल्प प्राप्त हुए है । दक्षिण भारत की भाजा गुफा भी शुंगकाल का प्रतिनिधित्व करती है, जिससे स्पष्ट होता है कि शुंगकाल शिल्पकला का श्रेष्ठ समय था ।

कुषाण सातवाहन काल

सातवाहन राजा भारत के दक्षिण में राज्य करते थे। उस समय पश्चिमोत्तर के भागों पर शक वंश के राजाओं का राज्य था। दोनों में सदा युद्ध होता रहता था। सिदियन जाति से कुषाणों का सम्बन्ध था। सातवाहन में सातकर्णि नामक एक प्रसिद्ध एवं महान् राजा हुआ है जिसने मरहठों पर हमला किया था। उसके राज्य की सीमा विन्ध्याचल से ट्रावनकोर की पहाड़ियों तक हो गई। धीरे-धीरे सातवाहनों की शक्ति क्षीण होती गई और राज्य अलग-अलग सूबों में बँट गया। यज्ञश्री सातवाहन के पश्चात् सातवाहनों के अधिकार का पश्चिमी दक्षिणापथ में अन्त हुआ; किन्तु इस वंश के बाद राजा कृष्णा और गोदावरी जिले में धन कटक (अमरावती) को राजधानी बनाकर तीसरी सदी ईस्वी में राज्य करते रहे।

कुषाण वंश उस बड़े ग्वाल समूह का अंग था जिसे सिदियन जाति कहते हैं। पहली ईस्वी शताब्दी में इस जाति का पहला राजा कुषाण हुआ था जिसने पहाड़ों को पार करके काबुल और कन्धार जीता। उसके लड़के वेमकदफ ने पंजाब, राजपूताना, सिन्ध की घाटी से पह्लव और शक शासकों को निकाला और उत्तरी भारत का स्वामी बन गया। इसके पश्चात् कनिष्क उत्तराधिकारी हुआ जिसने काश्मीर, काशगर, यारकन्द और तिब्बत के उत्तर में खुतन पर अधिकार किया। उसका राज्य पूर्वी तुर्किस्तान से लेकर अफगानिस्तान, काश्मीर, पंजाब, मध्यप्रदेश, राजपूताना और सिंध तक फैला हुआ था। उसने पुरुषपुर (पेशावर) को अपनी राजधानी बनाई और बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। दीक्षा के बाद उसने वहाँ एक बड़े स्तूप का निर्माण करवाया। कनिष्क ने 45 वर्ष तक राज्य किया। इसके पश्चात् हुविष्क और वासुदेव उसके उत्तराधिकारी हुए थे। वासुदेव ने अपनी राजधानी मथुरा बना ली वह शैव मत का अनुयायी था। वासुदेव के बाद कुषाणों की शक्ति घट गई और अन्त मे वह काबुल और उत्तर पंजाब तक ही सीमित रह गये थे। कनिष्क भी अशोक की तरह महान माना जाता है। उसके समय में बौद्ध धर्म की प्रगति हुई। उसे इमारतों का शौक था। तक्षशिला के पास उसने एक नगर भी बसाया था। वह शिल्प कला का प्रेमी था। गान्धार शिल्पकला की उन्नति में उसने काफी योग दिया था। उसने कई पत्थर की मूर्तियाँ भी बनवाई थीं जिन पर यूनानी शैली के चिन्ह मिलते हैं। कनिष्क ने सोने का सिक्का भी चलाया था जो कला की दृष्टि से उत्तम था।

गन्धार में यवनों ने शिल्प कला की एक नई परिपाटी को जन्म दिया। बौद्ध विषय यूनानी रूप में ढलने लगे और सबसे पहले बुद्ध जी की मूर्ति का निर्माण हुआ। गान्धार कला का प्रभाव मथुरा की मूर्ति कला की शैली पर पड़ा ऐसा कुछ विद्वान मानते है—क्योंकि मथुरा बहुत दिनों तक विदेशियों के शासन में रहा ऐसा केवल भ्रम है। सारनाथ, अमरावती तथा अन्य स्थानों में भारतीय मूर्तिकार

अपनी परम्परा की ही अनुरञ्जरण करते रहे। तक्षण कला अथवा मूर्तिकला की दृष्टि से यह काल बड़े महत्त्व का माना जाता है तथा कई लोगों ने इसे समस्यापूर्ण काल कहा है। हम इन विवादों में न पकड़कर केवल कलात्मक पक्ष पर विचार करेंगे। कुषाण-सातवाहन काल में मूर्तिकला के निम्नलिखित केन्द्र थे जिनमें उनकी शैलियों का नाम पड़ा :

(i) गान्धार
(ii) मथुरा
(iii) अमरावती
(iv) नागार्जुन कोंडा

(1) गान्धार शैली

इस शैली का जन्म कनिष्क महान के राज्यकाल में भारतीय मूर्तिकला शैली और यूनानी मूर्तिकला शैली के मधुर सम्मिश्रण के फलस्वरूप हुआ था। भारत के पूर्व में पंजाब से अफगानिस्तान तक फैला हुआ है। इस भाग में बीसवीं सदी के इतिहासकारों को अनगिनत कारो पत्थर, प्लास्टर व धातु के शिल्प मिले हैं जिन पर समय, लेख आदि का कोई उल्लेख नहीं है। इस शैली के प्रसंग पर श्री स्मिथ एवं सर जॉन मार्शल के मतानुसार गान्धार शैली पर यूनानी शैली का प्रभाव है तथा भारतीय मूर्तिकला के प्रभाव से यह अलिप्त है; परन्तु भारतीय विद्वान् डॉ. कुमार स्वामी का कहना है कि इस पर भारतीय मूर्ति शैली की छाप है। शैली यूनानी है परन्तु उनका विषय भारतीय है। इस शैली की मूर्तियाँ काले स्लेट के पत्थर और कुछ मसाले तथा चूने की बनी हुई अधिक मिली हैं। इन पर लिखा हुआ कुछ भी नहीं है। परन्तु मूर्तिकला के इतिहासज्ञों के मतानुसार ये मूर्तियाँ 50 ई. पू. से 200 ई. तक की हैं। इसके पहले या बाद में इसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। उस समय बौद्ध धर्म की बहुत ही चर्चा थी। इसी काल में महायान धर्म की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार बौद्ध धर्म निवृत्ति प्रधान हीनयान प्रवृत्ति तथा भक्ति का प्रधान रूप में परिणत हो गया। यही कारण है कि सर्व प्रथम इसी काल में बुद्ध भगवान की प्रतिमा का निर्माण पाया जाता है। इस शैली में भगवान बुद्ध की अनेकों मूर्तियों का निर्माण हुआ। विषय बुद्ध जीवन की समस्त कथाएँ, जातक, आलेखन आदि थी। गान्धार शैली की बहुत सी मूर्तियाँ हाथी-दांत की बनी हुई अफगानिस्तान में मिली हैं। इनको देखकर कुछ मूर्तिकला के विद्वानों का मत है कि इन पर साँची की मूर्तिकला की छाप दिखाई देती है; क्योंकि साँची के मूर्तिकारों ने भी हाथी-दांत की मूर्तियाँ बनाई हैं। गान्धार शैली की मूर्तियों में हाथ-पांव की उँगलियाँ, आँखें भौंहें, अलंकरण आदि में पूर्ण भारतीय रूप दिखाई देता है। जैसा इसकी समकालीन गुफाएँ, अजन्ता में है। शिल्प संयोजन, शिल्प निर्माण के मापदण्ड सिन्धुघाटी की शिल्प परम्पराओं को भी यहाँ के शिल्पकारों ने आत्मसात् किया है। जातक दृश्यों का सन्निवेश

आदि भारतीय हैं और उन पर भारतीयता की छाप दिखायी देती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि गान्धार शैली की तत्कालीन बौद्ध मूर्तियों पर यूनानी कला की छाप नाम मात्र को भी नहीं है और न किसी भी प्रकार ग्रीक कल्पना को ही सिद्ध करती है। गांधार के शिल्पों में गढ़े हुए बुद्ध, हारीति के बुद्ध, लुम्बिनी में बुद्ध बोधिसत्व अनेक कुछ गुण हैं जो गांधार शैली को भारतीय शिल्प में स्वतन्त्र रूप में प्रस्तुत करते हैं।

(ii) मथुरा शैली :

कुषाण काल में कला का सर्वश्रेष्ठ केन्द्र मथुरा था और इस कला की उत्पत्ति गांधार कला के सदृश हुई। इस काल में मथुरा के कलाकारों ने पर्याप्त उन्नति की। सांची, भरहुत शैशुनाग की प्राचीन शैली को लेकर इसमें कुछ परिवर्तन करके अपनी निजी शैली को जन्म दिया। भरहुत की मूर्तियों का चिपटापन उन्हें रुचिकर न लगा इसी से उन्होंने शैशुनाग शैली को अपनाया। भरहुत के अलंकरण को मथुरा कलाकारों ने ज्यों का त्यों अपना लिया। इस नवीन शैली की अनेक मूर्तियां मथुरा के आस-पास प्राप्त हुई हैं। उन पर गांधार शैली का कोई प्रभाव नहीं है। यह अवश्य है कि गांधार व मथुरा समकालीन कला जरूर रही हैं किन्तु कोई किसी से प्रभावित नहीं थी। डॉ॰ फोगेल का मत है कि मथुरा की कला भाव की कल्पना तथा अलंकरण प्रकार सर्वथा भारतीय है। मथुरा कला शैशुनाग और जैन मूर्तियों से अवश्य प्रभावित है।

सारनाथ से प्राप्त बुद्ध मूर्ति मथुरा केन्द्र की ही निर्मित है। कुषाण का प्रतिनिधि महा क्षत्रप खरपल्लान सारनाथ में रहता था। उसी के समय में (कनिष्क के तीसरे वर्ष में) भिक्षु बल ने उस बोधिसत्व प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी। अधिक संख्या में मूर्तियों के प्राप्त होने से यह सिद्ध हो जाता है कि मथुरा ही इनका केन्द्र होगा। इन मूर्तियों के निर्माण में मूर्तिकारों द्वारा सफेद चित्ती वाले लाल सादर पत्थर का प्रयोग किया जाता था जो मथुरा के निकट सीकरी नामक स्थान से प्राप्त होता था। मथुरा शैली में भगवान बुद्ध की जो खड़ी मूर्ति प्राप्त हुई है जिसके सभी अंग प्रत्यंग भारतीय शैली की छाप प्रकट करते हैं। कई लोगों का जो यह भ्रम है कि मथुरा शैली पर गान्धार कला का प्रभाव है, यह केवल भ्रम ही है, सत्य नहीं। मथुरा शैली शुद्ध भारतीय है जिस पर प्राचीन शैली, जैन और शैशुनाग शैली का प्रभाव अवश्य है। यह भी स्पष्ट है कि आगे चलकर मथुरा शैली ने गान्धार शैली को पनपने नहीं दिया और यह अधिक उन्नति नहीं कर सकी। मथुरा में जो सभी मूर्तियां प्राप्त हुई हैं वे सभी मथुरा संग्रहालय में संग्रहीत हैं : मथुरा शैली की कुछ मूर्तियां *अत्यन्त ही प्रसिद्ध हैं इनमें एक मूर्ति स्तम्भ भी है जो विशेष उल्लेखनीय है।* उसके सामने के भाग में एक स्त्री का चित्र है जो बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। मूर्ति के ठीक पीछे एक स्तम्भ है जिसके परगहे पर चार पंख वाली सिंह नारियां बनी हैं। बुद्ध मूर्ति भी कला का एक अनुपम नमूना है। एक मूर्ति में एक स्त्री को एक झरने के नीचे नहाते दिखाया गया है जिसमें वही भाव प्रदर्शित हुए हैं, जो नहाते

समय पैदा होते है। यह बहुत ही सुन्दर मूर्ति है। एक मूर्ति एक स्त्री की मिली है जो स्तम्भ पर बनी है, जिसके हाथ मे एक तोता है और उसमे प्रेम करती दिखायी गयी है।

मथुरा शैली की मूर्ति-सम्पदा अत्यन्त विशाल है जिसके सम्पूर्ण वर्णन के लिए एक अलग ग्रन्थ चाहिए। ऊपर कई प्रसिद्ध मूर्तियो का वर्णन किया गया है। कुछ और भी यहा दिया जा रहा है। एक काफी ऊँची मूर्ति श्री (लक्ष्मी) की है जो लखनऊ के अजायबघर मे रखी है जो सजीवता और सुन्दरता की दृष्टि से अद्भुत है। एक मूर्ति प्रसाधिका (अभिजात महिलाओ की सेविका) की मूर्ति है जो काशी-कला भवन मे है। स्त्री के सिर पर फूलो और गजरो मे भरी एक पेटिका है। नाग और नागी मूर्तियो की भी मथुरा कला मे बहुतायत है। मथुरा के अजायबघर मे कुषाणकाल की बनी अत्यन्त सुन्दर श्रृंगी ऋषि की एक मूर्ति है जिसने दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था। इस तरह मथुरा शैली मे एक से एक बढ कर सुन्दर मूर्तियो का विस्तृत संसार है।

(iii) अमरावती :

मूर्तिकला निर्माणकाल मे जिस समय उत्तरी भारत मे मथुरा शैली की उन्नति हो रही थी उसी समय दक्षिण में भी प्रस्तर शिला शिल्प विकास के चरण पर चढ रहा था। शुंग नरेशो की साँची और भरहुत कला के पश्चात् दक्षिण की आन्ध्र कला मे अमरावती का स्थान प्रमुख रूप से आता है। मद्रास मे गटूर के अमरावती नामक कस्बे में ईसा से लगभग 200 वर्ष पहले आध्र नरेशो द्वारा एक बडा बौद्ध स्तूप बनाया गया था जिसमें बहुत सी मूर्तियाँ बनी है। कई मूर्तियो मे गम्भीरता और उदासी की झलक पायी जाती है। ये मूर्तियाँ दो गज से भी अधिक बडी हैं।

अमरावती के विशाल स्तूप के चारो ओर प्राचीर बनी है। स्तूप ईंटो द्वारा निर्मित है जिसके आधे भाग का व्यास 108 फीट है। जो शिल्प फलको की दोहरी पंक्ति से ढका हुआ है। इसमे संगमरमर पत्थर का भी प्रयोग हुआ है जिस पर सुन्दर मूर्तियाँ बनी है। कही स्तूपो के दृश्य है तो कही बुद्ध की पूजा के दृश्य। कही जीवन सम्बन्धी बातें हैं तो कही उनके विविध रूप। सभी सुन्दरता पूवक तराशे गये है। मौर्यकाल के समान ही अमरावती कला मे बौद्ध प्रतीको की पूजा की जाती थी। स्तूप, तूपो और ऊपर वाले पत्थर सभी कला मे परिपूर्ण है। अमरावती की मूर्तियो मे जानवरों और पुष्प लताओ का अलकरण इतना सुन्दर है कि मन मन्त्र-मुग्ध हो जाता है। यहाँ के अलकरण की सुन्दरता को देखकर यह कहना पड़ता है कि साँची और भरहुत की कला अमरावती मे सम्पूर्णता को प्राप्त हुई है।

अमरावती की प्राचीर साँची की तरह है। उसकी ऊँचाई 14 या 15 फीट है जिनमे बडी-बडी मूर्तियो को तराशा गया है। ये कुछ-कुछ दूरी पर खडी मूर्तियाँ है जो करीब छ छ फीट की हैं। इन मूर्तियो मे बौनो की भी मूर्तियाँ हैं। शिल्प कला

की दृष्टि से यह स्तूप अपने ढंग का एक ही है। अमरावती की कला भक्ति भाव से भरी है। कहीं-कहीं हास्य-रस के दृश्य भी हैं। सर्वत्र भावकारिता है। यहां की कला में गम्भीर, उदासीन तथा वैराग्य भाव बहुत खूबी के साथ बताये गये हैं। जब इन मूर्तियों पर पालिश की गयी होगी तब तो ये अति उत्कृष्ट होंगी। मूर्तियों के अतिरिक्त मनतराशा ने फूलों को भी तराशा है। कमल की व्यंजना इतनी बारीक एवं सुन्दर हुई है कि इस नक्काशी पूर्ण कार्य को देखकर आश्चर्य ही होता है। उनके कार्य कौशल से पता चलता है कि उन्हें अपने कार्य कुशल हाथों पर कितना अधिकार था। उन्होंने हर कार्य पर पूरा ध्यान रखा है।

अमरावती स्तूप चूंकि संगमरमर का निर्माण है, इसलिए यहां के शिल्पों में अधिक अलंकारिता-बारीकी एवं शिल्प में अर्धवृत्त आकार उभार लिया है। सयोजन पारम्परिक है। शिल्प की आकृतियां लम्बी हैं, व आभूषणों से अलंकृत हैं। यहां निर्मित वृक्षिकाएँ पेड़ पर चढ़ायी गयी लता की सी कमनीयता लिये हुए हैं। ऐसा भी अनुमान लगाया जाता है कि तत्कालीन राजाओं का विदेशों से अच्छा सम्पर्क होने से शिल्पों में कई-कई विदेशी (हेलेनिस्टिक) प्रभाव आया। शिल्पों के वस्त्रों, मुखाकृति पर मूंछें, घुंघराले बाल, पंखदार पशु व मानवों पर विदेशी प्रभाव माना गया है। यहां के शिल्पों में बुद्ध की सांकेतिक उपस्थिति न बताकर मानव रूपों में अंकन हुआ है। स्तूप पर स्तूप का विस्तृत नक्शा उकेरा गया है जहां कारीगर व शिल्पकार कार्यरत हैं, बनाये गये हैं राजसी वैभव, जल यातायात, नीलगिरि पहाड़ पर हाथियों को पकड़ना, नागराज पूजा, मूगपक्ख जातक, मायादेवी का स्वप्न आदि के साथ-साथ नाग कन्याएँ, सपेरे, प्रेमी युगल, यक्षिणियां वृक्षिकाएँ, विभिन्न पशु-पक्षी आदि बने हुए हैं, जो आजकल मद्रास म्यूजियम व देश के अन्य संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रही हैं।

रेखांकन—वृक्षिका अमरावती स्तूप

(iv) नागार्जुन कोंडा :

जिस प्रकार उत्तरी भारत गांधार तथा मथुरा मूर्तिकला के प्रसिद्ध केन्द्र थे उसी प्रकार दक्षिण में भी मूर्तियां बनाने के केन्द्र थे। गटुर शहर में ही एक स्तूप मिला है जिसे आंध्र नरेशों ने बनवाया था। नागार्जुन कोंडा के स्तूप का जो भग्न रूप मिला है उसकी बनावट की सफाई और आकृतियों की सुन्दरता सराहनीय अवश्य है। जब इस स्तूप की मूर्तियों की तुलना अमरावती स्तूप की मूर्तियों से करते हैं तो हमें पता चलता है कि नागार्जुन कोंडा की मूर्तियों में वे विशेषताएँ नहीं हैं जो कि अमरावती की मूर्तियों में दिखाई देती है। विद्वानों की राय है कि नागार्जुन कोंडा की मूर्तियों पर रोमन शैली की छाप है। आंध्र राजाओं ने कभी अपने राजदूत रोम सम्राट के पास भेजे थे। दोनों के मेल-मिलाप का ही यह परिणाम है कि इन मूर्तियों पर रोमन कला का प्रभाव पड़ा।

कुषाण सातवाहन काल के अन्तिम चरण में मध्यभारत में एक प्रबल राष्ट्रीय शक्ति का जागरण हुआ। इस शक्ति दल के नेता नाग वंशी क्षत्रिय थे। ये राजा हिन्दू धर्म रक्षक तथा भगवान शिव के परम भक्त थे। वे पीठ पर शिवलिंग धारण किया करते थे। इसी से वे भारशिव राजा कहलाये। भारशिव राजाओं का शासनकाल कुषाण राज्य के पतन के समय 176 ई. से लेकर 300 ई. तक है। इतिहास एवं पुराणों के आधार पर ये नागवंशी राजा भारशिव नाम से प्रसिद्ध थे। उस समय शिव पूजा राष्ट्रीय भावना थी। इनकी राजधानी प्रथम विदिशा फिर ग्वालियर के पास पद्मावती और अन्त में मिर्जापुर के पास 'कान्तिपुर' में थी। भारशिव राजाओं ने प्राचीन हिन्दू धर्म का प्रचार किया और [illegible] में इन्हीं भारशिव राजाओं ने शिव मन्दिर का निर्माण [illegible] को एक अमूल्य निधि प्रदान की। इन मन्दिरों में 'भूमरा' का [illegible] है। इन्होंने एक विशेष प्रकार के मन्दिर [illegible] है। नाग शैली के मन्दिर सादे होते थे, और [illegible] पर शिखर भी चौकोर होते थे [illegible] भारशिव राजाओं ने विदेशी कुषाणों से भारत को मुक्त [illegible] उन्हें तीसरी सदी के आरम्भ में [illegible] बार उनके अश्वमेध करने से ही [illegible] पड़ा। भूमरा के शिव मन्दिर [illegible] होना अवश्यम्भावी है; [illegible] इन मन्दिरों में [illegible] से मिलता है।

'भूमरा' का शिवालय

भूमरा के शिव मन्दिर [illegible] रामप्रसाद चन्दा [illegible]

इटारसी लाइन पर) स्थित है। भारशिव नरेशों के कुलदेव भगवान शिव थे, अतः इस मन्दिर को भाकुल-देव अथवा भारकुल देव का मन्दिर कहते हैं। मन्दिर का गर्भ भाग ही अब अवशेष है, शेष भाग नष्ट हो चुका है। चारों ओर की परिक्रमा का चबूतरा विद्यमान है। मन्दिर के द्वार की चौखट पर दाहिनी ओर मकर वाहिनी गंगा और बायीं ओर कूर्मवाहिनी यमुना की मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त चौखट के अन्य भागों पर गन्धर्वों, कमल पुष्पों, शिव मूर्तियों आदि सुन्दर रचनायें आलंकारिकता पूर्ण चित्रित हैं। मन्दिर में एक मुखलिंग की मूर्ति स्थापित है। सिर पर रत्न जटित मुकुट है, तीसरा नेत्र है, जटाओं में अर्द्धचन्द्र और गले में रत्नहार। मन्दिर की अवस्था जीर्ण-शीर्ण है परन्तु हर पत्थर पर शिव महिमा के अनेक सुन्दर नमूने हैं। कई तरह के वाद्य (भेरी, झांझर) लिये गणों की प्रतिमायें, कमल एवं कीर्ति मुख जगह-जगह पर खुदे हुए हैं। तक्षण कला में एक विशेष प्रकार का भूरे रंग का प्रस्तर काम में लाया गया है।

भूमरा शिव मन्दिर के निकट करीब 13 या 14 मील की दूरी पर 'नचना' नामक स्थान पर पार्वती का मन्दिर है। इस मन्दिर का निर्माण भी भारशिव नरेशों ने ही करवाया था जिसकी बनावट भूमरा के समान है। मन्दिर का अलंकरण भूमरा के समान तो नहीं है परन्तु मूर्तियों की शैली बिल्कुल वही है। नचना का मन्दिर भूमरा की अपेक्षा अधिक सुरक्षित है। भारशिव कालीन एक शिवलिंग की मूर्ति भूमरा से कुछ ही दूर 'उपेहरा' के पास 'खोह स्थान' में प्राप्त हुई है जो आजकल इलाहाबाद म्यूनिसिपल संग्रहालय में है। मूर्ति गोलाकार है—सिर पर रत्नों का मुकुट, विशाल जटायें—उस पर अर्द्धचन्द्र, गले में हार, ललाट पर तीसरा नेत्र, कानों में कुण्डल आदि सुन्दर बने हैं। नेत्र, नासिका एवं होठों की बनावट बहुत ही सुन्दर है। नागवंशी नरेशों का ह्रास धीरे-धीरे होने लगा और वाकाटक नरेशों ने अपने उदय के साथ उन्हें मध्य भारत से हटाना प्रारम्भ कर दिया और अन्त में नागवंशी भारशिव राजाओं का अस्तित्व समाप्त हो गया।

गुप्त-काल

भारतीय कला का चूड़ामणि काल यही गुप्त काल है। बीते युगों में भारत ने कला की कई उन्नत मंजिलें तय की हैं। परन्तु आकृतियों की सुघराई, अभिप्रायों की रुचि, अलंकरणों की शोभा कला की सादगी, सुन्दरता एवं कौशल का जैसा उदाहरण इस काल ने प्रस्तुत किया है, वैसा अन्य किसी काल में देखने को नहीं मिला। यह काल 320 ई. से 600 ई. तक माना जाता है। भारतीय इतिहास में गुप्त काल "स्वर्ण युग" कहा जाता है परन्तु तक्षण कला के क्षेत्र में भी इस काल ने कई स्वर्ण पृष्ठ खोले हैं।

मध्य भारत में नागों का अधिकार कम होकर वाकाटक नरेशों के हाथ आ गया। नागों और गुप्तों ने भी अपनी बेटियाँ वाकाटकों को दीं। उनका प्रबल सम्राट

प्रवरसेन हुआ। धीरे-धीरे गुप्त उत्तर में प्रबल होते गये। वाकाटक राज्य बना रहा और इन दोनों शक्तियों ने शकों को पूर्ण रूप से परास्त करने का मार्ग बना लिया। गुप्त वंश गंगा-यमुना के द्वाब मे उदय हुआ जिसकी प्रारम्भिक शक्ति चन्द्रगुप्त प्रथम ने प्रारम्भ की। चन्द्रगुप्त पराक्रमी, वीर एवं कुशल नरेश था जिसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। उसने एक नये गुप्त संवत को चलाया तथा सोने का सिक्का प्रचलित किया। चन्द्रगुप्त ने समस्त उत्तरी भारत में शक्तिशाली राज्य स्थापित किया। चन्द्रगुप्त प्रथम के पश्चात् उसका बेटा समुद्रगुप्त और पौत्र शकारि सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य बड़े प्रबल प्रतापी राजा हुए। कुमार गुप्त के काल मे भी कला का विकास चरम सीमा पर पहुँच गया था। उसके बेटे स्कन्द गुप्त ने अपने पराक्रम एवं तपस्या से देश को संवारा परन्तु हूणों की बढ़ती हुई शक्ति ने बाद में गुप्त साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया।

गुप्त काल मे कला एवं साहित्य की अद्‌भुत उन्नति हुई थी। भारतीय ललित कला के विकास में गुप्तों का महान् योग रहा। उस समय भारत की सम्यता और संस्कृति उन्नति के उच्च शिखर पर थी। कलाकारों के अद्‌भुत कौशल ने कई नये कीर्तिमान स्थापित किये। परम भागवत् वैष्णव मतावलम्बी गुप्त नरेशों की छत्रछाया में हिन्दू-धर्म भली-भांति फला-फूला। गुप्त काल से ही पौराणिक युग अथवा हिन्दू वैष्णव धर्म का युग प्रारम्भ मानना चाहिए। वर्तमान के प्राप्त प्राचीन पुराणों का सम्पादन भी इसी काल मे हुआ था। इसी काल में चित्रकला, मूर्तिकला और मन्दिर निर्माण कला के अनेक प्रामाणिक शास्त्रों की रचना हुई। विश्वकर्मा-प्रकाश, शिल्परत्न चित्र लक्षण, विष्णु धर्मोत्तरम् मान-सार, प्रतिमा मान-लक्षण, मयशास्त्र और चित्रांकन आदि शिल्प शास्त्र के नामोल्लेख प्राप्त हुए है। संस्कृत के प्रसिद्ध महाकवि कालिदास इसी काल में हुए थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने एक स्थान पर लिखा है, "गुप्तों के शासन काल में विद्यार्थियों को पंच विद्याओं के साथ-साथ शिल्पशास्त्र की शिक्षा देने का प्रावधान था।" गुप्त युग मे साहित्य और कला की अद्‌भुत उन्नति हुई। अजन्ता और बाघ गुफाओं के जगप्रसिद्ध चित्र भी तभी निर्मित हुए थे। अजन्ता की उन्नीसवी गुफा का निर्माण तभी हुआ था। शिल्पकार चट्टानों को इस तरह काटते थे कि द्वार, कक्ष, स्तम्भ और मूर्तियां सभी पत्थर से निकलते आवें। गुफाओं के मुँह इस तरह निर्मित किये जाते कि प्रकाश बराबर आता रहे। साहित्य, मूर्ति-कला, चित्रकला के क्षेत्र मे गुप्तों का-सा कुछ नहीं है। उनके काल के स्वर्ण सिक्के, ढालने की कला में बेजोड़ हैं। धातु की ढलाई का अनुमान हमे उस काल मे कुर्किहार की तांबे, पीतल और कांसे की मूर्तियों से लगता है। चन्द्रगुप्त की बनवाई लोहे की लाट आज डेढ हजार वर्ष के अनन्तर भी धूप और वर्षा मे खड़ी है जिस पर आज भी कोई असर नहीं हुआ है। यह लाट दिल्ली मे कुतुबमीनार के पास महरौली ग्राम के पास है। इस लाट की ऊँचाई 238 फीट है। इसकी चौकी पर गरुड़ की मूर्ति बनी हुई है।

गुप्त सम्राट विष्णु भक्त थे तथा अपने को परम भागवत मानते थे। हिन्दू धर्म के प्रतिपालक होते हुए भी उनमें धार्मिक सहिष्णुता का व्यापक दृष्टिकोण था। अतः उन्होंने अन्य धर्मों की प्रगति में कोई बाधा नहीं आने दी तथा उनमें उदारता-पूर्वक विकास में योग दिया। ब्राह्मण धर्म की मूर्तियों का सुन्दर बनना स्वाभाविक ही था, परन्तु सबसे महान् और सुन्दर बौद्ध मूर्तियां गुप्त काल में ही बनीं। गुप्त काल में बौद्ध और ब्राह्मण दोनों धर्मों की मूर्तियों का चोटी तक विकास हुआ। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि साहित्य और कलागत उन्नति सम्प्रदाय विशेष की नहीं वरन् युग की होती है। गुप्त काल में कला का सर्वतोन्मुखी विकास हुआ तथा धातु कला, मूर्तिकला, मिट्टी से निर्मित मूर्तें एवं चित्रकला—सभी कलाएं चरम शिखर पर पहुँचीं।

गुप्त काल में बौद्ध धर्म सम्बन्धी भगवान बुद्ध की अनेक मूर्तियों का निर्माण हुआ है। ये सभी मूर्तियां संसार के लिए एक महान् आश्चर्य हैं। मथुरा अजायबघर की एक 5 नम्बर की खड़ी बुद्ध की मूर्ति शान्ति और गम्भीरता का जीता-जागता प्रतीक है। उनकी अभयमुद्रा जीवों को अभयदान दे रही है, नासाग्र पर नेत्र टिके हैं और मुख अण्डाकार है। चीवर की लहरियां अत्यन्त सुन्दर हो गई हैं। दूसरी मूर्ति सारनाथ में है। भगवान बुद्ध पद्मासन स्थिति में विराजमान हैं जिनका धर्मचक्र प्रवर्त्तन है। उनके शरीर पर पड़े वस्त्र की लहरियां ऐसी बनी हैं मानो वे शरीर में खो गई हैं। भारतीय कलाकारों ने ग्रीक शैली का भारतीयकरण करके एक महान् आश्चर्य पैदा किया है। उपर्युक्त दोनों मूर्तियों के मुखमण्डल के पार्श्व में प्रभामंडल निर्मित है जिसका कार्य अत्यन्त कलापूर्ण है। वास्तव में यह प्रभामंडल कुषाण कला की देन है। गुप्त काल में यह प्रभामंडल बहुत ही सुन्दर और अलंकृत रूप में रचा जाने लगा था। इन मूर्तियों के मुखमण्डल पर असीम शान्ति, गम्भीरता एवं कोमलता है। प्रतिमा के हर अंग से सुकुमारता झलकती है तथा प्रत्येक अंग अपने भावों को स्वयं ही प्रदर्शित करता है। भगवान बुद्ध की एक अन्य भव्य ताम्र-मूर्ति भागलपुर जिले के सुल्तानगंज में मिली है जो साढ़े सात फुट ऊँची है। यह भी एक खड़ी मूर्ति अभय मुद्रा लिये है। इस मूर्ति की गंभीरता और तुष्टि भी अनुपम है। धातु की मूर्ति में चेहरे पर अपूर्व शान्ति एवं दिव्यता का अनुपम प्रकाश निर्मित करना कला की एक अद्भुत कसौटी है जिसमें कलाकारों की भक्तिपूर्ण भावना पूर्णतया प्रदर्शित होती है। यह मूर्ति अपनी श्रेष्ठता के कारण आजकल इंगलैण्ड के बर्मिंघम संग्रहालय में विदेशियों को आश्चर्यचकित करने के लिए प्रस्थापित की गई है। उपर्युक्त तीनों बुद्ध मूर्तियां संसार की सबसे सुन्दर मूर्तियां मानी जाती हैं।

———

अपनी परम्परा की ही अनुरञ्जण करते रहे। तक्षण कला अथवा मूर्तिकला की दृष्टि से यह काल बड़े महत्त्व का माना जाता है तथा कई लोगों ने इसे समस्यापूर्ण काल कहा है। हम इन विवादों में न पकड़कर केवल कलात्मक पक्ष पर विचार करेंगे। कुषाण-सातवाहन काल में मूर्तिकला के निम्नलिखित केन्द्र थे जिनमें उनकी शैलियों का नाम पड़ा :

(i) गान्धार (गान्धार शैली)
(ii) मथुरा (मथुरा शैली)
(iii) अमरावती
(iv) नागार्जुन कोंडा

(i) गान्धार शैली ·

इस शैली का जन्म कनिष्क महान के राज्यकाल में भारतीय मूर्तिकला शैली और यूनानी मूर्तिकला शैली के मधुर सम्मिश्रण के फलस्वरूप हुआ था। भारत के पूर्व में पंजाब से अफगानिस्तान तक फैला हुआ है। इस भाग में बीसवीं सदी के इतिहासकारों को अनगिनत काले पत्थर, प्लास्टर व धातु के शिल्प मिले हैं जिन पर समय, लेख आदि का कोई उल्लेख नहीं है। इस शैली के प्रसंग पर श्री स्मिथ एवं सर जॉन मार्शल के मतानुसार गान्धार शैली पर यूनानी शैली का प्रभाव है तथा भारतीय मूर्तिकला के प्रभाव से यह अलिप्त है, परन्तु भारतीय विद्वान् डॉ. कुमार स्वामी का कहना है कि इस पर भारतीय मूर्ति शैली की छाप है। शैली यूनानी है परन्तु उनका विषय भारतीय है। इस शैली की मूर्तियाँ काले स्लेट के पत्थर और कुछ मसाले तथा चूने की बनी हुई अधिक मिली है। इन पर लिखा हुआ कुछ भी नहीं है। परन्तु मूर्तिकला के इतिहासज्ञों के मतानुसार ये मूर्तियाँ 50 ई. पू. से 200 ई. तक की है। इसके पहले या बाद में इसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। उस समय बौद्ध धर्म की बहुत ही चर्चा थी। इसी काल में महायान धर्म की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार बौद्ध धर्म निवृत्ति प्रधान हीनयान प्रवृत्ति तथा भक्ति का प्रधान रूप में परिणत हो गया। यही कारण है कि सर्व प्रथम इसी काल में बुद्ध भगवान की प्रतिमा का निर्माण पाया जाता है। इस शैली में भगवान बुद्ध की अनेकों मूर्तियों का निर्माण हुआ। विषय बुद्ध जीवन की समस्त कथाएँ, जातक, आलेखन आदि थी। गान्धार शैली की बहुत सी मूर्तियाँ हाथी-दांत की बनी हुई अफगानिस्तान में मिली हैं। इनको देखकर कुछ मूर्तिकला के विद्वानों का मत है कि इन पर सांची की मूर्तिकला की छाप दिखाई देती है क्योंकि सांची के मूर्तिकारों ने भी हाथी-दांत की मूर्तियाँ बनाई है। गान्धार शैली की मूर्तियों में हाथ-पांव की उंगलियाँ, आंखें भौंहे, अलकरण आदि में पूर्ण भारतीय रूप दिखाई देता है। जैसा इसकी समकालीन गुफाएँ, अजन्ता में है। शिल्प संयोजन, शिल्प निर्माण के मापदण्ड सिन्धुघाटी की शिल्प परम्पराओं को भी यहाँ के शिल्पकारों ने आत्मसात् किया है। जातक दृश्यों का सन्निवेश

आदि भारतीय है और उस पर गांधी की छाप दिखायी देती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि गान्धार शैली की तत्कालीन बौद्ध मूर्तियों पर यूनानी कला की छाप नाम मात्र को भी नहीं है और न किसी भी प्रकार ग्रीक कल्पना को ही सिद्ध करती है। गांधार के शिल्पों से गढ़े हुए बुद्ध, हड्डा के बुद्ध, लुम्बिनी के बुद्ध बोधिसत्व अनेक बुद्ध युग्म हैं जो गांधार शैली को भारतीय शिल्प में स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत करते हैं।

(ii) मथुरा शैली :

कुषाण काल में कला का सर्वश्रेष्ठ केन्द्र मथुरा था और इस कला की उन्नति गांधार कला के सदृश्य हुई। इस काल में मथुरा के कलाकारों ने पर्याप्त उन्नति की। सांची, भरहुत शैशुनाग की प्राचीन शैली को लेकर इसमें कुछ परिवर्तन करके अपनी निजी शैली को जन्म दिया। भरहुत की मूर्तियों का चिपटापन उन्हें रुचिकर न लगा इसी से उन्होंने शैशुनाग शैली को अपनाया। भरहुत के अलंकरण को मथुरा कलाकारों ने ज्यों का त्यों अपना लिया। इस नवीन शैली की अनेक मूर्तियां मथुरा के आस-पास प्राप्त हुई हैं। उन पर गांधार शैली का कोई प्रभाव नहीं है। यह अवश्य है कि गांधार व मथुरा समकालीन कला जरूर रही है किन्तु कोई किसी से प्रभावित नहीं थी। डॉ. फार्गेस का मत है कि मथुरा की कला भाव की कल्पना तथा अलंकरण प्रकार सर्वथा भारतीय है। मथुरा कला शैशुनाग और जैन मूर्तियों से अवश्य प्रभावित है।

सारनाथ में प्राप्त बुद्ध मूर्ति मथुरा केन्द्र की ही निर्मित है। कुषाण का प्रतिनिधि महा क्षत्रप खरपल्लान सारनाथ में रहता था। उसी के समय में (कनिष्क के तीसरे वर्ष में) भिक्षु बल ने इस बोधिसत्व प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी। अधिक संख्या में मूर्तियों के प्राप्त होने से यह सिद्ध हो जाता है कि मथुरा ही इनका केन्द्र होगा। इन मूर्तियों के निर्माण में मूर्तिकारों द्वारा सफेद चित्ती वाले लाल सादर पत्थर का प्रयोग किया जाता था जो मथुरा के निकट सीकरी नामक स्थान से प्राप्त होता था। मथुरा शैली में भगवान बुद्ध की जो खड़ी मूर्ति प्राप्त हुई है जिसके सभी अंग प्रत्यंग भारतीय शैली की छाप प्रकट करते हैं। कई लोगों का जो यह भ्रम है कि मथुरा शैली पर गान्धार कला का प्रभाव है, यह केवल भ्रम ही है, सत्य नहीं। मथुरा शैली शुद्ध भारतीय है जिस पर प्राचीन शैली, जैन और शैशुनाग शैली का प्रभाव अवश्य है। यह भी स्पष्ट है कि आगे चलकर मथुरा शैली ने गान्धार शैली को फलने नहीं दिया और वह अधिक उन्नति नहीं कर सकी। मथुरा में जो सभी मूर्तियां प्राप्त हुई हैं वे सभी मथुरा संग्रहालय में संग्रहीत हैं। मथुरा शैली की कुछ मूर्तियां अत्यन्त ही प्रसिद्ध हैं इनमें एक मूर्ति स्तम्भ भी है जो विशेष उल्लेखनीय है। इसके सामने के भाग में एक स्त्री का चित्र है जो बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। मूर्ति के ठीक पीछे एक स्तम्भ है जिसके परगट्टे पर चार पंख वाली सिंह नारियां बनी हैं। बुद्ध मूर्ति भी कला का एक अनुपम नमूना है। एक मूर्ति में एक स्त्री को एक झरने के नीचे नहाते दिखाया गया है जिसमें वही भाव प्रदर्शित हुए हैं, जो नहाते

समय पैदा होते हैं। यह बहुत ही सुन्दर मूर्ति है। एक मूर्ति एक स्त्री की मिली है जो स्तम्भ पर बनी है, जिसके हाथ में एक तोता है और उससे प्रेम करती दिखायी गयी है।

मथुरा शैली की मूर्ति-सम्पदा अत्यन्त विशाल है जिसके सम्पूर्ण वर्णन के लिए एक अलग ग्रन्थ चाहिए। ऊपर कई प्रसिद्ध मूर्तियों का वर्णन किया गया है। कुछ और भी यहा दिया जा रहा है। एक काफी ऊँची मूर्ति श्री (लक्ष्मी) की है जो लखनऊ के अजायबघर मे रखी है जो सजीवता और सुन्दरता की दृष्टि से अद्भुत है। एक मूर्ति प्रसाधिका (अभिजात महिलाओं की सेविका) की मूर्ति है जो काशी-कला भवन मे है। स्त्री के सिर पर फूलो और गजरों से भरी एक पेटिका है। नाग और नागी मूर्तियों की भी मथुरा कला मे बहुतायत है। मथुरा के अजायबघर मे कुषाणकाल की बनी अत्यन्त सुन्दर शृंगी ऋषि की एक मूर्ति है जिसने दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था। इस तरह मथुरा शैली मे एक से एक बढ कर सुन्दर मूर्तियो का विस्तृत संसार है।

(iii) अमरावती :

मूर्तिकला निर्माणकाल मे जिस समय उत्तरी भारत मे मथुरा शैली की उन्नति हो रही थी उसी समय दक्षिण में भी प्रस्तर शिला शिल्प विकास के चरण पर चढ रहा था। शुंग नरेशो की साँची और भरहुत कला के पश्चात् दक्षिण की आन्ध्र कला मे अमरावती का स्थान प्रमुख रूप से आता है। मद्रास में गटूर के अमरावती नामक कस्बे मे ईसा से लगभग 200 वर्ष पहले आंध्र नरेशो द्वारा एक बडा बौद्ध स्तूप बनाया गया था जिसमें बहुत सी मूर्तियाँ बनी है। कई मूर्तियो मे गम्भीरता और उदासी की झलक पायी जाती है। ये मूर्तियाँ दो गज से भी अधिक बडी हैं।

अमरावती के विशाल स्तूप के चारो ओर प्राचीर बनी है। स्तूप ईंटो द्वारा निर्मित है जिसके आधे भाग का व्यास 108 फीट है। जो शिल्प फलकों की दोहरी पंक्ति से ढका हुआ है। इसमें संगमरमर पत्थर का भी प्रयोग हुआ है जिस पर सुन्दर मूर्तियाँ बनी है। कही स्तूपो के दृश्य है तो कही बुद्ध की पूजा के दृश्य। कही जीवन सम्बन्धी बातें हैं तो कही उनके विविध रूप। सभी सुन्दरता पूर्वक तराशे गये है। मौर्यकाल के समान ही अमरावती कला मे बौद्ध प्रतीकों की पूजा की जाती थी। स्तूप, सूची और ऊपर वाले पत्थर सभी कला मे परिपूर्ण हैं। अमरावती की मूर्तियो में जानवरो और पुष्प लताओ का अलंकरण इतना सुन्दर है कि मन मन्त्र-मुग्ध हो जाता है। यहाँ के अलंकरण की सुन्दरता को देखकर यह कहना पडता है कि साँची और भरहुत की कला अमरावती मे सम्पूर्णता को प्राप्त हुई है।

अमरावती की प्राचीर साँची की तरह है। उसकी ऊँचाई 14 या 15 फीट है जिनमे बडी-बडी मूर्तियो को तराशा गया है। ये कुछ-कुछ दूरी पर खड़ी मूर्तियाँ है जो करीब छ छ फीट की है। इन मूर्तियो मे बौनों की भी मूर्तियां है। शिल्प कला

की दृष्टि से यह स्तूप अपने युग का एक ही है। अमरावती की कला भक्ति भाव से भरी है। कहीं-कहीं हास्य-रस के दृश्य भी हैं। सर्वत्र आलंकारिता है। यहाँ की कला में गम्भीर, उदासीन तथा वैराग्य भाव बहुत खूबी के साथ बताये गये हैं। अब इन मूर्तियों पर पालिश की गयी होगी तब तो ये अति उत्कृष्ट होंगी। मूर्तियों के अति-रिक्त संगतराश ने फूलों को भी तराशा है। कमल की व्यंजना इतनी बारीक एवं सुन्दर हुई है कि इस नक्काशी पूर्ण कार्य को देखकर आश्चर्य ही होता है। उनके कार्य कौशल से पता चलता है कि उन्हें अपने कार्य कुशल हाथों पर कितना अधिकार था। उन्होंने हर कार्य पर पूर्ण सतुलन रखा है।

अमरावती स्तूप चूंकि संगमरमर का निर्माण है, इसलिए यहां के शिल्पों में अधिक आलंकारिता-बारीकी एवं शिल्प में अर्धवृत्त आकार उभार लिया है। संयोजन पारम्परिक है। शिल्प की आकृतियां लम्बी हैं, व आभूषणों से अलंकृत हैं। यहां निर्मित वृक्षिकाएँ पेड़ पर चढ़ायी गयी लता की सी कमनियता लिये हुए है। ऐसा भी अनुमान लगाया जाता है कि तत्कालीन राजाओं का विदेशों से अच्छा सम्पर्क होने से शिल्पों में कई-कई विदेशी (हेलमिस्टिक) प्रभाव आया। शिल्पों के वस्त्रों, मुखाकृति पर मूछें, घुंघराले बाल, पखदार पशु व मानवों पर विदेशी प्रभाव माना गया है। यहां के शिल्पों में बुद्ध की सांकेतिक उपस्थिति न बताकर मानव रूपों में अंकन हुआ है। स्तूप पर स्तूप का विस्तृत नक्शा उकेरा गया है जहाँ कारीगर व शिल्पकार कार्यरत हैं, बनाये गये हैं राजसी वैभव, जल यातायात, नीलगिरि पहाड़ पर हाथियों को पकड़ना, नागरज पूजा, मूगपक्ख जातक, मायादेवी का स्वप्न आदि के साथ-साथ नाग कन्याएँ, मोरें, प्रेमी युगल, यक्षिणियां वृक्षिकाएँ, विभिन्न पशु-पक्षी आदि बने हुए हैं, जो आजकल मद्रास म्यूजियम व देश के अन्य संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रही हैं।

रेखांकन—वृक्षिका : अमरावती स्तूप

(iv) नागार्जुन कोंडा :

जिस प्रकार उत्तरी भारत गांधार तथा मथुरा मूर्तिकला के प्रसिद्ध केन्द्र थे उसी प्रकार दक्षिण में भी मूर्तियां बनाने के केन्द्र थे। गंटुर शहर में ही एक स्तूप मिला है जिसे आंध्र नरेशों ने बनवाया था। नागार्जुन कोंडा के स्तूप का जो भग्न रूप मिला है उसकी बनावट की सफाई और आकृतियों की सुन्दरता सराहनीय अवश्य है। जब इस स्तूप की मूर्तियों की तुलना अमरावती स्तूप की मूर्तियों से करते हैं तो हमें पता चलता है कि नागार्जुन कोंडा की मूर्तियों में वे विशेषताएँ नहीं हैं जो कि अमरावती की मूर्तियों में दिखाई देती है। विद्वानों की राय है कि नागार्जुन कोंडा की मूर्तियों पर रोमन शैली की छाप है। आंध्र राजाओं ने कभी अपने राजदूत रोम सम्राट के पास भेजे थे। दोनों के मेल-मिलाप का ही यह परिणाम है कि इन मूर्तियों पर रोमन कला का प्रभाव पड़ा।

कुषाण सातवाहन काल के अन्तिम चरण में मध्यभारत में एक प्रबल राष्ट्रीय शक्ति का जागरण हुआ। इस शक्ति दल के नेता नाग वंशी क्षत्रिय थे। ये राजा हिन्दू धर्म रक्षक तथा भगवान शिव के परम भक्त थे। वे पीठ पर शिवलिंग धारण किया करते थे। इसी से वे भारशिव राजा कहलाये। भारशिव राजाओं का शासनकाल कुषाण राज्य के पतन के समय 176 ई. से लेकर 300 ई. तक है। इतिहास एवं पुराणों के आधार पर ये नागवंशी राजा भारशिव नाम से प्रसिद्ध थे। उस समय शिव पूजा राष्ट्रीय भावना थी। इनकी राजधानी प्रथम विदिशा फिर ग्वालियर के पास पद्मावती और अन्त में मिर्जापुर के पास 'कांतिपुर' में थी। भारशिव राजाओं ने प्राचीन हिन्दू धर्म का प्रचार किया और सर्वप्रथम भारतवर्ष में इन्हीं भारशिव राजाओं ने शिव मन्दिर का निर्माण कराकर भारतीय मूर्तिकला को एक अमूल्य निधि प्रदान की। इन मन्दिरों में 'भूमरा' का प्रथम शिव मन्दिर है। इन्होंने एक विशेष प्रकार के मन्दिर शिखर का चलन किया जो नगर कहलाता है। नाग शैली के मन्दिर सादे होते थे, और उनकी छेकन चौकोर होती थी। जिस पर शिखर भी चौकोर होते थे जो क्रमशः ऊपर की ओर सकरे होते चले जाते थे। भारशिव राजाओं ने विदेशी कुषाणों से भारत को मुक्त करने का बीड़ा उठाया और उन्हें तीसरी सदी के प्रारम्भ में बार-बार हराकर अश्वमेध किया। काशी में दस बार उनके अश्वमेध करने से ही वहाँ के प्रसिद्ध पवित्र घाट का नाम दशाश्वमेध पड़ा। भूमरा के शिव मन्दिर में निर्मित ताड़ वृक्ष के चिह्नों से उसका नागकालीन होना अवश्यम्भावी है; क्योंकि ताड़ वृक्ष नागवंशी नरेशों का विशेष चिह्न है। अतः इन मन्दिरों के अलंकरण में ताड़ वृक्ष (खजुर वृक्ष) नाग चिह्न के रूप में अधिकता से मिलता है।

'भूमरा' का शिवमन्दिर :

भूमरा के शिव मन्दिर की खोज सर्वप्रथम 1920 ई. में पुरातत्ववेत्ता राखालदास बनर्जी ने की थी। यह मन्दिर नागोद तहसील में (विंध्य प्रदेश में जबलपुर

दुटारसी नाटन पर) स्थित है। भारशिव नरेशों के कुल-देव भगवान शिव थे, अतः इस मन्दिर को भारकुल-देव अथवा भारकुल देव का मन्दिर कहते हैं। मन्दिर का गर्भ भाग ही अब अवशेष है, शेष सारा नष्ट हो चुका है। चारों ओर की परिक्रमा का चबूतरा विद्यमान है। मन्दिर के द्वार की चौखट पर दाहिनी ओर मकर वाहिनी गंगा और बायीं ओर कूर्मवाहिनी यमुना की मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त चौखट के अन्य भागों पर गणों, कमल पुष्पों, शिव मूर्तियाँ आदि सुन्दर रचनाएँ आकर्षकता पूर्ण चित्रित हैं। मन्दिर मे एक मुखलिंग की मूर्ति स्थापित है। सिर पर रत्न जटित मुकुट है, तीसरा नेत्र है, जटाओं मे अर्द्धचन्द्र और गले में रत्नहार। मन्दिर की अवस्था जीर्ण-शीर्ण है परन्तु हर पत्थर पर शिव महिमा के अनेक सुन्दर नमूने हैं। कई तरह के वाद्य (भेरी, झालर) लिये गणों की प्रतिमाएँ, कमल एवं कीर्ति मुख जगह-जगह पर खुदे हुए हैं। तक्षण कला मे एक विशेष प्रकार का भूरे रंग का प्रस्तर काम में लाया गया है।

भूमरा शिव मन्दिर के निकट करीब 13 या 14 मील की दूरी पर 'नचना' नामक स्थान पर पार्वती का मन्दिर है। इस मन्दिर का निर्माण भी भारशिव नरेशों ने ही करवाया था जिसकी बनावट भूमरा के समान है। मन्दिर का अलंकरण भूमरा के समान तो नहीं है परन्तु मूर्तियों की शैली बिल्कुल वही है। नचना का मन्दिर भूमरा की अपेक्षा अधिक सुरक्षित है। भारशिव कालीन एक शिवलिंग की मूर्ति भूमरा से कुछ ही दूर 'उचेहरा' के पास 'खोह स्थान' में प्राप्त हुई है जो आजकल इलाहाबाद म्युनिसिपल संग्रहालय में है। मूर्ति गोलाकार है—सिर पर रत्नों का मुकुट, विशाल जटाएँ—उस पर अर्द्धचन्द्र, गले मे हार, ललाट पर तीसरा नेत्र, कानों में कुण्डल आदि सुन्दर बने हैं। नेत्र, नासिका एवं होठों की बनावट बहुत ही सुन्दर है। नागवंशी नरेशों का ह्रास धीरे-धीरे होने लगा और वाकाटक नरेशों ने अपने उदय के साथ उन्हें मध्य भारत से हटाना प्रारम्भ कर दिया और अन्त मे नागवंशी भारशिव राजाओं का अस्तित्व समाप्त हो गया।

गुप्त-काल

भारतीय कला का चूडामणि काल यही गुप्त काल है। बीते युगो मे भारत ने कला की कई उन्नत मंजिलें तय की हैं। परन्तु आकृतियों की सुघराई, अभिप्रायों की रुचि, अलंकरणों की शोभा कला की सादगी, सुन्दरता एवं कौशल का जैसा उदाहरण इस काल ने प्रस्तुत किया है, वैसा अन्य किसी काल मे देखने को नहीं मिला। यह काल 320 ई. से 600 ई. तक माना जाता है। भारतीय इतिहास में गुप्त काल "स्वर्ण युग" कहा जाता है परन्तु तक्षण कला के क्षेत्र मे भी इस काल ने कई स्वर्ण पृष्ठ खोले है।

मध्य भारत मे नागो का अधिकार कम होकर वाकाटक नरेशो के हाथ आ गया। नागो और गुप्तों ने भी अपनी बेटियाँ वाकाटको को दी। उनका प्रबल सम्राट

प्रवरसेन हुआ। धीरे-धीरे गुप्त उत्तर मे प्रबल होते गये। वाकाटक राज्य बना रहा और इन दोनो शक्तियों ने शको को पूर्ण रूप मे परास्त करने का मार्ग बना लिया। गुप्त वश गगा-यमुना के द्वाब मे उदय हुआ जिसकी प्रारम्भिक शक्ति चन्द्रगुप्त प्रथम ने प्रारम्भ की। चन्द्रगुप्त पराक्रमी, वीर एव कुशल नरेश था जिसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। उसने एक नये गुप्त सवत को चलाया तथा सोने का सिक्का प्रचलित किया। चन्द्रगुप्त ने समस्त उत्तरी भारत मे शक्तिशाली राज्य स्थापित किया। चन्द्रगुप्त प्रथम के पश्चात् उसका बेटा समुद्रगुप्त और पौत्र शकारि सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य बड़े प्रबल प्रतापी राजा हुए। कुमार गुप्त के काल में भी कला का विकास चरम सीमा पर पहुँच गया था। उसके बेटे स्कन्द गुप्त ने अपने पराक्रम एव तपस्या से देश को संवारा परन्तु हूणों की बढती हुई शक्ति ने बाद में गुप्त साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया।

गुप्त काल मे कला एव साहित्य की अद्भुत उन्नति हुई थी। भारतीय ललित कला के विकास में गुप्तो का महान् योग रहा। उस समय भारत की सभ्यता और सस्कृति उन्नति के उच्च शिखर पर थी। कलाकारो के अद्भुत कौशल ने कई नये कीर्तिमान स्थापित किये। परम भागवत् वैष्णव मतावलम्बी गुप्त नरेशो की छत्रछाया मे हिन्दू-धर्म भली-भाति फला-फूला। गुप्त काल से ही पौराणिक युग अथवा हिन्दू वैष्णव धर्म का युग प्रारम्भ मानना चाहिए। वर्तमान के प्राप्त प्राचीन पुराणों का सम्पादन भी इसी काल में हुआ था। इसी काल में चित्रकला, मूर्तिकला और मन्दिर निर्माण कला के अनेक प्रामाणिक शस्त्रों की रचना हुई। विश्वकर्मा-प्रकाश, शिल्परत्न चित्र लक्षण, विष्णु धर्मोत्तरम् मान-सार, प्रतिमा मान-लक्षण, भयशास्त्र और चित्राकन आदि शिल्प शास्त्र के नामोल्लेख प्राप्त हुए है। संस्कृत के प्रसिद्ध महाकवि कालिदास इसी काल मे हुए थे। चीनी यात्री ह्वेनसाग ने एक स्थान पर लिखा है, "गुप्तो के शासन काल मे विद्यार्थियों को पंच विद्याओं के साथ-साथ शिल्पशास्त्र की शिक्षा देने का प्रावधान था।" गुप्त युग में साहित्य और कला की अद्भुत उन्नति हुई। अजन्ता और बाघ गुफाओ के जगप्रसिद्ध चित्र भी तभी निर्मित हुए थे। अजन्ता की उन्नीसवी गुफा का निर्माण तभी हुआ था। शिल्पकार चट्टानों को इस तरह काटते थे कि द्वार, कक्ष, स्तम्भ और मूर्तिया सभी पत्थर से निकलते आवें। गुफाओ के मुँह इस तरह निर्मित किये जाते कि प्रकाश बराबर आता रहे। साहित्य, मूर्ति-कला, चित्रकला के क्षेत्र में गुप्तो का-सा कुछ नही है। उनके काल के स्वर्ण सिक्के, ढालने की कला मे बेजोड़ हैं। धातु की ढलाई का अनुमान हमें उस काल मे कुर्किहार की ताबे, पीतल और कासे की मूर्तियों से लगता है। चन्द्रगुप्त की बनवाई लोहे की लाट आज डेढ हज़ार वर्ष के अनन्तर भी धूप और वर्षा मे खड़ी है जिस पर आज भी कोई असर नही हुआ है। यह लाट दिल्ली मे कुतुबमीनार के पास महरौली ग्राम के पास है। इस लाट की ऊँचाई 238 फीट है। इसकी चौकी पर गरुड की मूर्ति बनी हुई है।

गुप्त सम्राट विष्णु भक्त थे तथा अपने को परम भागवत मानते थे। हिन्दू धर्म के प्रतिपालक होते हुए भी उनमें धार्मिक सहिष्णुता का व्यापक दृष्टिकोण था। अतः उन्होंने अन्य धर्मों की प्रगति में कोई बाधा नहीं आने दी तथा उनमें उदारता-पूर्वक विकास में योग दिया। ब्राह्मण धर्म की मूर्तियों का सुन्दर बनना स्वाभाविक ही था, परन्तु सबसे महान् और सुन्दर बौद्ध मूर्तियां गुप्त काल में ही बनीं। गुप्त काल में बौद्ध और ब्राह्मण दोनों धर्मों की मूर्तियों का चोटी तक विकास हुआ। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि साहित्य और कलागत उन्नति सम्प्रदाय विशेष की नहीं वरन् युग की होती है। गुप्त काल में कला का सर्वतोन्मुखी विकास हुआ यथा धातु कला, मूर्तिकला, मिट्टी से निर्मित मूरतें एवं चित्रकला—सभी कलाएँ चरम शिखर पर पहुँचीं।

गुप्त काल में बौद्ध धर्म सम्बन्धी भगवान बुद्ध की अनेक मूर्तियों का निर्माण हुआ है। ये सभी मूर्तियां संसार के लिए एक महान् आश्चर्य है। मथुरा अजायबघर की एक 5 नम्बर की खड़ी बुद्ध की मूर्ति शान्ति और गम्भीरता का जीता-जागता प्रतीक है। उनकी अभयमुद्रा जीवों को अभयदान दे रही है, नासाग्र पर नेत्र टिके हैं और मुख अण्डाकार है। चीवर की लहरियां अत्यन्त हल्की हो गई हैं। दूसरी एक मूर्ति सारनाथ में है। भगवान बुद्ध पद्मासन स्थिति में विराजमान हैं जिनका धर्म चक्र प्रवर्तन है। उनके शरीर पर पड़े वस्त्र की लहरियां ऐसी बनी हैं मानो वे शरीर में खो गई हैं। भारतीय कलाकारों ने ग्रीक शैली का भारतीयकरण करके एक महान् आश्चर्य पैदा किया है। उपर्युक्त दोनों मूर्तियों के मुखमण्डल के पार्श्व में प्रभामंडल निर्मित है जिसका कार्य अत्यन्त कलापूर्ण है। वास्तव में यह प्रभामंडल कुषाण कला की देन है। गुप्त काल में यह प्रभामंडल बहुत ही सुन्दर और अलंकृत रूप में रचा जाने लगा था। इन मूर्तियों के मुखमण्डल पर असीम शान्ति, गम्भीरता एवं कोमलता है। प्रतिमा के हर अंग से सुकुमारता झलकती है तथा प्रत्येक अंग अपने भावों को स्वयं ही प्रदर्शित करता है। भगवान बुद्ध की एक अन्य भव्य ताम्र-मूर्ति भागलपुर जिले के सुल्तानगंज में मिली है जो साढ़े सात फुट ऊँची है। यह भी एक खड़ी मूर्ति अभय मुद्रा लिये है। इस मूर्ति की गंभीरता और तुष्टि भी अनुपम है। धातु की मूर्ति में चेहरे पर अपूर्व शान्ति एवं दिव्यता का अनुपम प्रकाश निर्मित करना कला की एक अद्भुत कसौटी है जिसमें कलाकारों की भक्तिपूर्ण भावना पूर्णतया प्रदर्शित होती है। यह मूर्ति अपनी श्रेष्ठता के कारण आजकल इंगलैण्ड के बर्मिंघम संग्रहालय में विदेशियों को आश्चर्यचकित करने के लिए प्रस्थापित की गई है। उपर्युक्त तीनों बुद्ध मूर्तियां संसार की सबसे सुन्दर मूर्तियां मानी जाती हैं।

ब्राह्मण धर्म की मूर्तियां :

पूर्व चर्चा की जा चुकी है कि गुप्त नरेश भागवत धर्म को मानते थे तथा भगवान विष्णु के परम भक्त थे। उनके काल में विष्णु एवं शिव के अनेक दर्शनीय मन्दिर निर्मित हुए, परन्तु दुर्भाग्यवश उनमे से एक भी वास्तविक अवस्था में नही है। मन्दिरो के खण्डहरो से जो मूर्तियां प्राप्त हुई हैं, उन्हीं से ब्राह्मण धर्म के कला सौंदर्य का पता लग जाता है। गुप्त कालीन मन्दिरों में प्रथम शिखर की रचना नहीं होती थी, वह एक ऊँचे चौकोर चबूतरे पर बनाया जाता था। शिखर युक्त मन्दिरो का निर्माण इसके पश्चात् बनने प्रारम्भ हुए थे। गुप्तकालीन मन्दिरों के खण्डहरो मे जो प्राप्त हुए हैं, उनमे कई ऐसे हैं जिनकी कला अत्यन्त ही सुन्दर एवं आश्चर्यजनक है। प्राप्त मन्दिर के खण्डहरों में ऐसा एक प्रस्तर मन्दिर देवगढ़ में है जो जिला झांसी मे है। मन्दिर की कला उच्चकोटि की, स्वाभाविक, सजीव एवं मुरुचिपूर्ण है। मन्दिर के बाहर भित्तियों पर असामान्य सुन्दर देवताओं की मूरतें बनी हैं। मन्दिर के प्रस्तर स्तम्भ अत्यन्त सुन्दर रूप से अलकृत किये गये हैं। इसकी दक्षिण भित्त पर शेषशायी भगवान विष्णु की मूर्ति निर्मित है जिसे गुप्त कालीन कला का सर्वश्रेष्ठ नमूना कहा जा सकता है। विशाल लाल प्रस्तर पर बनी यह मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है। भगवान विष्णु शयन स्थिति मे है। पास ही लक्ष्मी जी विराजमान हैं, नाभि से कमल नाल प्रस्फुटित है जिस पर प्रजापति ब्रह्मा आसीन हैं—कई देवतागण अपने वाहनो पर आसीन हैं तथा नीचे पांचों पाण्डव एवं द्रोपदी है। कला की बारीकी अत्यन्त ही सुन्दर है। वस्त्रों की महीन झलक और मुख-मुद्रा की सौम्यता सभी कला की एक पराकाष्ठा है। वस्त्रो के अकन का शिल्प नैपुण्य चरम सीमा पर पहुँचा हुआ प्रतीत होता है। इस मूर्ति के अतिरिक्त राजेन्द्र मोक्ष, नर-नारायण आदि की मूर्तियाँ अद्भुत, सजीवता एवं सुन्दरता लिए हैं। गुप्त सम्राटों के समय मे बनी हुई ईसा की पांचवीं शताब्दी की 20 (बीस) गुफाएँ भिलसा के पास स्टेशन से 4–5 मील की दूरी पर स्थित हैं जो उदयगिरि गुफाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। सभी गुफाएँ ब्राह्मण धर्म की हैं। उदयगिरि पहाड़ी का पत्थर बलुआ है, इस कारण छोटी कोठरियो मे मूर्तियाँ खुदी हैं। यहां के तीन संस्कृत लेखों मे गुप्त नरेशों का उल्लेख है। 5 नम्बर की गुफा में भगवान वाराह की मूर्ति एक विशेष उभार से बनी है। शक्ति और पराक्रम से युक्त भगवान् ने अपनी दाढ़ पर पृथ्वी को सहज रूप में ही उठा लिया है। भगवान वाराह के अंग-अंग से वीर्य एवं तेज टपकता दिखाई देता है। काशी के पास टीले पर एक सुन्दर मूर्ति मिली है जो गोवर्धनधारी भगवान श्री कृष्ण की है। श्रीकृष्ण ने दृढ़तापूर्वक पहाड़ को धारण किया है। आजकल यह मूर्ति भारत कला भवन काशी मे रखी हुई है।

गुप्त कालीन प्रस्तर कला के ऐसे कई भव्य उदाहरण मिले हैं जिससे गुप्तों की कला-प्रियता आंकी जा सकती है। इस काल मे ब्राह्मण पौराणिक धर्म की

विशेष उन्नति हुई और आज का हिन्दू धर्म उसी काल का पावन रूप है। भगवान् शिव एवं विष्णु के अतिरिक्त लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, पार्वती, गंगा-यमुना, यम-कुबेर, गणेश, स्कन्द कार्तिकेय, सप्त-मातृकायें, ब्रह्मा आदि की अनगिनत गुप्त मूर्तियां उस युग की मूर्तिकला की प्रमुख निधियों के रूप में सुरक्षित हैं। कानपुर के पास एक गुप्त मन्दिर की ईंटें स्वयं प्रतिमाओं की तरह भांति-भांति से सजाई गई हैं। सांचे में ढली ये ईंटें रंग-बिरंगे फूलों और डिजाइनों से सजी हैं। इस प्रकार की ईंटें संसार में कहीं नहीं प्रयुक्त हुई। अजन्ता गुफाओं में उन्नीसवीं गुफा का निर्माण गुप्त काल में ही हुआ था। गुप्त काल अपनी सादगी सुरुचि और सुकुमार काया से सहज ही पहचानी जा सकती है। उभरा हुआ पूरा अंडाकार चेहरा, पतला शरीर मस्तक पर घुंघराले केश, सजीव मांस-पेशियों का आभास देने वाली बनावट से क्या पत्थर, क्या मिट्टी, क्या धातु, सभी गुप्त मूर्तियां औरों से काफी भिन्न हैं। गुप्त सम्राटों की यह परम्परा स्कन्दगुप्त के पश्चात् छठी सदी में समाप्त हो गई। गुप्त साम्राज्य को हूणों के आक्रमणों से काफी धक्का लगा। हूणों ने कलापूर्ण स्थानों को निर्दयतापूर्वक क्षतिग्रस्त किया। प्राचीन विशाल मूर्तियों पर अमानुषिक वज्र प्रहार किये। वे मूक खण्डित मूरतें भारत की कला आत्मा के रूप में आज भी सिसकती हुई श्वासों से अपना परिचय दे रही हैं। इसके पूर्व भी शक कुषाणों ने ब्राह्मण धर्म की अनेकों मूर्तियों का खण्डन किया था। ऐसी खंडित मूर्तियों का भारत के कई अजायबघरों में बाहुल्य है।

पूर्व मध्य काल

भारतीय मूर्तिकला का मध्य युग 600 से 1200 ईसवी के बीच माना जाता है। इस युग को कला की दृष्टि से दो कालों में विभक्त किया जा सकता है जिससे अध्ययन सरल हो जाता है। प्रथम काल पूर्व मध्यकाल और द्वितीय काल उत्तर मध्य काल से सम्बन्धित है।

पूर्व मध्यकाल की समय सीमा 600 ई. से 900 ई. तक मानी जाती है। इस काल की स्थापत्य कला बहुत अधिक विकसित हुई थी। कला की भव्यता एवं विशालता अद्वितीय और अनुपम रही। इस युग की प्रधान विशेषता यही है कि इसमें भवन मन्दिरों का निर्माण बहुत अधिक संख्या में हुआ, साथ ही मूर्तिकला ने भी यथेष्ट उन्नति की थी। पूर्व मध्य काल में देवी-देवताओं की मूरतों के साथ-साथ उनके अनेक गुण-उपगुण अपने वाहनों सहित तराशे गये हैं। साथ ही रुचिपूर्ण पौराणिक रामायण व महाभारत काल के दृश्यों का तक्षण भी हुआ था। इस काल में मन्दिरों का निर्माण अधिक था और देव मूर्तियां कम थीं। बौद्ध मूर्तियों का निर्माण भी जारी था। वज्रयान और शाक्त तांत्रिकों की पूजा का भी अधिक प्रचार बढ़ गया था। अतः मन्दिरों में शृंगारी एवं यौन दृश्यों की झांकियों का भी दिग्दर्शन इसी मध्य काल में प्रारम्भ हुआ था। मन्दिरों के निर्माण से तक्षण कला की दृष्टि से

यह काल मूर्तिकला का श्रेष्ठ युग माना जाता है। पूर्व मध्य काल की एक विशेषता यह भी कही जा सकती है कि इस युग में जैन, बौद्ध एवं ब्राह्मण तीनों धर्मों का सुन्दर समन्वय हुआ है। मूरतों की सुन्दर एवं भावपूर्ण मुद्राओं के अतिरिक्त उनमें अलंकरण की मात्रा अधिक व्यापक हो चली थी। इस काल की मूर्तिकला मुख्यतया तीन केन्द्रों में विकसित हुई: (1) एलोरा (2) एलिफैण्टा और (3) मामल्लपुरम्।

एलोरा

पश्चिम घाट की पहाड़ियों में मलयाद्रि और सह्याद्रि की पहाड़ियाँ प्रसिद्ध हैं। उत्तरी श्रेणी सह्याद्रि और दक्षिण श्रेणी मलयाद्रि हैं। अजन्ता की विश्व प्रसिद्ध गुफाएँ भी इसी दक्षिणी गिरी श्रृङ्खला सह्याद्रि में हैं और अजन्ता से कोई 75 मील की दूरी पर ये एलोरा की गुफाएँ स्थिति है। अजन्ता भगवान बुद्ध के भक्तों का चित्रलोक है तो एलोरा विष्णु एवं शिव भक्तों का भव्य देव ससार है। अन्तर इतना ही है कि अजन्ता मे चित्रों की प्रधानता है और एलोरा मे प्राणवान् मूर्तियो का बाहुल्य। पहले इन गुफाओं का नाम 'बेरूल' गुफायें था परन्तु आजकल इन्हें 'एलोरा' के नाम से पुकारा जाता है। एलोरा की गुफाएँ भी अजन्ता की तरह पर्वत को काट कर निर्मित की गई हैं। सीधी खड़ी चट्टानों को अनेक रूपो से काट कर लगभग उनचालीस गुफाओं का निर्माण किया है और उनमें मन्दिरों की रचना की गई है। इनमे जैन, बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्म सभी की गुफाएँ हैं जो एक धर्म निरपेक्ष भावना का ज्वलन्त उदाहरण कहा जा सकता है। इन मन्दिरों में कैलाश मन्दिर बहुत विशाल बना है जो अन्य सभी मन्दिरों से सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यह मन्दिर 143 फुट लम्बा, 61 फुट चौड़ा और 100 फुट ऊँचा है। इस मन्दिर में भगवान् शिव की प्रतिष्ठा है। कला की दृष्टि से कैलाश मन्दिर विश्व में एक आश्चर्य है। लगभग 30 लाख कुशल हाथों ने पहाड़ी का गर्भ काट कर विशाल प्रांगण का निर्माण किया जिसमें आगरे के ताज की सम्पूर्ण इमारत और सारा प्रांगण इसी कटी हुई भूमि मे रखा जा सकता है।

आठवी शताब्दी मे राष्ट्रकूट के प्रसिद्ध एव प्रतापी नरेश दंतिदुर्ग एवं कृष्ण द्वितीय की तीन पीढ़ियों द्वारा दिन-रात के लगातार प्रयत्न का फल यही कैलाश मन्दिर है। इतिहास मे ऐसा वर्णन भी आता है कि महाराजा हर्ष के समय में इस मन्दिर का कुछ भाग बनना प्रारम्भ हो गया था। इस मन्दिर के निचले भाग में विशालकाय हाथी की मूर्तियाँ काटी गई हैं। तत्पश्चात् ऊपर दो खण्ड खड़े किये गये हैं। हाथियो की प्रतिमाएँ अत्यन्त सुन्दर एवं सजीव हैं। बाहर आँगन में एक विशाल पौराणिक कथाओं से खुदा हुआ एक प्रस्तर स्तम्भ है। इस मन्दिर में उच्चतम शिल्प का उदाहरण 'रावण द्वारा कैलाश पर्वत को उठाने का दृश्य' है। भगवान् शिव गम्भीर मुद्रा मे विराजमान हैं, अपने चरणों में कैलाश को नीचे दबा रहे हैं, एक

हाथ में त्रिशूल तथा दूसरा हाथ पृथ्वी पर टिका है। पार्वती कैलाश पर्वत के उठने की प्रक्रिया से भयभीत सी लगती है। उनकी सखियों को भगदड़ की अवस्था में दिखाया गया है। रावण की आकृति से शक्ति झलकती है। सम्पूर्ण दृश्य पूर्णतया सजीव लगता है। दशावतार गुफा मन्दिर भी 700 ई का बना है। इसमें भगवान् के नृसिंहावतार का दृश्य भव्यता एव कला की दृष्टि से अद्वितीय है। अन्य मन्दिरों में भैरव, इन्द्र-इन्द्राणी की मूर्तियां भी दर्शनीय हैं। इसी मन्दिर में एक दृश्य 'शिव द्वारा अन्धक असुर वध' का है जिसमें भगवान शिव अत्यन्त क्रोधित मुद्रा में त्रिशूल लेकर राक्षस पर भीषण प्रहार करने के लिये झपटते दिखाये गये हैं। कहते हैं कि इतनी भीषण गति को दर्शाने वाला इस मूर्ति शिल्प का अन्य उदाहरण संसार में दुर्लभ है।

एलोरा के शिल्प विशाल पट्ट पर विशाल आकृतियों से निर्मित है किन्तु इस भीड़ भरे संयोजन में दिक् (स्पेस) का अभाव खटकता है। शिल्प विभिन्न गुफा मन्दिरों के अंग हैं अतः यहाँ जिस धर्म से सम्बन्धित शिल्प है इसकी प्रमुखता व अन्य धर्मों के देवी देवता को सहचर के रूप में बनाया है। कैलाश मन्दिर के अतिरिक्त बौद्ध गुफा (गुफा नं 5) में बुद्ध का उपदेश देते हुए गुफा 2 के बोधिसत्व, जैन तीर्थंकरों आदि अनेक शिल्पों के साथ-साथ यक्ष-यक्षणियों, गज-पंक्ति, मृग एवं आलेखन बने हुए हैं। आकृतियाँ पारदर्शीय वस्त्र में आभूषण धारण किये अध खुली भावात्मक मुद्रा में निर्मित हैं जिनकी हस्त व पद मुद्राएँ अजन्ता की सी हैं।

एलिफेंण्टा

पूर्व मध्यकाल की मूर्तिकला का दूसरा प्रमुख और प्रसिद्ध केन्द्र एलिफेंण्टा के गुफा मन्दिर हैं। यह स्थान बम्बई के 6 मील की दूरी पर एक टापू पर स्थित है। इस टापू को कभी धारापुरी भी कहा जाता था। कहते हैं कि जब 15वीं शताब्दी में पुर्तगाली लोग आये तो यहाँ एक विशाल प्रस्तर हाथी को देख कर इसका नाम 'एलिफेंण्टा' रख दिया। उल्लेखनीय बात यह है कि टापू द्वीप में दो पर्वतों को काट कर यह मन्दिर आठवीं सदी में ही निर्मित हुआ है। इसका निर्माण भी वर्द्धन राज्य में प्रारम्भ हो गया था। एलिफेंण्टा की अनेक कलापूर्ण मूर्तियों में भगवान् शिव की निर्माता बालक व संहार के रूपों के अतिरिक्त प्रकाण्ड 'त्रिमूर्ति' तथा 'ताण्डव नृत्य' आदि की प्रतिमाएँ सर्वश्रेष्ठ एव उल्लेखनीय हैं। त्रिमूर्ति में ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश सम्मिलित हैं। यह एक विशाल एवं गम्भीर आकृति की प्रतिमा है। शीश पर जटाएँ एवं मुकुट की रचना अत्यन्त सुन्दर है। होठों की बनावट विशेष प्रकार की है, उनमें कुछ मोटाई दिखाई गई है तथा निचला होठ नीचा लटकता दिखाया गया है। पुर्तगालियों द्वारा यद्यपि इन मूर्तियों को खण्डित किया गया था, फिर भी आज वे खण्डित मूर्तियाँ तत्कालीन कला की याद दिलाती हैं। खण्डित मूर्ति में एक

'शिव ताण्डव' मूर्ति भी है जो भावो और सजीव मुद्राओ से ओतप्रोत है। प्रो हैवेल महोदय ने अपने एक ग्रंथ 'भारतीय कला के आदर्श' में लिखा है कि नृत्य की लयमय गति से गुफा की चट्टानें प्रतिध्वनित होती जान पड़ती हैं, परन्तु शिव के मुख पर असीम शांति एवं निर्विकारिता के भाव प्रदर्शित होते हैं। एलिफैण्टा की मूर्तिकला को उपनिषदों के बुद्धिवाद एव उच्चादर्श का एक सजीव प्रतिबिम्ब कहना ही उपयुक्त होगा। इस गुफा मे शिव-पार्वती की अनेक सुन्दर मूर्तियां है। एक मूर्ति शिव-पार्वती विवाह का है जिसमे पार्वती के आत्मसमर्पण की भावना एवं शिवजी के सप्रेम स्वीकार करने की मुद्रा अत्यन्त सुन्दर एवं उल्लेखनीय है। शिव द्वारा असुरों का संहार शिव गगाधारी, महेश मूर्ति, रावण की क्षमा याचना आदि शिल्प एलफैण्टा की प्रस्तर आकृतियों के सुन्दर उदाहरण हैं।

मामल्लपुरम्

इस युग की मूर्तिकला का तीसरा उल्लेखनीय उदाहरण मामल्लपुरम् के विशाल मन्दिर है। इसमे पांच मन्दिर है जिन्हे 'रथ' कहते हैं। इन पांच मन्दिरों के समूह को 'पचरथ' कहते है। वे विशाल मन्दिर समुद्र के किनारे कांची (कांजीवरम्) के पास ही चट्टानो को काट कर बनाये गये हैं। इनका निर्माण काल सातवी सदी के आसपास है। इन मन्दिरो मे त्रिमूर्ति, वाराह, दुर्गा, महिषासुर, शेषशाय विष्णु, मधुकैटभ आदि की अद्वितीय मूर्तियां सुन्दर अवस्था मे देखने को मिलती हैं। मतानुमार यहां गंगावतरण का दृश्य एक ही शिला-खण्ड पर जो अट्ठानवें फुट लम्बा और सैतालीस फुट चौड़ा है, बना हुआ है। यह भगीरथ का विशाल दृश्य राजा भागीरथ की तपस्या का है। इसमें रचित पशु-पक्षी आदि भी तपस्या में सहयोग देते हुए दिखाये गये हैं। दृश्य का भाव यह बहुत ही मनोहर है और सफलतापूर्वक दर्शाया गया है।

इन तीनो मुख्य केन्द्रो के अतिरिक्त पूर्व मध्यकालीन कला के कुछ नमूने और भी पाये गये हैं। इन्दौर (मध्य प्रदेश) के रामपुरा–मानपुरा जिले मे 'धमणार' ग्राम है। इस ग्राम के समीप पहाड़ी पर कुछ गुफाए तथा मन्दिर हैं जिनका समय भी आठवी शताब्दी माना गया है। गुफाओ मे बौद्ध मूर्तियां हैं। गुफाओं के समीप एक स्तूप और एक चित्ताकर्षक दर्शनीय स्थान भी है। इसे 'धर्मनाथ' महादेव का मन्दिर कहते हैं। यह मन्दिर गुफाओ के उत्तरी-भाग की ओर है। मन्दिर का पत्थर कड़ा और खुरदरा है। इसी से इसकी खुदाई विशेष रूप से न हो सकी है परन्तु ऊपर पलस्तर लगा कर चिकनाहट लाई गई है। मन्दिर की निर्माण शैली एलोरा के समान ही है। मन्दिर मे कई सुन्दर मूर्तिया बनी हैं जिनमे मकरवाहिनी गंगा, कूर्म-वाहिनी यमुना 'विष्णु, इन्द्राणी, ब्रह्माणी, पार्वती, वैष्णवी, शिव-ताण्डव आदि प्रमुख हैं। विद्वानो के अनुमान से यह शिव मन्दिर न होकर विष्णु मन्दिर है। यह

निश्चित ही है कि जैसी सुन्दर मूर्तियां इस मन्दिर में हैं वैसी पूर्व मध्यकाल में अन्यत्र नहीं मिलती।

उत्तर मध्यकाल

उत्तर मध्यकाल 900 ई. से 1200 ई. के मध्य माना जाता है। शिल्प एवं स्थापत्य की दृष्टि से उत्तर मध्यकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिल्प कला का जितना विकास इस युग में हुआ, शायद ही किसी अन्य में हुआ हो। अतः इस कला को शिल्पियों का युग कहा जाना चाहिए। सजावट, तड़क-भड़क, बनावट सिंगार आदि का जितना प्रचार इस युग की मूर्तियों में हुआ, शायद ही किसी अन्य मन्दिरों एवं काल में हुआ हो। अध्ययन की दृष्टि से इस काल को छः शिल्प मण्डलों में विभाजित किया जा रहा है ताकि अध्ययन में सुगमता रहे।

(1) उड़ीसा शिल्प मण्डल।

(2) बंगाल-बिहार शिल्प मण्डल।

(3) बुन्देलखण्ड शिल्प मण्डल।

(4) मध्यभारत शिल्प मण्डल।

(5) गुजरात—राजस्थान शिल्प मण्डल।

(6) तामिल (दक्खिन) शिल्प मण्डल।

(1) उड़ीसा शिल्प मण्डल :

जो शैली पूर्व मध्यकाल में प्रचलित थी, उसी का विकसित रूप उत्तर मध्यकाल में मिलता है, परन्तु वह थोड़ा परिष्कृत एवं अधिक अलंकरण के साथ। इस काल में उत्तरी भारत में मन्दिर निर्माण की एक और ही विशेष अलंकृत शृङ्गार प्रधान शैली प्रचलित थी। उड़ीसा प्रान्त के पुरी, भुवनेश्वर तथा कोणार्क का विख्यात सूर्य मन्दिर इसी शैली के उदाहरण हैं। मन्दिर लम्बे-चौड़े आकार के एवं ऊंचे शिखर वाले होने लगे। इन मन्दिरों में असंख्य मूर्तियां हैं जिनकी विशालता, सजीवता एवं उत्कृष्टता देखकर कलाकारों की प्रशंसा करनी ही पड़ती है। उड़ीसा के पुरी नामक स्थान पर श्री जगन्नाथ का मन्दिर है जो भगवान विष्णु का है। यह मन्दिर अत्यन्त विशाल है जिसकी दीवारों, स्तम्भों एवं शिखरों पर अनेकों यौन-दृश्य खुदे हुए हैं। जो तत्कालीन धार्मिक मान्यताओं को उजागर करती हैं।

(I) भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर :

भुवनेश्वर का लिंगराज का मन्दिर उड़ीसा में ही है जो अत्यन्त विशाल है। इसका निर्माण काल 1100 ई. बताते हैं। कई विद्वान इसका निर्माणकाल 9वीं से 10वीं शताब्दी बताते हैं। इस मन्दिर के स्थान का परिमाण 720 × 465 वर्ग

फीट है और साढ़े सात फीट मोटी दीवार से घिरा है। दीवार मे तीन तोरण द्वार हैं जिनमे सिंहद्वार काफी आकर्षक है। इस मन्दिर के प्रमुख चार भाग हैं—विमान, जगमोहन, नट-मन्दिर और भोग मण्डप। विमान भाग मे कई दिक्पालो, देवताओं एवं लक्ष्मी की मूर्तियां हैं। रामायण और महाभारत के दृश्य प्रदर्शित है जिनमे पांडवो का स्वर्गारोहण अत्यन्त भव्य बना है। मन्दिर का कलश बहुत ऊंचा है और कलश तक मन्दिर की ऊंचाई करीब 144 फीट है तथा जगमोहन तक इसकी ऊंचाई लगभग 90 फीट है इसमे कला की अमूल्य निधियां भरी पड़ी हैं। वैसे तो इसमे असंख्य मूर्तियां हैं परन्तु कुछ मूर्तियां ऐसी हैं जो विश्व प्रसिद्ध कही जा सकती हैं। इन मूर्तियों मे प्रेम-पत्र लिखती एक नारी प्रतिमा है जिसकी अंग-शोभा, भाव प्रदर्शन, अलंकारों की छटा, केश-विन्यास और शारीरिक पुष्टता आदि अत्यन्त आकर्षक है। दूसरी मूर्ति 'माता और शिशु' की है। शिशु प्रफुल्लित अवस्था में गोद मे किलक रहा है। नारी का शारीरिक गठन, आभूषणो एवं वस्त्रों की शोभा सभी कला की एक उच्च कसौटी है। नारी के सिर पर कमल पत्र को लटका कर छत्र की छटा दिखाई है। माता का वात्सल्य-प्रेम तथा शिशु की मुस्कराहट शिल्प-कौशल का एक अद्वितीय नमूना है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भुवनेश्वर के मन्दिरों की अनेक नारी मूर्तियां विशेषकर उनका केश-शृंगार अत्यन्त सुन्दर एवं प्रशंसनीय है। उड़ीसा के मन्दिरो की मूर्तियां वाममार्ग प्रचार से तथा अन्य कारणो से अश्लील रूप मे बनी है। यहां मिथुन को मैथुन से समझा लिया गया है।

(ii) कोणार्क का सूर्य मन्दिर :

यह मन्दिर जगन्नाथपुरी के मन्दिर से 21 मील उत्तर-पूर्व मे समुद्र तट पर बना है। इस मन्दिर की मूर्तियो की कला इतनी सुन्दर है जो एशिया के किसी भी मन्दिर में दिखाई नहीं देती। इस मन्दिर का निर्माण भी 12वी शताब्दी का माना जाता है। इसकी शैली उत्कल की तक्षण कला का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। यह मन्दिर रथ के आकार पर निर्मित है। कई हजार मन के एक ही शिलाखण्ड द्वारा इसकी रचना की गई है। उत्तर और दक्षिण की ओर 14 फीट व्यास के दो चक्र पहिये के आकार में बने हैं जिस पर रथ का भाग अवस्थित है। कोणार्क के सूर्य के घोड़े रथ के पहिये और ग्रहों की गति और सजीवता अद्वितीय है। मन्दिर के तीन भाग हैं—1. विमान, 2. जगमोहन, 3. भोग मण्डप। जगमोहन और विमान भाग मिलाकर एक विशाल रथ की योजना की गई है जिसके पहिये अब तक विद्यमान है। भोग मण्डप इन दोनो से अलग है। जगमोहन के ऊपरी भाग पर जो मूर्तियां बनी हैं, वे पुरुषाकार हैं। जगमोहन का शिखर लगभग 200 फीट ऊँचा है। जगमोहन के चौखट व द्वार क्लोराइट नामक नीले पत्थर (मुंगनी) का बना है। उस पर सुन्दर बेल-बूटे बने हैं।

मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। भारतीय मूर्तिकला ने खजुराहो मन्दिरों के निर्माण द्वारा कला-कोष को अमूल्य निधियों से भर दिया। उत्तर भारत से मिले हुए विन्ध्य प्रदेश के छतरपुर जिले मे खजुराहो इस कला की मूर्तिकला का महान् केन्द्र है। यहां के कलापूर्ण मन्दिरों का समूह तत्कालीन चन्देलवंशी नरेशों की उज्ज्वल कीर्ति है। खजुराहो के कलात्मक कौतूहल को विश्व के सम्मुख रखने वाले चन्देलवंशी राजा हर्षदेव, यशोवर्मन और धंग आदि थे। इन 22-23 मन्दिरो के तीन समूह हैं—पश्चिम, पूर्वी और दक्षिणी। इन मन्दिरों में हिन्दू और कुछ जैन मन्दिर है। घन्टाई नामक मन्दिर बौद्ध मन्दिर है, परन्तु इसके निश्चित प्रमाण नही मिलते।

खजुराहो के मन्दिरों मे समस्त देवी-देवताओं की मूर्तिया शास्त्रोक्त है। इनके अतिरिक्त दिक्पाल, गंधर्व, अप्सराए यक्ष-किन्नर आदि बने हैं। कामसूत्र सम्बधी 'मूर्तियां भी यहा इस काल मे कई मन्दिरों की तरह बहुतायत से बनी हैं। प्रसिद्ध मूर्तियो में देवी जगदम्बा की अष्टभुजा और तीन मुख वाली मूर्ति यम की भावपूर्ण मूर्ति ग्यारह मुख वाली विष्णु की मूर्ति, वाराह का शिकार करते सूर्य पुत्र रेवन्त की मूर्ति, सिंह मुख वाली स्त्री की प्रतिमा तथा अर्द्ध नारीश्वर की प्रतिमा आदि है। इस मन्दिर समूह मे असंख्य मूर्तिया बनी हैं जितनी किसी भी प्रान्त के मान्दर में इतनी बड़ी संख्या मे मिलना असम्भव है। यहा कन्दरियानाथ महादेव का मन्दिर है जिसका निर्माण 10वी शताब्दी मे राजा धंगदेव द्वारा हुआ था यह मन्दिर 109 फीट लम्बा, 60 फीट चौडा और 116 फीट ऊचा है। इस मन्दिर मे कनिंघम ने 872 मूर्तियां गिनी, जो तीन फीट के आकार की हैं। अनुमान लगाया जाता है कि अपूर्व कौशल के साथ उस समय इनके निर्माण में 20 से 25 लाख रुपये लगे होंगे। लोक कला एवं व्यावहारिक कला का इनमे पूर्णतया समावेश मिलता है। नृत्य व संगीत के दृश्य, श्रम-साधनारत नर-नारी, पशु-पक्षियो के विभिन्न कार्य एव लता-पुष्पों का सौन्दर्य, सभी चतुराई और बारीकी पूर्वक तराशे गये हैं। नायिकाओं की विभिन्न मुद्राओ, नारियों की भाव-भंगिमाओं एव प्रेमी-प्रेमिकाओ की कामपूर्ण क्रियाओं का बड़ा ही सुन्दर निर्माण हुआ है। चौसठ योगिनियों और देवी दुर्गा की उत्कृष्ट प्रतिमाएं हैं। इस तरह खजुराहो मे असंख्य एव अलौकिक मूर्तियों का आश्चर्यमय संसार है।

(4) मध्य भारत शिल्प मण्डल :

मध्य भारत शिल्प मण्डल मे मालवा का स्थान प्रसिद्ध है। परमार वंश के राजाओं का आधिपत्य था। परमार वंश के प्रथम राजा मुंज नरेश हुए, जिसकी राजधानी धारा नगरी थी। इमी वंश मे राजा भोज भी बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। बौद्ध धर्म का इस समय तक काफी लोप हो गया था। रीवा के आसपास कई स्थानों पर किलो और मन्दिर में अनेक मूर्तियों का निर्माण हुआ था। रीवां से पूर्व की ओर नौ मील की दूरी पर गुर्गी नामक स्थान भी 11वी शताब्दी की मूर्तिकला का भंडार

है। इस स्थान में महाराज कर्णदेव (1040–1070 ई.) द्वारा बनवाया हुआ 'सिहुँदा' नामक दुर्ग प्रसिद्ध है। इसका प्रवेश द्वार कलापूर्ण है जिस पर खजुराहो एवं भुवनेश्वर की तरह सैकड़ो मूर्तियां बनी है। किले में एक विशाल गणेश प्रतिमा भी प्रतिष्ठित है। शिव-पार्वती की संयुक्त खड़ी प्रतिमा जो करीब 13 फीट ऊँची व 6 फीट चौड़ी है, एक ही शिलाखण्ड को काट कर रची गई है। यह मूर्ति आजकल वेंकटसदन संग्रहालय में सुरक्षित है। ग्वालियर (मालवा) में प्रसिद्ध सास-बहू का एक मन्दिर है। एक मन्दिर उदयपुर, भिलासा के पास स्थित उदयेश्वर महादेव का है जो लाल पत्थर का है और मालवा प्रदेश के मन्दिरों में सबसे सुन्दर है।

(5) राजस्थान गुजरात शिल्प मण्डल

गुजरात से सोलंकी वंश के राजा राज्य करते थे जिनमे भीमदेव, जयसिंह सिद्धराज, कुमारपाल मूलराज द्वितीय आदि प्रसिद्ध राजा हुए हैं, उसी प्रकार 11वीं शताब्दी के अन्त में शाकम्भरी के प्रसिद्ध चौहान राजा अजयदेव ने अजयमरु नगर को बसा कर अपनी राजधानी बनाया जो अब अजमेर के नाम से प्रसिद्ध है। विग्रहराज इस वंश का प्रतापी राजा था जिसका भतीजा पृथ्वीराज चौहान था जिसने मुहम्मद गोरी को अठारह बार हराया परन्तु अन्त में गोरी को मार कर स्वयं भी मर गया। इस काल में भी वस्तु कला की बहुत उन्नति हुई और अतुल धनराशि खर्च करके अनेक मन्दिर बनवाये। यही कारण है कि देश भर में इस समय के बने हुए बहुत से मन्दिर आज भी देखने को मिलते हैं। राजपूतों के समय में हिन्दू धर्म में आडम्बर अधिक हो चला था। सुन्दर-सुन्दर मन्दिर बने अवश्य थे परन्तु साज शृङ्गार एवं देवताओं को हर प्रकार से प्रसन्न रखने का प्रयत्न करना उनका मुख्य धर्म रह गया था। सोमनाथ का मन्दिर इतिहास में प्रसिद्ध है। इस मन्दिर में 1000 ब्राह्मण पूजा करते थे और 500 नर्तकियों और 200 गायक नाचा व गाया करते थे, मंदिर में सैकड़ों मन सोना था। महमूद गजनवी ने मन्दिर पर हमला करके मन्दिर को तोड़-फोड़ डाला और ऊँटो पर अरबों रुपयों की सम्पत्ति लाद कर अपनी राजधानी ले गया। गुजरात के मन्दिरों में सिद्धपुर पाटन और गिरनार के मन्दिर भी बहुत प्रसिद्ध है। आबू पर्वत पर देलवाड़ा का प्रसिद्ध संगमरमर का मन्दिर है जिसका निर्माण 11वीं-12वीं शताब्दी में विमलशाह एवं तेजपाल द्वारा हुआ था। संगमरमर की सुन्दर कला में छत, तोरण द्वार, स्तम्भ, फलक एवं मूर्तियाँ बनी हैं जो अपूर्व एवं आश्चर्यजनक है। छतों एवं तोरणों का बारीक काम देखते ही बनता है। मन्दिर जैन धर्म से सम्बन्धित है। इस मन्दिर में हजारों डिजाइनें बनी है जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं परन्तु इनका अलंकरण ही इनकी कला की हेयता का कारण बन गया है। कहते हैं, मुसलमान बादशाहों ने यहाँ की कई विशाल मूर्तियों को खंडित किया है।

(6) तमिल (दक्खिन) शिल्प मण्डल :

इस काल की मूर्तिकला एवं मन्दिर कला अत्यन्त ही सुन्दर ढंग की है। भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में यह मण्डल बहुत विख्यात है। दक्षिण के मन्दिरों की कला द्राविड़ शैली की है। उस समय उत्तर भारत में प्रथम हूणों तथा बाद में मुसलमानों ने कला का विनाश किया अतः उत्तर में मूर्तियों का बनना कम अवश्य हो गया था परन्तु दक्षिण भारत स्फूर्तिवान, सजग एवं उन्नत था। अतः मूर्तिकला एवं मन्दिर कला का केन्द्र अब दक्खिन बन गया था। गगनचुम्बी एवं विशाल मन्दिर आज भी उनके ज्वलन्त प्रमाण हैं। चोल नरेशों का मदुरा मन्दिर, पाण्ड्यों का तंजोर मन्दिर तथा होयसेल नरेशों का मैसूर मन्दिर उस काल की मूर्ति सम्पदा से भरे पड़े हैं। इनमें शिल्प दृश्यों की भरमार है तथा मूर्तियों में शक्ति एवं स्फूर्ति की एक अपूर्व विशेषता है।

चोल नरेशों द्वारा 13वीं शताब्दी में तंजोर का 'बृहदेश्वर' मन्दिर बनवाया गया था। यह मन्दिर गया के बौद्ध मन्दिरों के समान ही है। शिखर काफी ऊँचा है, नीचे में चौकोर है और ऊपर संकरा होता गया है। शिखर के चारों कोणों पर नन्दी की मूर्तियां हैं। इन्हीं मूर्तियों के मध्य में एक गुम्बजाकार कलश है जिस पर त्रिशूल स्थित है। मन्दिर के अलंकरण की दूसरी विशेषता है—विष्णु सम्प्रदाय की मूर्तियों का गोपुर में प्रयोग। वैष्णव और शैव सम्प्रदाय का यह समन्वय अन्यत्र नहीं मिलता। बृहदेश्वर के मन्दिर में 16 फीट लम्बी, 12 फीट ऊंची तथा 7 फीट मोटी एक नन्दी (महादेव का वाहन) की प्रतिमा है जो एक ही विशाल प्रस्तर भाग की है। कहा जाता है कि इस प्रकार पत्थर को 400 मील दूरी से मंगवाया गया था। इन मूर्तियों के साथ उस काल के मूर्ति जगत और कला क्षेत्र की सबसे सजीव कल्पना नटराज की है। बृहदेश्वर मन्दिर में यह एक प्रस्तर प्रतिमा है। शिव का काल पुरुष पर खड़े होकर 'सृष्टि और प्रलय का ताण्डव' संसार के कला क्षेत्र में अद्वितीय है। चतुर्भुज शिव एक हाथ में डमरू, दूसरे में अन्धकार दूर करने वाली तथा अशिवदाहक अग्नि की लपटें, बाकी दोनों हाथों का अभय और वरदान मुद्रा में धारण किये प्रबल वेग में काल-पुरुष पर नृत्य कर रहे हैं। नटराज शिव की यह मूर्ति निश्चय ही कला एवं कल्पना की एक पराकाष्ठा है। धातु एवं प्रस्तर की अनेक मूर्तियां आज दक्खिन में गई हैं। इनका अत्यन्त सुन्दर संग्रह अमेरिका के बोस्टन संग्रहालय में है।

मधुरा में मीनाक्षी का विशाल शिव मन्दिर है जो अपनी निर्माण कला की दृष्टि से विश्व विख्यात है। यह मानव जाति के अटूट धैर्य, अथक परिश्रम तथा अपूर्व शिल्प दक्षता का ज्वलन्त प्रमाण है। मन्दिरों के दो भागों में शिव एवं पार्वती की भव्य प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं। मन्दिर में चारों ओर गोपुरम् हैं जिनकी संख्या नौ है। इन गोपुरों की अधिकतम ऊंचाई 150 फीट है। मन्दिर के सहस्र खम्भों का एक मण्डप है तथा बरामदे में भी कई सुन्दर मूर्तियां बनी हुई हैं। इसके अति-

रिक्त दक्षिण में सोमनाथपुरम् तथा त्रिचिन्द्रम् में अपूर्व कलाकृतियों के मन्दिर हैं। दक्षिण में प्रस्तर प्रतिमाओं को छोड़कर कांसे की भी अनेक मूर्तियां बनी हैं जिनकी समानता विश्व में कहीं भी नहीं की जा सकती। कांसे की मूर्तियों का निर्माण एक विशेष प्रकार से होता है। अष्ट धातु मिश्रित मूर्तियां भी दक्षिण में बहुतायत में बनी हैं। अष्ट धातु के मिश्रण एवं मूर्ति निर्माण के सम्बन्ध में थोड़ा वर्णन अगले अध्याय में दिया जावेगा।

अर्वाचीन एवं वर्तमानकाल

13वीं शताब्दी के पश्चात् मूर्तिकला में पहले जैसी सजीवता नहीं रही। मुसलमानों के आक्रमणों ने भारतीय शिल्पकला को नष्ट भ्रष्ट कर दिया, क्योंकि वे मूर्ति पूजा के विरोधी थे। अतः कला की मौलिकता का अभाव हो गया। 1206 से 1526 ई तक दिल्ली (उत्तर भारत) में सुल्तान युग चला। जिसमें गुलाम वंश, तुगलक वंश, सैयद वंश एवं लोदी वंश थे। दक्षिण में उस काल तक बहमनी एवं विजय नगर के राज्य थे। इन बड़े राज्यों के अतिरिक्त जहां छोटी-छोटी रियासतें थी वहां के शासक कई छुट-पुट मन्दिर, किले एवं भवन आदि बनवाते थे, जिनका थोड़ा हाल अवश्य मिलता है। महाराणा कुम्भा ने इसी समय अपनी गुजरात विजय की स्मृति में बहुत बड़ा कीर्ति स्तम्भ बनवाया था। इसे अलकृत भी किया गया परन्तु मूर्तियों में सजीवता का अभाव ही रहा। स्तम्भ में अनेक देवी देवता, नक्षत्र, ऋतुएँ आदि की आकृतियां बनाई गई हैं। चित्तौड़ का गढ़ कला की दृष्टि से अद्वितीय है। उसमें कई सुन्दर भवन एवं द्वार बने हैं। चित्तौड़ के कीर्ति स्तम्भ के अतिरिक्त 'विजय-स्तम्भ', जैन मन्दिर तथा मीरा मन्दिर प्रसिद्ध हैं। इन मन्दिरों में कई भव्य मूर्तियां हैं। 15वीं शताब्दी में महाराणा कुम्भा को महान् वास्तु निर्माता कहा जाता है 15वीं शताब्दी की कुछ जैन मूर्तियां ग्वालियर के किले में हैं जिनकी संख्या 24 बताई जाती है। ये सभी मूर्तियां आदिनाथ एवं भगवान महावीर की हैं परन्तु दुर्भाग्यवश वे भी वास्तविक दशा में नहीं हैं। मुसलमानों ने इन्हें भी काफी क्षतिग्रस्त किया है। इन मूर्तियों में एक मूर्ति करीब सत्तावन फीट ऊँची है जिसे देखकर आश्चर्य होता है। इतनी बड़ी प्रतिमा भारत में एक दो को छोड़कर शायद ही अन्यत्र मिलेगी। 16वीं शताब्दी में जयपुर के राजा मानसिंह ने वृन्दावन में गोविन्ददेवजी के मन्दिर का निर्माण करवाया जिसमें केवल ज्यामितिक आकारों का ही प्रयोग है। आजकल यह मन्दिर खराब दशा में है।

विजयनगर राजधानी के स्थानीय देवता विठोबा का एक भव्य मन्दिर है जिसका निर्माण 'अच्युत रावल' ने (1519–1542) में करवाया था। विठोबा भगवान विष्णु के अवतार माने जाते हैं। ग्रेनाइट पत्थर इस मन्दिर भवन में प्रयुक्त हुआ है। यह मन्दिर पूरा नहीं बनाया जा सका था। इस मन्दिर के मण्डपों की कला सुन्दर है, प्रवेश द्वारों पर व्याल, शार्दूल आदि बने हैं जिन पर नर मूर्तियां

बैठाई गई है। 16वीं शताब्दी में ही विजयनगर से 100 मील उत्तर-पूर्व में 'तारपुत्री' नामक स्थान (जिला अानन्दपुर) पर एक अनुपम एवं कलापूर्ण मन्दिर है। इसकी शैली विजयनगर की अलंकृत शैली के अनुरूप ही है। यह मन्दिर भी हरे रंग के पत्थर से बनाया गया है। यहां गोपुरों के प्रवेश द्वार और कोण अलंकरण अत्यन्त सौंदर्यपूर्ण हैं। मुगल सम्राटों मे कई सम्राट हुए परन्तु उनमे अकबर सबसे महान् माना जाता है। उसके शासनकाल में कला, संगीत, वास्तु आदि की खूब उन्नति हुई। अकबर के समय फतेहपुर सीकरी बीरबल का महल, बडी मस्जिद तथा पंच महल आदि निर्मित हुए। जहांगीर ने आगरे का महल' सिकन्दरे मे अकबर का मकबरा और एतमादुद्दौला का मकबरा आदि प्रसिद्ध इमारतों का निर्माण करवाया था। अकबर का पौत्र शाहजहां शानशौकत का सम्राट था। उसे इमारतें बनवाने का बहुत शौक था। गद्दी पर बैठते ही उसने 'तख्ते ताऊस' बनवाया, जो साढ़े तीन फीट लम्बा, ढाई फीट चौड़ा तथा पाच गज ऊंचा था। वह हीरे, जवाहरातो से जडा था। विश्व विख्यात 'ताजमहल' जो संगमरमर का है, उसी ने अपनी बेगम मुमताज महल की याद में बनवाया था। इसके अतिरिक्त मोती मस्जिद, दिल्ली का दीवाने-आम, दीवाने-खास और जामा मस्जिद भी उसी ने बनवाई थी।

हिन्दुओं की बनवाई हुई इमारतो मे वृन्दावन के मन्दिर, बुन्देलखण्ड में सोनागढ तथा गाविलगढ के निकट मुक्तिगिरी के जैन मन्दिर, एलोरा का अहिल्याबाई का मन्दिर, बंगाल में 'काम्ता नगर का मन्दिर' बनारस का विश्वेश्वर जी का मन्दिर आदि इसी समय की कलाकृतियां हैं। इन वर्णनों के साथ यह भी बता देना आवश्यक सा है कि मूर्तिकला पर प्रकाश डालने के लिये मन्दिरो का वर्णन इसलिये किया गया है कि हिन्दू मूर्तियो की प्राण-प्रतिष्ठा होती है। बिना प्राण-प्रतिष्ठा किए मूर्ति पूजने योग्य नहीं होती और वह मूर्ति मन्दिरों में ही प्रतिष्ठित की जाती है। अतः मूर्तियो के वर्णन के साथ मन्दिरो के वर्णन की अत्यन्त आवश्यकता समझी गई।

ब्रिटिश काल की मूर्तिकला का विशेष प्रचार नहीं था। कुछ कलाकार नदियों के किनारे के नगरो मे रहकर मन्दिरों मे मूर्तियां बनाते रहे। दक्खिन में हाथी दांत की मूर्तियां बनने लगी। लदन की महारानी विक्टोरिया और एडवर्ड सप्तम की मूर्तियां विशाल कद की भारत के कई नगरों में स्थापित की गईं। ग्वालियर के केमर बाग में भी कई मूर्तियां बनी हुई हैं। इस तरह छुट-पुट मूर्तिया बनने का क्रम चलता रहा। ब्रिटिश शासन के समय ही भारतीय स्वतन्त्रता [illegible] भारतीय नर-नारियों में प्रस्फुटित होने लगी और उस समय महान नेता तिलक एवं गोखले की कई मूर्तियां संगमरमर की बनीं और बड़े-बड़े नगरों में स्थापित की गईं।

आधुनिक युग का प्रारम्भ 1900 ई. के पश्चात् से मानते हैं। [illegible] नव-जागरण के अंकुर प्रस्फुटित होने लग गये थे। कला, साहित्य, [illegible]

क्रान्ति का सोपान प्रारम्भ होने लगा था। कला के क्षेत्र में आधुनिक युग की मूर्तिकला का अपना एक विशेष स्थान है। पाश्चात्य सभ्यता के आगमन के पश्चात् देश में मूर्तिकला की ओर न तो ध्यान दिया गया और न वैसा तक्षण एवं शिल्प कार्य ही हो सका। मन्दिरों का निर्माण आधुनिक युग में कम भी हो गया तथा फिर उनकी साज-सज्जा, बाग-बगीचों से अधिक होने लगी। यह तो निश्चित ही है कि पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव देश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों पर पूर्ण रूप से पड़ा जिससे देश का साहित्य, संगीत, चित्रकला, वास्तुकला एवं मूर्तिकला का क्षेत्र प्रभावित हुए बिना न रह सके। इन पर पाश्चात्य की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। देश में आज भी सैकड़ों मूर्तियों का निर्माण होता है, क्योंकि देश में अनेकों मूर्ति प्राण उपासक हैं, अनेकों मन्दिर हैं,, परन्तु कला एव कलाकारों की कमी है। मूर्तियां रूढ़िवादी ढंग से नकलों के रूप में निर्मित होती हैं। परन्तु उनमें कलात्मक रूप, सजीवता एवं सौंदर्य की बहुत कमी है। आज भी मन्दिर बनते हैं, उनमें आकृतियां होती हैं, परन्तु वे भावहीन एवं निष्प्राण प्रतीत होती हैं। विदेशी सभ्यता के प्रभाव से जितनी प्रगति चित्रकला ने की वैसी मूर्तिकला के क्षेत्र में नहीं हुई। आधुनिक काल में संगमरमर, 'टैरा-कोटा' प्लास्टर अष्ट-धातु, पत्थर, काष्ट तथा मोम आदि से मूर्तियो का निर्माण होता है; संगमरमर की कई मूर्तियां आज भी मन्दिरो मे प्रतिष्ठित करने के लिये जयपुर में बनती हैं, परन्तु ये कला का उपहास मात्र ही होती हैं। वे न तो पुरानी परम्परा की हैं और न नवीन धारा की। कलकत्ता और बम्बई में भी आजकल अनेक मूर्तियो का निर्माण होता है। बम्बई तो आजकल आधुनिक मूर्तिकला का केन्द्र है। जो थोडी बहुत नवीन मूर्तिधारा देश में प्रवाहित हुई है, उसमें बम्बई का बहुत बडा योगदान है।

भारत में डेढ सौ वर्षों तक अंग्रेजी शासन रहा। जिसने राष्ट्रीयता एवं स्वदेशी कला के प्रति जागरूकता पर पर्दा डाल दिया और जो नवीन प्रणाली प्रकाश मे आई उसे समझने, ग्रहण करने एवं अनुकरण करने की सामर्थ्य ही न रही। पुनर्जागरण काल के प्रणेता स्व. अवनीन्द्रनाथ ठाकुर एवं कलकत्ता के. प्रो ई. बी. हैवेल ने प्राचीन कला रूपों की याद दिलाई। उन्होंने अपने उदीयमान साथी एवं शिष्य कलाकारो के मण्डल को प्रेरित किया जिन्होंने अजन्ता के चित्रो एवं मूर्तियों की नकलें उतार कर देशव्यापी आन्दोलन खड़ा किया जिसे देख कर संसार चकित रह गया। उन्होंने उसी के आधार पर सैकडो चित्र बनाये परन्तु मूर्तिकला का क्षेत्र प्रायः सूना एवं अछूता रहा। यूरोप में चित्रकला के क्षेत्र में कई नवीन प्रयोग हुए साथ ही मूर्तिकला का क्षेत्र भी इससे अछूता नही रहा। विदेशी मूर्तिकला मे इम्प्रेशनिज्म, क्युबिज्म, फ्युचरिज्म एवं सोशलरियलिज्म, (सामाजिक यथार्थवाद) आदि का प्रादुर्भाव हुआ, परन्तु भारत के कलाकार मूर्ति निर्माण में पिछड़े ही रहे। बम्बई मे कुछ नवीन प्रयोग अवश्य हुए हैं। 'टैराकोटा' प्लास्टर तथा लकड़ी पर नये-नये प्रयोग एवं निर्माण कार्य हुआ। इन्हीं पर तथा मोम पर एक नई 'एब्सट्रैक्ट प्रणाली'

द्वारा भावो को अभिव्यक्त करने की एक नई दिशा चल पड़ी है। दक्षिण भारत में आज भी अष्ट धातु मिश्रण से मूर्तियो का निर्माण होता आ रहा है। वैसे स्थायीपन के लिये संगमरमर या अष्ट धातु की मूर्तियां ही निर्मित की जाती है। अष्ट धातु की मूर्तियों मे पांच धातु प्रमुख रूप से होते है जिन्हें 'पंचलोहे' कहते हैं। इसमें तांबा, चांदी, सोना, पीतल और सफेद रांगा का सम्मिश्रण रहता है प्रधानता तांबे की रहती है। आजकल सोना और चांदी नहीं मिलाये जाते। सम्मिश्रण का अनुपात इस तरह होता है—10 भाग तांबा, $\frac{1}{2}$ भाग पीतल, और $\frac{1}{4}$ भाग सफेद रांगा। इस मूर्ति निर्माण मे पहले मोम की मूर्ति तैयार की जाती है। फिर उस पर बाहर मिट्टी का लेप चढा दिया जाता है और इस प्रकार ढांचा (MOULD) तैयार हो जाता है। तदुपरात मोम को पिघला कर निकाल लिया जाता है और द्रव धातु डाल कर मूर्ति ढाल ली जाती है। ये मूर्तियां ठोस होती है।

वर्तमान भारतीय मूर्तिकारो मे स्व. देवीप्रसाद राय चौधरी, रामकिंकर बैंज, धनराज भगत, शंखु चौधरी, प्रदोषदास गुप्ता आदि कई कलाकार हैं, जो विदेशी शिल्पकारों से टक्कर ले सकते हैं। नये नये प्रयोगो मे भी ये कलाकार काफी प्रगति कर चुके हैं तथा इनकी कई मूर्तियां विभिन्न प्रदर्शनियो में ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। देवीप्रसाद राय चौधरी और प्रभातरंजन खास्तगीर ने कई आधुनिक मानस मूर्तियो का निर्माण किया है। खास्तगीर ने बस्टों (Busts) के साथ ही कल्पना और स्वप्न के कुछ प्रतीको का निर्माण किया, परन्तु विदेशी प्रयोगधारा के समकक्ष न पहुँच सके हैं। वर्तमान जीवन दर्शन, यथार्थता एवं कल्पना का प्रतिपादन मूर्तियों मे उतारने वाला कलाकार रामकिंकर बैंज भी शांतिनिकेतन, विश्व भारती का विख्यात मूर्तिकार है जिसकी मूर्तियों मे यथार्थ एवं कल्पना की स्पष्ट झांकी दिखाई देती है। धनराज भगत अपनी छैनी से उपेक्षित कंकालों एवं जनता की गहरी अनुभूतियों का प्रयोग अपनी असाधारण सहृदयता एव गहन संवेदनशीलता से कर रहा है। भगत की कई कलाकृतियां विश्व मे प्रसंसित हो चुकी हैं। इन वरिष्ठ शिल्पकारो के साथ-साथ पिछले दो दशकों मे भारतीय युवा शिल्पकार विश्व कला के साथ जुड़कर शिल्पों मे नवीन रूपो, माध्यमों एवं आकार रचनाओ को प्रदर्शित कर आगे आया है। इन शिल्पकारो मे राघव कनेरिया, बी. आर. खजूरिया महेन्द्र पंड्या, केवल सोनी, बलबीर सिंह् कट्ट, शिवसिंह, पिलू आर. पोचकाने बाला, धर्म रत्नम्, नारायण कुलकर्णी, पी. वी. जानकाराम, रमेश पटेरिया, नन्दगोपाल आदि हैं जिनके शिल्पो मे पारपरिक तत्वो को विभिन्न रूपो मे स्वीकारा गया है किन्तु आज शिल्पकारो को सहयोग एवं संरक्षण की आवश्यकता है। आधुनिक स्थापत्य के साथ-साथ इन्हें भी महत्व प्रदान कर भारतीय शिल्प परम्परा की धारा को चिर प्रवाहित करे। भारत की परम्परागत शैली का प्रतिपादन भी आज कुछ कलाकार कर रहे हैं जिनमें धीघर महापात्र, सिद्धेश्वर महापात्र और धनेश्वर महापात्र प्रमुख

हैं। श्रीधर महापात्र इस दिशा में देश में प्रयत्न करते हुए शिल्पकार हैं। यद्यपि कई लोग उनकी कलाकृतियों में अनुकरण अधिक मानते हैं, परन्तु उनकी कला में विगत वैभव की झलक दिखाई देती है।

आज का शिल्पी शिल्प निर्माण में पारम्परिक माध्यमों संगमरमर, टेराकोटा, धातु आदि के साथ-साथ नवीन मशीनी माध्यमों एवं प्लास्टिक,ग्लास, फाइबर ग्लास, स्टील, जूट आदि का प्रयोग कर रहा है।

प्रश्नावली

(1) भारतीय चित्रकला के बारे में आप क्या जानते हैं ? विस्तार पूर्वक लिखो।

(2) चित्रकला के प्रसंग कौन-कौन से हैं ? का वर्णन करो।

(3) मध्यकालीन चित्रों की विवेचना कीजिये।

(4) अपभ्रंश शैली के नामकरण की समस्या पर विचार करते हुए इस शैली की विषय विशेषताएं बताइये।

(5) पुर्नजागरण काल से आप क्या समझते है ? इस काल के कोई दो अग्रणी कलाकारों का परिचय दीजिये।

———

14

अंकन एवं अनुअंकन

हम किसी वस्तु को देखते है। आंख द्वारा देखी वस्तुओं को चयनित करते है एवं सुन्दर लगने वाली वस्तु की तस्वीर स्मृति पटल पर अंकित कर लेते हैं। कलाकार किसी सुन्दर आकार को चाहे वह किसी भी स्थिति मे हो प्रभावित होकर अपनी प्रवीणता से उसे चित्रित करता है। चित्रांकन के लिए हमे आकारो के संसार के साथ-साथ इसके चित्रण की बारीकियो को समझना एव उसके अंकन के लिए अभ्यास करना आवश्यक हैं। यही कारण है कि प्रारम्भिक कक्षाओं मे या चित्रांकन का शुभारम्भ वस्तु-चित्रण से किया जाता है। वस्तु-चित्रण में जो वस्तु-समूह जैसा दिखाई दे रहा है उसे उसी स्थिति मे चित्रित करते है। वस्तु-चित्रण मे वे सभी नियम लागू होते हैं जो व्यक्ति चित्रण या प्रकृति चित्रण के लिए मान्य है। यही कारण है कि वस्तु चित्रण को 'अचल जीवन' कहा जाता है एव कला की भाषा मे इसको अकन (Drawing) कहते हैं।

समक्ष रखे वस्तु समूह के चित्रण के लिए हमे निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये—

(1) जो वस्तु-समूह हमारे समक्ष रखा गया है उसका बारीकी से निरीक्षण (Observation) करना, जिसमें आकारो की बनावट, रग-रूप, पृष्ठ भूमि आदि को देखकर कागज या फलक जिस पर चित्रांकन करना है, को ध्यान मे रखते हुए आधार रेखा पर जमाने का मानस बनाना।

(2) प्रत्येक आकृति का स्वयं मे एव पास मे पडी हुई अन्य वस्तुओं में गहरा सम्बन्ध होता है जिसकी लम्बाई, चौडाई, मोटाई अथवा गहराई को देखकर अनुपात (Proportion) मे रेखांकित करना।

(3) रेखांकन करते समय दृश्य या परिप्रेक्ष्य जिसे स्थितिजन्य लघुता भी कहते हैं का ध्यान रखना। वस्तु मुख्यत. हमारे तीन स्तरों–आंख के समानान्तर (Eye level), आंख से ऊपर (Above Eye Level), आंख से नीचे (Below Eye Level) स्थित हो सकती है। इसका ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि उपर्युक्त तीनो स्थितियो मे आकृति बदल जाती है। एक में जहा संतुलित आकार दिखाई देता है वही द्वितीय में नीचे का भाग व तृतीय मे ऊपरी भाग मुख्य रूप से दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त वातावरणीय दृश्य (Aerial perspective) जिसे रेखिक

दृश्या (Linear Perspective) अथवा रंगीय दृश्या (Colour Perspective) भी कहा जाता है, से पृष्ठभूमि का अंकन महत्व रखता है। दृश्या मे दूर की वस्तु छोटी एव क्षितिज पर मिलती हुई तथा नजदीक की वस्तु बड़ी एव फैलती हुई दिखाई देती है जैसे रेल की पटरी, सीधी सड़क, दूर के पहाड़ व आकाश, बिजली के खम्भे लम्बी बिल्डिंग जो हमें विभिन्न रूपों में इस नियम के तहत बड़े से छोटे होते एव क्षितिज पर मिलते दिखाई देते हैं जबकि वास्तव में ऐसा होता नहीं है। इस प्रभाव का अंकन वस्तुचित्रण के यथार्थ अंकन में विशेष महत्व है।

(4) वस्तुचित्रण का रेखांकन तैयार होने पर जलरंग, तैलरंग, एक्रलिक, पेस्टल, चारकोल या पेन्सिल में से किसी एक माध्यम में चित्र को पूरा किया जा सकता है जिसमें वस्तुओं के यथार्थ रूपों (Realistic Shapes) का हूबहू अंकन हो सकें। इसके लिए आवश्यक है कि उपर्युक्त वर्णित माध्यमों मे से किसी भी माध्यम में कार्य करने के लिये उस माध्यम की विशेषताओं की जानकारी कर लेनी चाहिये जिससे अच्छा रेखाकन और भी निखर सके।

(5) आकृतियो मे गोलाई-उभार अथवा गहराई दबाव दर्शाना भी महत्वपूर्ण कार्य है। इसमे प्रकाश की स्थिति देखनी चाहिये एवं आकृतियो की बनावट पर ध्यान देना चाहिये। प्रकाश जिस खिड़की या झरोखे से आ रहा है वह भाग वस्तु को प्रकाशमान करेगा एव विपरीत दिशा मे वस्तु पर छाया दिखाई देगी। छाया प्रकाश को दर्शाने मे भी सही अनुपात का ध्यान रखकर दृश्य का ध्यान रखते हुए छाया प्रकाश (Light & Shade) दिखाने चाहिए। साथ ही वस्तु समूह पर पड़ने वाले तीव्र प्रकाश (Highlight) को चित्रित करने मे विशेष सावधानी रखनी चाहिए।

वस्तु चित्रण जैसा दिखाई देता है हूबहू उसके समकक्ष चित्रित करने को आज अध्ययन की आरम्भिक एव अनिवार्य कड़ी मानते हैं जिससे कला का विद्यार्थी सुव्यवस्थित सृजन की ओर बढ सके। कैमरे के आविष्कार ने आज यह कार्य बहुत आसान कर दिया है क्योकि जिसे चित्रित करने मे कलाकारो को जितना समय एवं परिश्रम करना पड़ता था उससे बहुत कम परिश्रम एवं चन्द मिनिटो मे कैमरे द्वारा सुन्दर व रंगीन वस्तु समूह तैयार किया जा सकता है।

वस्तु समूह को नवीन स्वरूप एवं वातावरण मे पुन सरचना करना अनुअकन (Rendering) अथवा सृजन (Creative) की श्रेणी मे आता है। जो वस्तु समूह देखकर, समझकर व्यक्तिगत रुचि से पुनः सयोजित की जावे वही कलाकृति का रूप लेती है। अनुअकन के लिए कला के विद्यार्थियो को विशेष प्रशिक्षण एवं कल्पनाशील होने की आवश्यकता है जिसके लिये सक्षेप मे निम्न बातो का ध्यान रखना चाहिये—

चित्रकला एक दृश्य कला (Visual Art) है जो मूर्तिकला, छाप चित्रण एव भवन निर्माण कला के साथ एक समूह में रखे जाते हैं जिसे कला की भाषा मे आकारद कला (Plastic Art) कहते है। यह द्विविधात्मक फलक पर तैयार होने से इसे द्विविधात्मक रूप (Two dimensional–2D) कहा जाता है जिसमें कभी-2 छाया प्रकाश या गहराई दर्शाने के प्रयास मे तृतीय विधा (Third Dimension–3D) का भ्रम पैदा किया जाता है क्योंकि फुलक तो लम्बाई-चौडाई मे ही है हाथ घुमाने से गहराई अथवा उभार का आभास नही होता।

चित्रण या अनुअंकन से पूर्व आकारद कला के मूल तत्व (Fundamentals of Plastic Art) का ज्ञान होना आवश्यक है जिनके समावेश से ही कलाकृति का निर्माण सम्भव है या यूँ कहे कि कृति कैसी भी बने किन्तु इन तत्वों का समावेश अपने आप ही हो जाता है—

(1) रेखा (Lion)—रेखा बिन्दुओ का प्रवाह है जो किसी भी कलाकृति की आत्मा होती है। प्रकृति या वस्तु मे कही भी आकार की रेखा नही होती। इसे कलाकार कल्पना से पेन्सिल या किसी अन्य माध्यम मे खीचता है। रेखा को कलाकृति के निर्माण तत्वो मे सर्व प्रथम स्थान प्राप्त है। सगीत मे सुरे के आरोह-अवरोह के समान, पानी मे लहरों के समान रेखांकन का मेल भी चित्र मे सगीतमय लय उत्पन्न करता है। चित्र में खडी, आड़ी तीरछी घुमावदार एवं कौणिक रेखायें अनुभवों एवं सौदर्य का निर्माण करने में सक्षम होती हैं जिसमें विकास, क्षय, निश्चितता, अनिश्चय, समर्पण दंभ आदि समस्त भावों को चित्रित करने की क्षमता होती है यदि आप रेखा की समस्त बारीकियो को जानकर चित्र बनायें।

(2) रूप (Form)—फलक पर प्रथम दृष्टिपात मे जो दृश्य दिखाई देवे उसे मोटे तौर पर रूप कहा जा सकता है जिसे हम अपने अनुभवों द्वारा स्वीकार कर चित्रित करते हैं। प्रसिद्ध चित्रकार सेजा ने ज्यामिती को पूर्ण मानते हुए विश्व की समस्त वस्तुओं को तीन मुख्य आकारो वर्ग, वृत्त एवं घन में समायोजित किया था। रूप को दो भागो में देखा जा सकता है प्रथम जिसका प्रकृति की समस्त धाराओं से सीधा सम्बन्ध हो अथवा ज्यामितिक आकार (Representational) & Regular Shapes), तथा द्वितीय इन आकारों से प्रभावित होकर किन्तु हूबहू न बनाकर काल्पनिक रूप प्रदान करना (Irregular or Abstract Shapes) अमूर्त चित्र इस श्रेणी मे आते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि "Line binds shapes and shapes represent symbols" रूप को फलक मे स्थान बनाने के लिये अन्तराल (Space) का सहारा लेना पड़ता है अर्थात् रूप एवं अन्तराल एक दूसरे के पूरक हैं जो पूरे आकार को जीवित अभिव्यक्तिपूर्ण एवं आधार भूमि प्रदान करता है। अवकाश या अन्तराल को रूप मे अलग करना सम्भव नहीं है। हा इसे

सक्रिय या निष्क्रिय (Positive & Negative Sqace) अवश्य बनाया जा सकता है। चित्रण से रूप साथ अन्तराल के अंकन को भी समान महत्व देना चाहिये जिससे फलक का प्रत्येक भाग प्रभावी बन सके।

(3) रंग (Colour)—हमारी आंख आकार के साथ - साथ फलक पर दिखाई देने वाले रंगों से भी प्रभावित होती है। रंगहीन संसार की कल्पना नहीं की जा सकती। रात्रि के अन्धकार में भी रंगों का समावेश होने से रात्रि भी सुन्दर दिखाई देती है। कलाकार के लिये रंग फलक के समान ही महत्व रखते हैं। रंग प्रकाश का गुण है। सूर्य की किरणों में सभी रंग मौजूद हैं जिसे हम अपनी आंख की बनावट की वजह से वस्तु पर पड़ने वाले प्रकाश के परावर्तन द्वारा रंग विशेष की अधिकता एवं अन्य रंगों के समन्वय से देखते हैं रंगों को निम्न श्रेणियों में समझा जा सकता है—

(अ) मूल रंग (Primary Colour)—प्रकृति के समस्त रंग लाल, पीला नीला इन तीन रंगों से तैयार किये गये हैं जो स्वतन्त्र एवं शुद्ध रंग हैं।

(ब) मिश्रित रंग (Secondary Colour) दो मूल रंगों के मिश्रण से तृतीय रंग बनता है एवं इसे मिश्रित वर्णों की श्रेणी में लेते हैं। जैसे—

लाल + पीला=नारंगी

पीला + नीला=हरा

नीला + लाल=बैंगनी

(स) तृतीय वर्ण या उपरंग (Tertiary Colours)—मिश्रित रंगों में दोनों रंगों की मात्रा का अनुपात अलग-अलग कर दिया जावे तो रंगत बदल जाती है जैसे नीलाहरा, पीलाहरा, एक में नीले रंग की व दूसरे में पीले रंग की मात्रा अधिक होने से रंग बनाये जा सकते हैं। एवं इन्हें ही उपरंग कहा जाता है। नीला बैंगनी, लाल बैंगनी, पीला नारंगी, लाल नारंगी, ये सभी इसी श्रेणी में आते हैं। इनके अतिरिक्त काला, सफेद एवं सलेटी रंग उपर्युक्त श्रेणी से अलग तटस्थ रंग (Nutral Colour) कहे जा सकते हैं जिनका कला में महत्वपूर्ण स्थान है। रंगों का महत्व उसकी रंगत (Hye), मान (Value), सघनता (Croma), तान (Tone) आदि पर निर्भर करता है जिसका चित्रांकन के समय विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये। इसी प्रकार जो रंग अधिक प्रकाशमान व तीव्र लगे उसे गर्म (Warm Colour) व शांत व गहराते हुए हों अर्थात् आंख की पुतली कम फैले उसे (Crol Colour) कहा जाता है जैसे लाल, पीला, गर्म तथा नीला, बैंगनी, हरा ठण्डे रंग हैं। केवल एक वर्णीय रंग योजना (Monochrom) या बहुवर्णिय रंग योजना (Achromatic) कलाकृति एवं कलाकार की पसन्द से चित्र में स्थान पाता है। इसके साथ ही रंगों के वृत्त में पडोसी रंग जैसे पीला, नारंगी, लाल आदि को समवर्णीय (Harmonious) तथा इनके सामने के रंग जिनके गुण-धर्म मेल नहीं खाते जैसे

लाल में हरा को विरोधी (Contrast) रंग माने जाते हैं। इसी प्रकार रगों द्वारा लय, गति, उभार, गहराई, छायाप्रकाश आदि दर्शाया जा सकता है। रग करुणा, हर्षोल्लास, रौद्र आदि भावों की अभिव्यक्ति मे सहायक होते हे। जैसे पीले रग मे प्रफुल्लता, चपलता प्रकाश समीपता आदि दर्शाये जा सकते हैं किन्तु इन रगो को सही आकारो के साथ सही वातावरण मे रखने से ही यह सम्भव होगा। रग स्वय मे एक पदार्थ है जिसकी कोई व्यक्तिगत भावना नही होती।

(4) पोत (Texture)—तलुधरातल या पोत वस्तु के धरातल का गुण है। प्रत्येक पदार्थ अपने निजी गुणों से अलग-अलग पहिचाना जाता है। जैसे पत्थर का कठोर एव ठोसपन, पानी का तरल पारदर्शिता जो पत्थर के साथ तेल अथवा अन्य तरलपदार्थ से भी पानी को अलग करती है। आकारद कला मे भी पोत का विशेष महत्त्व है क्योकि किसी कृति के निर्माण मे फलक के धरातल का तथा आकारों के निर्माण मे धरातलीय प्रभाव दर्शाया जाता है। टेक्सचर को लेकर कलाकारो मे अक्सर यह भ्रम हो जाता है कि टेक्सचर का मतलब खुरदरापन या जीकजाक रेखाङ्कन मानते है जबकि पारदर्शीय या अपारदर्शीय समतल रगो के प्रयोग से भी धरातल का प्रभाव दर्शाया जा सकता है। इसी प्रकार जिस वस्तु का चित्रण किया जाता है उसी वस्तु के धरातलीय प्रभाव का अंकन भी आवश्यक नहीं है क्योकि यथार्थ चित्राङ्कन एव सृजन युक्त सयोजन करने में भिन्नता है जहाँ कलाकार कल्पना के सहारे फलक पर आकारो का सयोजन करने हैं न कि हूबहू। अतः टेक्सचर भी रग रेखा एव आकारो की तरह निर्माण एव प्रस्तुत करने मे स्वतन्त्र है। टेक्सचर की जानकारी के लिये विद्यार्थी को प्रकृति मे प्राप्त विविध वस्तुओ के धरातलों जैसे पेड, कपडे, लकडी, पत्थर आदि वस्तुओं का अध्ययन करना चाहिये। इसके साथ ही कला का विद्यार्थी आवश्यकतानुरूप टेक्सचर का निर्माण कर कलाकृति मे गति, दूरी आदि का वैविध्य उत्पन्न कर सकता है। इसके लिये पेन्सिल से लेकर ब्रश, स्प्रे, पेस्टलरंग आदि से कागज पर विभिन्न तरीको से टेक्सचर बनाये जा सकते हैं। यहा एक सावधानी रखनी चाहिये कि फलक पर किसी भी कृति के सुन्दर अंकन हेतु रग, रेखा और अथवा टेक्सचर का प्रयोग किया जा सकता है न कि सुन्दरता मे अवरोध हेतु। अत. टेक्सचर का जहा जैसी आवश्यकता हो उसे ध्यान मे रखते हुए ही इसका प्रयोग करना चाहिये।

चित्र संयोजन के सिद्धान्त—

आकारद कला के मूल तत्त्वों एव उनका ज्ञान चित्र सयोजन हेतु आवश्यक है किन्तु चित्र सयोजन अथवा डिजाइन (डिजाइन का अर्थ कलाकृति मे प्रचलित शब्दार्थ से नही है) के कुछ सर्वमान्य एव प्रचलित सिद्धान्त है जिनका ज्ञान भी आवश्यक है—

जब आप अपने कमरे के गुलदान को सजाते है तब आप किसी भी कलाकार

से कम नहीं होते। आप भी एक कलाकार की तरह गुलदावर को चुनने में लेकर उसमें फूलों को सजोने एवं उनकी काट-छांट, प्रकाश का आगमन आदि करते हैं वैसे ही कलाकार कलाकृति के निर्माण में रंग, रेखा, आकार एवं टेक्सचर द्वारा फलक पर निर्माण करता है एवं इसे ही कम्पोजिशन कहा जाता है। जैसे एक मकान का निर्माण ईंट मे ईंट जोड़ने से होता है वैसे ही रेखा से रेखा जोड़ने व रंग के पास रंग लगाने से कलाकृति का निर्माण होता है। जैसे ईंट पर ईंट का जमाव योजनाबद्ध सुव्यवस्थित नहीं हो तो मकान ढह जाता है उसी प्रकार फलक पर मूल तत्वों का सुव्यवस्थित संयोजन न होना चित्र का कमजोर एवं उसके उद्देश्य की प्राप्ति मे बाधा उत्पन्न कर सकता है। भारतीय पारम्परिक चित्र एवं शिल्प निर्माण मे कला छः अंग (षडंग रूप भेद, प्रमाण, भाव, लावण्य योजना, सादृश्यता एवं वर्णिका भंग माने गये हैं। जिसका विस्तृत वर्णन प्रारम्भिक अध्याय में किया जा चुका है। आधुनिक कला मे इसके स्थान पर अन्य शब्दावली प्रचलित है जिसके मूल में कलाकृति का निर्माण एवं भावाभिव्यक्ति ही है। यहां यह विशेष ध्यान देने योग्य सुझाव है कि 'अनुअंकन' जिसे चित्र संयोजन ही कहेंगे के पीछे यह मंशा कतई नहीं है कि समक्ष रखे वस्तु समूह को अनुअंकन के नाम पर टुकड़े-2 कर पूरे फलक पर बिखेर देने से है जैसा कि अक्सर स्कूल के छात्रों के काम मे देखा जाता है। यह एक भ्रामक व अधकचरी मनस्थिति का परिणाम है। अतः आपको संयोजन के सिद्धांतों को समझकर तथा महान् कलाकारो की कृतियों से प्रेरणा प्राप्त कर स्वयं की भावनाओं व कल्पनाओं को स्वीकार कर चित्रण करना चाहिये।

यहा संक्षेप मे चित्र संयोजन के सिद्धान्तों का वर्णन किया जा रहा है—

(1) प्रवाह (Rhythm)—संयोजन में गति अथवा प्रवाह से अभिप्राय फलक पर निर्मित आकारो का आंख को एक निश्चित दिशा मे लयबद्ध घुमाना है। प्रत्येक वस्तु में गति है। हवा, पानी इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। जीवन का संचार भी गति से ही सम्भव है। संगीत मे सुरों के उतार-चढ़ाव से सौंदर्य बोध होता है। इसी प्रकार कलाकृति मे भी रेखाओं, आकारो एवं रंगतों से लय पैदा किया जा सकता है।

(2) सामंजस्य (Harmony) आकार संयोजन मे विभिन्न आकारों का सामंजस्य फलक पर आवश्यक है। जिससे एक दूसरे से सम्बद्धता में पूरे फलक पर एकरूपता आ सके। इसके लिये सजातीय रेखाओं, रंगतों एवं आकारों का होना आवश्यक है जिसका अभ्यास वस्तु चित्रण में किया जा सकता है व अनुभव से सामंजस्य बिठाया जा सकता है।

(3) सहयोग (Unity)—आकारो का एक दूसरे पर अवलम्बन कृति को सुन्दर बना देता है। जैसे एकजुट होकर शत्रु पर आक्रमण में जीत अधिक सुनिश्चित है वैसे ही सम्पूर्ण फलक में विभिन्न तत्वों का सहयोग आवश्यक है। बिखराव अथवा विरोध भी सौंदर्य का निर्माण कर सकते हैं किन्तु इसमे भी कलाकार को इसमे भी एकरूपता का वातावरण बनाना ही पड़ेगा।

(4) सन्तुलन (Balance)—फलक कर कृति निर्मित करते समय आकारो के सयोजन मे उपर्युक्त सिद्धान्तो के साथ सन्तुलन आवश्यक है। इसकी कमजोरी कलाकृति को अधूरा व कमजोर कर देती है। कला में सन्तुलन से अभिप्राय चाक्षुश सौंदर्य से है, जिसमे रगो व आकारो का भार, रेखाओ की दिशा, टेक्सचर का प्रयोग आदि का महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। चित्रो मे सायोजक फलक की मद्य रेखा से सम्पूर्ण चित्र को आधा-आधा कर दो भागो मे समचित्रण (Symmetrical Balance) या इससे हटकर असम सन्तुलन (Assymmetrical Balance) से सयोजन किया जा सकता है। कई विद्वान सम सयोजन को असम सन्तुलन की तुलना मे कम महत्त्व देते है। किन्तु आज ऐसा नही है। विद्यार्थियो को दोनो प्रकार से चित्र सयोजित कर सन्तुलन की समस्या का समाधान करना चाहिये। इसके लिये एक सिद्धान्त मान्य है। जितना ही अधिक भार हो उतना केन्द्र के निकट व जितना ही कम हो उतना फलक में किनारे के निकट चित्र सयोजन किया जा सकता है।

(5) प्रभावित (Dominance or Emphasis)—कलाकृति के निर्माण का कोई उद्देश्य होता है जिसको पूरा करने के लिए कलाकार कृति मे महत्त्वपूर्ण आकारो एव रंगो और आकर्षण के लिये सयोजन मे ऐसी स्थिति बनाए कि दर्शक स्वत ही उस तरफ आकर्षित होकर आनन्दानुभूति या रसास्वादन कर सके। जैसे अजन्ता मे भगवान बुद्ध को ऐसी स्थिति मे उपस्थित किया गया है कि दर्शक अन्य आकृतियो को देखते हुए भी भगवान बुद्ध के प्रभाव पूर्ण व्यक्तित्व से आकर्षित हो जाता है। इसके लिए अन्य बातो के साथ फलक मे पृष्ठभूमि व अंतराल का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

भारतीय चित्रकला का इतिहास

अभ्यासार्थ प्रश्न भाग (अ)

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए जो आपकी उत्तरपत्रिका के चार पृष्ठों से कम न हों।

(1) "ईश्वर ने मनुष्य को चित्रकला की भावना जन्म से दी है।" इस पर अपने विचार लिखो। (H. Sec. 1968)

(2) भारतीय चित्रकला के आदि चित्रों का कहां निर्माण हुआ था? ये स्थान हमारे पूर्वज चित्रकारों को क्यों पसन्द आये? (H Sec.1959)

(3) "प्रागैतिहासिक कला में जीवन और शक्ति है" इस कथन का स्पष्टता एवं विस्तार से विवेचन कीजिए। (H. Sec. 1960)

(4) "भारतीय चित्रकला अत्यन्त प्राचीन है" इसे सप्रमाण सिद्ध कीजिए। (H. Sec. 1959)

(5) प्रागैतिहासिक चित्रकला की विशेषतायें बताते हुए उसके निर्माण का प्रयोजन बताइये।

(6) भारत में प्रागैतिहासिक कालीन चित्र कहाँ-कहाँ प्राप्त हुए हैं? उन स्थानों के चित्रों के उदाहरण दीजिए।

(7) गुप्तकाल भारतवर्ष का स्वर्ण-युग था। उस काल की चित्रकला का वर्णन कीजिये। (H Sec. 1959)

(8) अजन्ता कहां है और क्यों इतना प्रसिद्ध है? उसके चित्रों और शैली पर प्रकाश डालिए। (H. Sec. 1959)

(9) अजन्ता गुफाओं की चित्रकला का निम्नलिखित तत्वों के आधार पर सक्षिप्त परिचय दीजिए– (अ) गुफाओं की स्थिति (ब) चित्रों के विषय (स) चित्रकला की प्रमुख विशेषतायें। (H. Sec. 1960)

(10) भारतीय चित्रकला के इतिहास में अजन्ता चित्रकला अपना विशेष महत्व क्यों रखती है?

(11) अजन्ता की गुफाओं के प्रमुख चित्रों के प्रयोजनों के साथ उनकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

(12) 'अजन्ता गुफाओं में आलेखनों की भरमार है' विस्तृत व्याख्या कीजिए।

(13) 'अजन्ता शैली में नारी चित्रण, पशु-पक्षी चित्रण तथा फल-फूलों का चित्रण उत्तम ढग से किया गया है।' इस कथन पर अपनी राय कीजिए।

(14) क्या यह सत्य है कि "अजन्ता शैली भारतीय चित्रकला की सर्वश्रेष्ठ शैली है?"

(15) "बौद्ध धर्म चित्रकला के सहारे फैला" प्रमाण सहित पुष्टि कीजिए। (H. Sec. 1958)

(16) अजन्ता के भित्ति चित्रो की शैलीगत विशेपताएँ बताइये ।
(17) अजन्ता की गुफाओं मे प्राप्त चित्रो की विषय वस्तु सयोजन व रग योजना के आधार पर निबन्ध लिखिये ।
(18) अजन्ता की गुफाओ के प्रसिद्ध चित्रो की (कोई चार) विवेचना कीजिए ।
(19) निम्नलिखित गुफाएँ कहाँ हैं ? उनके चित्रो की विशेपताएँ देते हुए बताइए कि उनका सम्बन्ध अजन्ता चित्र शैली से है ।
(अ) बाघ (ब) सित्तनवासल (स) सिगीरिया ।
(20) मध्यकालीन पोथी चित्रो की विशेपताएँ बताइये ।
(21) "मध्यकाल चित्रकला का अधयुग न होकर श्रेष्ठकाल है," कथन का औचित्य दर्शाइये ।
(22) राजस्थानी शैली का जन्म कैसे हुआ ? इस शैली के इतिहास का वर्णन करते हुए सिद्ध कीजिए कि धर्म ही इसकी उन्नति का प्रमुख कारण था ।
(23) राजस्थानी शैली के मुख्य विषय क्या थे ? उनकी विशेपताओ पर प्रकाश डालिए ।
(24) राजस्थानी शैली की तुलना अजन्ता शैली से कीजिए ।
(25) राजस्थानी कलम की उपशैलिया कौन-कौन सी है ? किन्ही दो की विशेपताएँ दीजिए ।
(26) "मुगल शैली की इमारत ईरानी तथा राजस्थानी शैलियो की नीव पर खडी की गई"—सप्रमाण सिद्ध कीजिए ।
(27) "मुगल शैली मुगल राज्य के साथ-साथ फैली और मुगल राज्य मिटा तो यह शैली भी मिट गई।" इसकी पुष्टि कीजिए । (H Sec.1961)

अथवा

"मुगल शैली का जन्म दरबार में हुआ और मृत्यु भी दरबार मे ही", इसे सिद्ध कीजिए ।
(28) अकबर कालीन चित्रकला और जहाँगीर कालीन चित्रकला मे कहा तक मेल है ? समझाइये ।
(29) मुगल शैली और राजस्थानी शैली की तुलना कीजिए । तथा दोनों की समानता एव असमानता पर प्रकाश डालिए ।
(30) मुगल चित्रकला पर निबन्ध लिखिए । (H. Sec. 1961)
(31) पहाडी शैली या कागडा चित्र शैली पर एक चार पृष्ठों मे निबन्ध लिखिए । H. Sec 1959, 1962)
(32) पहाड़ी शैली की तुलना राजस्थानी शैली मे कीजिए । (H Sec 1963)
(33) पुनरुत्थान की चित्रकला पर अपने विचार व्यक्त कीजिए ।
(34) बगाल स्कूल के संस्थापक एव संचालक का परिचय देते हुए उस स्कूल की चित्रकला पर प्रकाश डालिये ।

(35) भारतीय चित्रकला के आधुनिक स्कूल कौन-कौन से हैं ? प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन करते हुये उनके प्रमुख चित्रकारों के नाम बताइये (H. Sec 1962)

(36) आधुनिक भारतीय चित्रकला पर एक परिचयात्मक निबन्ध लिखिये ।

(37) आधुनिक प्रमुख भारतीय चित्रकारों के कुछ नाम दीजिये और उनमें से किन्हीं तीन चित्रकारों के चित्रों की विशेषताओं एवं उनकी चित्रण शैली पर अपने विचार व्यक्त कीजिये । (H Sec. 1960)

(38) वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में भारतीय चित्रकला के छः अंगों का वर्णन है । उन अंगों की पृथक्-पृथक् विशेषताएँ लिखिये । (H. Sec. 1961)

(39) निम्नलिखित पर संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखिये ।

(1) मोहनजोदड़ो और हड़प्पा । (2) एलोरा गुफाएँ ।
(3) जोगीमारा गुफाएँ । (4) बदामी गुफाएँ ।
(5) कांगड़ा कलम । (6) चित्रसूत्र ।
(7) राजा रवि वर्मा । (8) अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ।
(9) नन्दलाल बोस । (10) यामिनी राय ।
(11) लोक कला (Folk Art) (12) अमृता शेरगिल ।
(13) रामगोपाल विजयवर्गीय । (14) कवि रवींद्र (चित्रकार के रूप में)
(15) ईरानी शैली । (16) भारतीय चित्रकला के षडंग ।
(17) व्यक्ति चित्र । (18) रागमाला के चित्र ।
(19) ठाकुर शैली । (20) रविशंकर रावल ।

(21) विदेशी प्रभाव पड़ने से आधुनिक भारतीय चित्रकला में क्या-क्या परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं ।" समझाइये ।

(22) 'लोक कला' किसे कहते है ? भारत के विभिन्न भागो की 'लोक कला' का वर्णन कीजिए ।

Short Answer Type Questions

निम्नलिखित प्रश्नो के उत्तर केवल 10 (दस) पंक्तियों में दीजिये :—

(1) चित्रकला की परिभाषा दीजिये ।

(2) जोगीमारा गुफा चित्रों का वर्णन कीजिये ।

(3) अजन्ता गुफाओं की स्थिति बताइये ।

(4) प्रागैतिहासिक काल की चित्रकला की विशेषता बताइये ।

(5) अजन्ता शैली के रंग विधान की विशेषताएँ बतलाइये ।

(6) अजन्ता गुफाओं की आलेखन (Designs) कैसे है, लिखिये ।

(7) पाल पोथी चित्रों का परिचय देते हुये संक्षेप में चित्रों की विशेषताएँ बताइये ।

(8) राजस्थानी शैली के धार्मिक चित्रों पर प्रकाश डालिये ।

(9) राजस्थानी शैली में रागमाला चित्रों की क्या-क्या विशेषतायें है ?
(10) "बाबर को चित्रकला का शौक था"—इसकी पुष्टि कीजिए।
(11) मुगल शैली मे मानव चित्रो (व्यक्ति चित्रो) की भरमार है। कैसे ?
(12) अकबर कालीन चित्रों की विशेषताएँ बताइये।
(13) जहाँगीर को प्रकृति चित्रण कला मे शौक था। उदाहरण देते हुए उत्तर की पुष्टि कीजिए।
(14) मुगल कालीन चित्रों की विषय-वस्तु लिखिए।
(15) कांगड़ा कलम की कुछ विशेषताओं पर अपने विचार लिखिए।
(16) पुनरुत्थान-काल के अग्रणी का छोटा-सा परिचय दीजिए।
(17) बंगाल स्कूल की विशेषताएँ क्या थी ?
(18) 'लोक-कला' क्या है ? आज के प्रमुख-प्रमुख लोक कलाकेन्द्रो के नाम लिखिए।
(19) बम्बई स्कूल के कलाकारो की शैली की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
(20) भारतीय चित्रकला का काल विभाजन कीजिये।
(21) शाहजहा को चित्रकला का शौक कम था। क्यो ?
(22) बंगाल स्कूल ने देश को कौन-कौन से प्रतिभाशाली चित्रकार दिये, उनके नाम दीजिये। साथ में उस प्रान्त का नाम दीजिये जहाँ वे कला साधना मे लीन है।
(23) अजन्ता कलाकारो की भित्ति-अंकन विधि पर एक छोटा-सा लेख लिखिए।
(24) आधुनिक चित्रकला (Modern-Art) की विशेषताएँ लिखिए।
(25) राजस्थान की आधुनिक चित्रकला की टिप्पणी कीजिए।

One Word Type Questions

निम्नलिखित प्रश्नो के उत्तर केवल एक शब्द मे दीजिए। सही शब्द चुनकर लिखिये।

1. ईश्वर ने मनुष्य को चित्रकला की भावनाएँ (जन्म-बाल्यकाल-यौवन) से दी है।
2. अजन्ता की गुफाएँ (i) आसाम राज्य (ii) कश्मीर राज्य (iii) निजाम राज्य मे स्थित है।
3. अजन्ता कलाकारो ने (हाथीदात—गुफाओं की भित्ति पर—कैनवस) पर चित्रों की रचना की थी।
4. अजन्ता मे (i) बुद्ध (ii) महावीर (iii) ईसा के चित्र अधिक बने है।
5. नारी चित्रण-वस्तु चित्रण-प्राकृतिक चित्रण, अजन्ता की विशेषता

6 अजन्ता के चित्रकारों ने (कमल-गुलाब-चम्पा) पुष्प को प्रधानता दी है।
7. सिगीरिया गुफाएँ (ब्रह्मा—लंका—अफगानिस्तान) में स्थित हैं।
8 बोधिसत्व का चित्र (अजन्ता-बाघ-जोगीमारा) गुफा में चित्रित है।
9. (हिमालय-मध्य भारत-राजस्थान) में बाघ गुफाएँ स्थित हैं।
10 डॉ तारानाथ के मतानुसार भारत में बौद्ध कला की (i) तीन शैलियां (ii) आठ शैलियां (iii) पाच शैलियां प्रचलित थीं।
11 चित्रसूत्र (प्राचीन युग-मध्यकालीन युग-आधुनिक युग) की देन है।
12. कांगडा शैली (अजन्ता शैली-मिश्र शैली-राजस्थानी शैली) की एक शाखा है।
13 रागमाला के चित्रों की भरमार (ठाकुर शैली-राजस्थानी-शैली-जैन शैली) में है।
14 बंगाल स्कूल के संस्थापक (i) अवनीन्द्रनाथ (ii) रवि वर्मा (iii) रवीन्द्र नाथ ठाकुर थे।
15 (राजा जयसिंह-राजा संसार चन्द्र-राजा महेन्द्र) कांगडा शैली के प्रबल संरक्षक थे।
16. महिला कलाकारों में (शीला आडेन-रानी चन्द्रा—अमृता शेरगिल) का नाम भारतीय चित्रकला में प्रथम लिया जाता है।
17. बाबर अपने साथ भारत में (चीनी चित्रकार—जर्मनी चित्रकार—ईरानी चित्रकार) लाया था।
18. 'बणीठणी' चित्र (मेवाड कलम, बून्दी कलम, किशनगढ कलम) का है।
19 अजन्ता में कुल (25, 29, 30) गुफाएं हैं।
20. चैत्य गुफायें काम आती थी (भिक्षुओं के निवास, पूजा के लिए, केवल दिखावे के लिए)
21. मुगल शैली का पतन (हुमायूँ, औरंगजेब, शाहजहाँ) के शासन काल में हुआ।
22 हुमायूँ के दरबार का प्रमुख ईरानी चित्रकार (विहजाद, मसूर अब्दुसमद) था।
23. 'चित्रसूत्र' ग्रन्थ के रचयिता (भरतमुनि, वात्स्यायन, रायकृष्णदास) है।
24. आज कलाकारों की प्रमुख संस्था (साहित्य अकादमी, आर्ट स्कूल, ललितकला अकादमी) है।
25. लोककला को महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति देने वाले प्रमुख चित्रकार (रवीन्द्रनाथ टैगोर, यामिनीराय, असितकुमार हलधर) है।

अभ्यासार्थ प्रश्न भाग (ब)

(नीचे परीक्षा प्रश्न-पत्र पिछले वर्षों के दिये जा रहे है जिससे विद्यार्थी लाभ ले सके।)

1 सॉंची व भरहुत की विशेषताएं बताइये। अथवा

एलोरा एव एलिफैंटा की कला का वर्णन करिये ।

2 राजस्थानी चित्रकला पर एक सक्षिप्त निबन्ध लिखिये ।

अथवा

अजन्ता की चित्रकला की दस मुख्य विशेषतायें बताइये ।

3. राजस्थानी चित्रकला के अन्तर्गत विषय के विस्तार का वर्णन करिये । 10

अथवा

उन्नीसवी शताब्दी में भारतीय चित्रकला के ह्रास के कारण बताइये । 10

4. नीचे दिये हुए मे से प्रत्येक की दो मुख्य विशेषतायें लिखिये—

(अ) उदयगिरि की मूर्तिकला ।

(ब) मोहन-जो-दड़ो ।

(स) अमरावती ।

(द) पुनरुत्थान युग ।

(य) अकबरकालीन मुगल कला ।

5. केवल एक शब्द मे उत्तर दीजिये—

(अ) भारतीय पुनरुत्थान काल के नेता कौन थे ?

(ब) राजस्थानी चित्रकला की कौनसी सर्वप्रथम कलम (उपशैली) है ?

(स) सांची, भरहुत व अजन्ता की कला किस धर्म से प्रभावित है ?

(द) एलिफैंण्टा में प्रयुक्त कोई एक विषय बताइये ?

(य) अजन्ता की चित्रकला का कोई एक प्रसिद्ध विषय बताइये ?

6. एलिफैंटा की कला पर सक्षिप्त निबन्ध लिखिये जिसमे स्थान, धर्म एव मुख्य कृतियो की विशेषताओं का वर्णन होना चाहिये । 10

अथवा

सांची की कला की दस मुख्य विशेषताएँ बताइये ।

7. अजन्ता की कला पर सक्षिप्त निबन्ध लिखिये जिसमे गुफाओ का ऐतिहासिक वर्गीकरण तथा मुख्य गुफाओ के चित्रो का सक्षिप्त वर्णन होना चाहिए । 10

अथवा

जहाँगीरकालीन कला की दस मुख्य विशेषताएँ बताइये ।

8 राजस्थानी चित्रकला की दो मुख्य शैलियो का सक्षिप्त में वर्णन करिये । (प्रत्येक शैली की कम से कम पाच मुख्य विशेषतायें बताना आवश्यक है ।) 10

अथवा

राजस्थानी चित्रकला की उत्पत्ति, उत्थान एव पतन की सक्षिप्त कहानी लिखिये ।

9. निम्नांकित का एक या दो पक्तियो मे उत्तर लिखिये— 10

(अ) चैत्य व विहार का अन्तर बताइये ?

(ब) बौद्ध चित्रकला के मुख्य केन्द्र कहाँ है ?

(ग) शैव शिल्प के मुख्य केन्द्र कहाँ है ?

(द) मुगल चित्रकला की दो उपशैलियों के नाम बताइये।
(य) सित्तनवासल की स्थिति, काल एवं शैली (जिस शैली से समानता हो) बताइये।

). निम्नांकित का काल बताइये—
(अ) भरहुत। (ब) राजस्थानी चित्रकला।
(स) मुगल चित्रकला। (द) अमरावती।
(य) ऐलिफैण्टा 10

1 भारत में प्रागैतिहासिक चित्रकला कहां-कहां पाई जाती है तथा उन चित्रों के प्रमुख विषय क्या-क्या हैं ? बताते हुए संक्षिप्त विवरण दीजिये।

अथवा

मोहनजोदड़ो की मिट्टी के भाण्डों पर की चित्रकला तथा खुदाई में प्राप्त सीलों की व मूर्तियों की कला के आधार पर तत्कालीन कला की विवेचना कीजिये

2 मुगल चित्रकला का आरम्भ बाबर के कलाप्रेम से और अन्त औरंगजेब के कलाद्वेष से होता है। इस कथन को स्पष्ट करने हेतु विवेचन कीजिये।

अथवा

राजस्थानी शैली के चित्रों पर मुगल प्रभाव अधिक लक्षित होता है अथवा मुगल चित्रों पर राजस्थानी शैली के चित्रों का प्रभाव अधिक है—इस बात को दोनों शैलियों के तुलनात्मक विवेचन से स्पष्ट कीजिये। 10

13 अजन्ता की चित्रकला का संक्षिप्त परिचय देते हुए वहां के किन्हीं दो प्रमुख चित्रों के सौन्दर्य का कलात्मक वर्णन करें।

अथवा

अलौरा में ब्राह्मण, जैन बौद्ध धर्म की कला के साथ-साथ पाई जाती है। इसका सकारण संक्षिप्त परिचय दें। 10

14. निम्नांकित का एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिये—
(अ) चित्रकला के षडंग। (ब) लामा तारानाथ।
(स) नालंदा (द) सांची।
(य) महाबलीपुरम्।

15. निम्नांकित का काल बताइये—
(अ) मोहनजोदड़ो। (ब) अलौरा।
(स) सारनाथ का सिंह स्तम्भ (द) खजराहो के मूर्ति शिल्प।
(य) कोणार्क का सूर्य मन्दिर।

16. पश्चिम की कला का अन्धानुकरण करने से स्वाधीन भारत के कुछ कलाकार अपने को पूर्णतः पराधीन और परमवशता में बंधे हुए पाकर पुनः भारतीय परम्परा की ओर मुड़ रहे हैं। इस कथन की विवेचना में किन्हीं दो ऐसे आधुनिक कलाकारों का परिचय दीजिये। अथवा

पुनरुत्थानवादी कलाकारों ने भारतीय चित्रकला को पाश्चात्य प्रभाव से बचा कर भारतीयता की ओर एक नया मोड़ दिया । इसमें जिन प्रमुख कलाकारों का हाथ रहा है, उनका संक्षिप्त परिचय दीजिये । 10

17. "अजन्ता की खोज से भारतीय चित्रकला इतिहास के उन्नत अतीत का दर्शन सम्भव हुआ ।" इस कथन को ध्यान में रखते हुए अजन्ता की खोज और इसमें पाई गई चित्रकला की संक्षिप्त विवरण दीजिये ।

अथवा

बाघ की गुफाओं के चित्र और मूर्तिकला का परिचय दीजिये । 10

18. राजस्थानी चित्रकला का किन्हीं तीन शैलियों का संक्षिप्त परिचय उदाहरण सहित दीजिये ।

अथवा

भारतीय चित्रकला को अंग्रेजी राज्य में जो क्षति हुई उसे राष्ट्रीय विचार वाले कलाकारों ने अनुभव कर जो नया मोड़ दिया, उसका संक्षेप में परिचय दीजिये ।

19 निम्नलिखित का एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए—

(अ) चित्रकला के षड़ंग है ?

(ब) लामा तारानाथ का क्या महत्व है ?

(स) सारनाथ के सिंह स्तम्भ की रचना किसने कराई ?

(द) प्रागैतिहासिक चित्रकला का प्रमुख विषय क्या होता है ?

(य) मोहनजोदड़ो में चित्रकला अवशेष किस प्रकार के हैं ?

20 निम्नलिखित का काल बताइये—

(अ) बाघ गुफाओं की चित्रकला ।

(ब) अमरावती स्तूप ।

(स) भारतीय चित्रकला का पुनरुत्थान ।

(द) पहाड़ी चित्र शैली ।

(य) मोहनजोदड़ो ।

हायर सैकण्डरी परीक्षा, 1986

वैकल्पिक वर्ग I (Optional Group I—Humanities)

चित्रकला—द्वितीय पत्र (Drawing—Second Paper)

(History of Indian Art)

समय : 3 घण्टे पूर्णांक : 50

1. "सिन्धु-घाटी के मोहनजोदड़ो व हड़प्पा से प्राप्त वस्तुओं से सिद्ध होता है कि इस सभ्यता में वैदिक-काल की सभ्यता से भी प्राचीन चित्र हैं।" वर्णन कीजिए।

"It is established from the objects found from Mohen-jo-daro and Harappa of the Sindhu Ghati, that the paintings in this civilization are of more ancient period than that of Vedic period." Describe. 10

2. जोगीमारा गुफा के चित्रों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

Give a description of the characteristics of the paintings of Jogimara Caves. 10

3 ईरानी शैली व राजस्थानी शैली, मुगल शैली की जन्मदाता हैं। स्पष्ट कीजिए।

The Irani (Persian) and Rajput Schools of Paintings have given birth to the Mughal School of Paintings. Clarify. 10

4. अजन्ता शैली की क्या विशेषताएँ हैं? गुफा नम्बर 2 एवं गुफा नम्बर 17 का वर्णन कीजिए।

What are the characteristics of the Ajanta Cave paintings? Discribe Cave No. 2 and No. 17. 10

5. निम्न में से किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिए :—

(अ) एलोरा गुफाएँ

(ब) बदामी गुफा

(स) धारापुरी गुफाएँ

(द) एलिफैन्टा गुफाएँ

Write short notes on any two of the following :—

(a) Ellora Caves
(b) Badami Caves
(c) Dharapuri Caves
(d) Elephanta Caves

अथवा (OR)

मुगल शैली के चित्रों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

Describe the characteristics of the Style of Mughal School of Paintings. 10

———
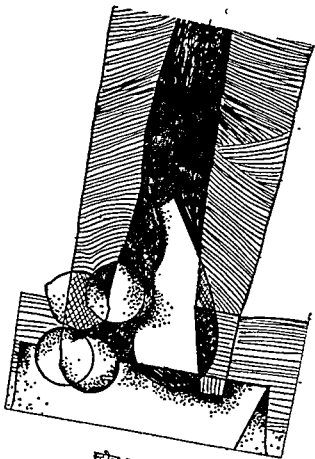
स्टील लाइफ-1985
चित्रकार-दिलीपसिंह चौहान
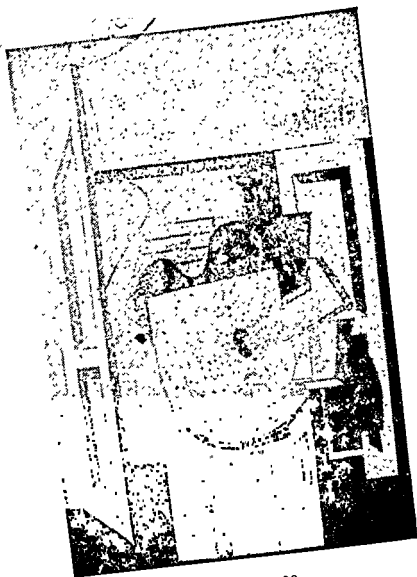
स्टील लाइफ–1928
चित्रकार–मारकोसियस
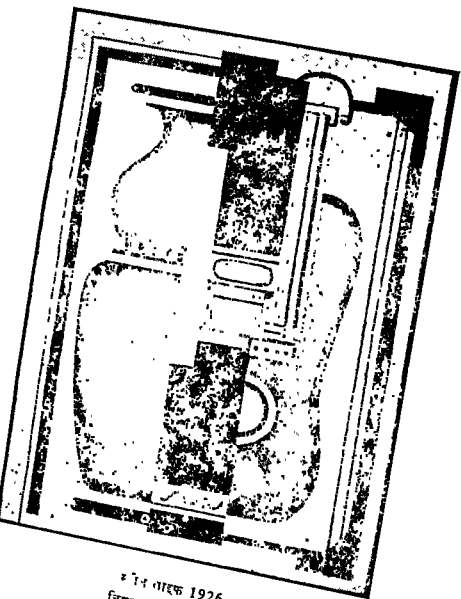
स्टिल लाइफ 1926
चित्रकार–फरनाड लेगे

स्टील लाइफ-1926
चित्रकार–इयान ग्रोस

स्टील लाइफ–1911
चित्रकार–ज्यान ग्रीस

स्टील लाइफ–1920
:चित्रकार–ई. जेनार्ट